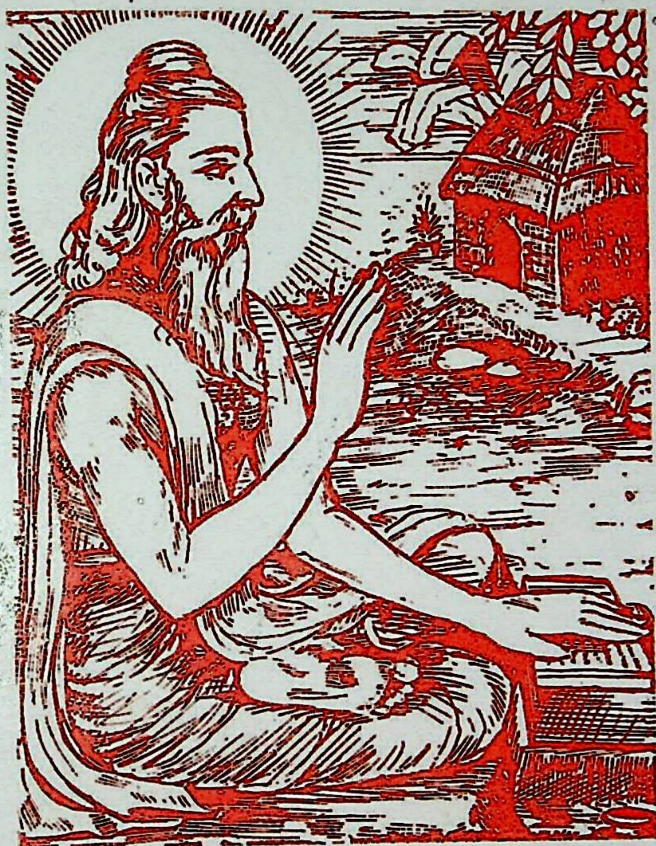
म० म० पं० गिरिधर-शर्म चतुर्वेद रचिता —

"पुराण-विद्या"



महर्षिः वेदव्यासः



प्रकाशकः

ान संस्कृत-अकादमी (संगमः)

रेश्वर-भवनम्, गणगौरी बाजार, जयपुरम्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराण-विद्या

●

लेखक :
स्व. म. म. पं. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

●

सम्पादक :
डॉ. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी
प्रवाचकोऽध्यक्षश्च, साहित्यविभागस्य
संस्कृतविद्या एवं धर्मविज्ञानसंकाये
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः
वाराणसी (उ. प्र.)

●

प्रकाशक :
राजस्थान संस्कृत अकादमी (संगमः)
जयपुरम्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकाशक :

राजस्थान संस्कृत अकादमी (संगमः)

वीरेश्वरभवनम्

गणगौरी बाजारः,

जयपुरम्-302 002

●

© सर्वाधिकारं प्रकाशकाधीनम्

●

मूल्यम्—100.00 (सौ रुपया मात्र)

●

मुद्रक :

श्री शङ्कर आर्ट प्रिण्टर्स

त्रिपोलिया बाजारः

जयपुरम्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकाशकीयम्

सनातनधर्म महोपदेशक, सर्वशास्त्रविशारद "महामहोपाध्याय" विरुद संमानित पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी प्रवर्तमान शताब्दी के संस्मरणीय विद्वानों में अग्रगण्य थे। वस्तुतः इनके जन्म से राजस्थान की धरा गौरवान्वित रही है। सत्य है, सम्पूर्ण भारतभूभाग पर अपने वैदुष्य की छाप छोड़ने वाले विरले ही होते हैं। इन पंक्तियों के लेखक को उनके प्रत्यक्ष दर्शन का अवसर मिला है, एक बार नहीं, सैकडों बार उनकी सन्निधि से लाभार्जन किया है, उनके व्यक्तित्व का, वैदुष्य का, विषयगाम्भीर्य का, विनोदप्रियता का, तपोमूर्तित्व का तथा कर्मशीलता का प्रत्यक्ष किया है। यह प्रख्यात है, सर्वविदित है कि मेरे पूज्य पिता स्व० पं० वृद्धिचन्द्र शास्त्रीजी उनके प्रधान शिष्य रहे। आपने उनसे ही व्याकरण, साहित्य, दर्शन, धर्मशास्त्र एवं अन्य विषयों का गूढ ज्ञानार्जन किया। पत्रकारिता क्षेत्र में– 'संस्कृत-रत्नाकर' का शुभारम्भ करने वाले सुहृन्मण्डल के कर्णधार, संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार हेतु राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के संस्थापक, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठों की स्थापना के सूत्रधार, शास्त्रार्थ महारथी पं० चतुर्वेदी जी का नाम वस्तुतः उनके क्रियाकलापों के कारण युग-युगान्तरों तक स्थायी रहेगा। विद्यावाचस्पति पं० श्री मधुसूदन ओझा के प्रधान शिष्य रहे श्री चतुर्वेदीजी वैदिकविज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान् थे। सेवा-निवृत्ति के उपरान्त जब आपने वाराणसी में रहने का निश्चय किया तो काशिराज श्री विभूतिनारायणसिंह जी ने आपके वैदुष्य का सर्वाधिक लाभार्जन किया। श्रीमद् भगवद्गीता पर उनका प्रवचन, जो तीन खण्डों

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

में प्रकाशित है, भारतीयसंस्कृति के मर्मों को, गूढार्थों को प्रकट करता है। गीता रहस्य को प्रकट करने के साथ ही आपने भारतीय वाङ्मय में विवादास्पद बनाये गए पुराण साहित्य के अनालोचित पक्षों का आलोचन किया, उनका पंचमवेदत्व प्रमाणित किया, उनको प्रामाणिक न मानने वाले लोगों से शास्त्रार्थ किया तथा पुराणों की घटनाओं को वेदसम्मित प्रमाणित किया। काशिराज की पुराणप्रकाशन योजना भी इसी शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। आप ही उस योजना के मूल प्रवर्तक रहे हैं। उन्होंने पुराणों के समस्त पक्षों पर प्रवचन किया था, वही मूल प्रवचन संस्कृत भाषा माध्यम से लिखाये गए उनके लेखों में प्रकट हुआ है। उनकी समस्त रचनायें 'चतुर्वेद संस्कृत रचनावलि' में प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु पुराण विद्या संबन्धी सामग्री अभी तक अप्रकाशित थी। महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी के दो स्वनामधन्य सुपुत्रों माननीय श्रद्धेय पं० देवीदत्त जी चतुर्वेदी एवं डॉ. शिवदत्तजी चतुर्वेदी के व्यक्तिगत आग्रह एवं आदेश की पालना का ही यह सुपरिणाम है कि राजस्थान संस्कृत अकादमी उनके 'पुराणविद्या' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन कर गौरवान्वित है।

ग्रन्थ सरल संस्कृत में लिखा गया है, परन्तु कहीं कहीं पर लेखक का सुप्त वैदुष्य जाग उठा है। शास्त्रीय चिन्तनपक्ष जहां जहां जागा है, वहां वहां पाण्डित्य के दर्शन भीं होते हैं। फिर भी श्री चतुर्वेदी जी की विषयप्रतिपादन शैली इतनी स्पष्ट है कि अध्येता उनके विवेचन को आत्मसात् करलेता है। 'पुराणविद्या' क्या है ? क्या पुराणों में पुरातन विषयों का ही प्रतिपादन है या वे आधुनिक विद्याओं एवं वादों का भी बिवेचन करते हैं— इत्यादि प्रश्नों के समाधान को प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थ का शुभारम्भ किया गया है। तदनन्तर लेखक ने वेदों में पुराणों के महत्त्व प्रतिपादन को प्राथमिकता देते हुए भारतीय-संस्कृति के मूलस्वरूप का प्रतिपादन करने वाले धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के ग्रन्थों में पुराण के

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

महत्त्व का विवेचन किया है। इतना ही नहीं, उनकी मान्यता रही है कि पुराणों में भी पुराणों का महत्त्व चित्रित है, वैदिक कर्मकाण्ड प्रक्रिया में भी पुराणों का विशेष योगदान रहा है। उन्होंने वेदों के पठन-पाठन की प्रक्रिया को दो प्रकार की माना है — कर्मकाण्ड प्रधाना– अर्थात् शब्दमात्र ग्रहणपरा तथा अर्थानुसन्धानपरा। प्रथम प्रक्रिया अर्थात् वैदिक कर्मकाण्ड प्रक्रिया में प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रों के ऋषि, छन्द, देवता आदि के ज्ञान की परमावश्यकता है। इस परिज्ञान के बिना मन्त्र का प्रयोग उचित नहीं माना है, अपितु उसे पापी कहा है।

न केवल अन्य प्रक्रियाओं में, अपितु वेदार्थ विचार में भी पुराणों का उपयोग प्रमाणित है। ऋषि, छन्द, देवता एवं विनियोग के ज्ञानाभाव में वैदिकमन्त्रों का सही उपयोग असम्भव है, क्योंकि जिस मन्त्र से जिसका प्रतिपादन किया गया है, वही उस मन्त्र का देवता माना गया है। इन्द्र, अग्नि, आदित्य आदि के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले मन्त्रों के ये ये ही देवता माने गए हैं। कुछ मन्त्र ऐसे भी हैं, जिनमें ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) स्वयं की ही स्तुति करते दिखाई देते हैं, वहां ऋषि ही उस मन्त्र का देवता माना गया है, अर्थात् उनका वहां ऐक्य मानना चाहिए। यह समस्त विवेचन बृहद्देवता, निरुक्त आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में पर्याप्त विवेचित है।

'वेदों में इतिहास भी है'— इस सिद्धान्त को प्रतिपादित कर श्री चतुर्वेदीजी ने मीमांसकों एवं आर्यसमाज के विद्वानों के तर्कों का उत्तर भी प्रस्तुत किया है। मीमांसक शबर स्वामी के व्याख्यान को उद्धृत कर श्री चतुर्वेदी जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि माधवाचार्य प्रभृति वेद-भाष्यकारों ने अनेक मन्त्रों में प्रयुक्त शब्दों के भाष्य में मनुष्यों के उल्लेख को स्पष्ट किया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र (1/1/10/2) में आगत 'ऋभु' शब्द की व्याख्या करते हुए माधवाचार्य लिखते हैं— 'ऋभवो हि सुधन्वन आंगिरसस्य पुत्राः' इत्यादि। माधवाचार्य ने उक्त

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्र की व्याख्या में कक्षीवान् दीर्घतमा के संपूर्ण वृत्त को प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार च्यवन ऋषि के उपाख्यान को भी 'युवं च्यवानं चक्रथुर्यवानम्' मन्त्र की व्याख्या में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार शतशः इतिहास वृत्त सायणाचार्य व माधवाचार्य कृत वेदभाष्यों में प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में (ऐतरेय ब्राह्मण आदि में) हरिश्चन्द्र, नहुष आदि की कथायें मनुष्यचरिताख्यान परक ही हैं। इस प्रकार अत्यन्त विस्तार से अनेक उद्धरणों को प्रस्तुत कर श्री चतुर्वेदी जी ने वेद में इतिहास तत्त्व को प्रमाणित किया है। इसी प्रकार वैदिकविज्ञान के व्याख्याता होने के कारण उनकी भी यह मान्यता रही है कि वेदों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में वैज्ञानिक विषयों का उल्लेख है।

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' उक्ति सर्वविदित है। मन्त्रार्थ प्रक्रिया में उसके वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए यह परमावश्यक है कि पुराण एवं इतिहास ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन किया जाय, अन्यथा यथाकथंचित् अर्थ करने से मन्त्र का स्वारस्य प्रकट नहीं होता। विद्यावाचस्पति पं० श्री मधुसूदन ओझा महोदय ने विलुप्तप्राय वेदार्थ विज्ञान का प्रकाशन इतिहास तथा पुराण ग्रन्थों को आधार 'बनाकर' ही किया है।

न केवल वैज्ञानिक प्रक्रिया में, अपितु वेदाङ्गों व न्यायविद्या आदि के परिज्ञान में भी पुराणप्रसंग महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं। किसी भी ग्रन्थ के अध्ययनारम्भ से पूर्व उसके लेखक के विषय में पूर्ण परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। इस प्रकार का परिचय पुराणों से ज्ञातव्य है। गौतम, जैमिनि, कपिल, व्यास, प्रभृति व अन्यान्य सम्प्रदाय प्रवर्तकों का पुरातन इतिहास, वंशपरम्परा आदि पुराणों के माध्यम से ही ज्ञातव्य है। महामहोपाध्याय जी ने पुराणों के मुख्य प्रयोजनों की भी प्रासंगिक चर्चा यहां की है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अन्याान्य विवेचित विषयों में— पुराणों के लक्षण उनके स्वरूप, उनकी महत्ता, उनकी संख्या, उनके प्रतिपाद्य विषय उनका क्रम तथा काल (निर्माण काल) आदि महत्त्वपूर्ण हैं। पुराणों के लक्षण के विषय में भी विवाद रहा है। लगभग १३ पुराणों में किञ्चित् परिवर्तन के साथ 'पुराणं पञ्चलक्षणम्'' को स्वीकारा है। यहां की सोद्धरण मीमांसा वस्तुतः मननीय है। साथ ही उन्होंने दस लक्षण रहस्य को भी विवृत किया है। प्रसंगतः विवाहरहस्य, पञ्च महायज्ञ विवरण, यज्ञ परिचय, गौतमोक्त अष्ट आत्म गुणों की संस्कार रूप में मान्यता, षड्विध शुद्धि-रहस्य, इसी क्रम में आशौच रहस्य, तीर्थयात्रा की उपादेयता, व्रतोपवासादि की युक्तियुक्तता, आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर भी की गई चर्चा-अत्यन्त उपादेय है।

पुराण संख्या के विषय में उनका कथन भी १८ पुराणों को ही मान्यता प्रदान करता है। पुराण १८ ही क्यों? इसकी उपपत्ति भी दर्शनीय है। सांख्यदर्शन सूक्ष्मशरीर को १८ अवयवों से युक्त स्वीकारता है— पञ्च ज्ञानेन्द्रियां, पंच कर्मेन्द्रियां, पञ्चप्राण, मन, बुद्धि, तथा अहंकार। कर्म भी १८ प्रकार के माने गये हैं, यज्ञ भी १८ प्रकार के होते हैं, पुराणों में प्रतिपादित सृष्टि के भी १८ भेद हैं, सृष्टि के समस्त पदार्थ प्रथमतः तीन भागों में विभक्त हैं— पार्थिव, आन्तरिक्ष, तथा दिव्य। ये सभी निरुक्तकार के अनुसार ६ प्रकार के भाव विकारों से युक्त होने पर १८ प्रकार के हो जाते हैं। इस प्रकार १८ युक्तियों से श्री चतुर्वेदी जी ने पुराणों की संख्या १८ को महत्वपूर्ण बतलाया है। इसी संख्या के स्वीकरण में आध्यात्मिक रहस्य की भी चर्चा की गई है। वस्तुतः यही वैदिक विज्ञान है, जो पुराणों में विवृत है।

'पुराणक्रम रहस्य' में क्रम की द्विविधता निर्दिष्ट करते हुए प्रथम दश पुराणों को आरोहक्रम का प्रतिपादक तथा शेष आठ पुराणों को अवरोहक्रम का प्रतिपादक बतलाया है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

'वेद अपौरुषेय हैं' 'वेद ईश्वर रूप हैं', 'वेद ईश्वरकृत हैं', ईश्वर की कृपा से मन्त्रद्रष्टा महर्षियों नें वेद रचे हैं'—इस प्रकार वेद की रचना को लेकर चार प्रमुख विवाद लोक में प्रचलित हैं। वस्तुतः इन मतों पर पं० मधुसूदन ओझा महोदय ने 'महर्षि कुल वैभवम्' में सोपपत्तिक चर्चा की है तथा महामहोपाध्याय जी ने उसकी टीका में उस विषय का अच्छा प्रतिपादन किया है। यहां पर भी उसी आधार पर चिन्तन प्रस्तुत किया है।

पुराणों के आविर्भाव क्रम का विवेचन करते हुए महामहोपाध्याय जी नें 'इतिहासपुराणं पञ्चमो वेदः' को उद्धृत किया है तथा वेदवत् इसे भी प्राचीन बतलाया है। उनका कथन है कि अर्थ की दृष्टि से तो इस पुराणविद्या का सर्व प्रथम अवतरण ऋषियों अथवा विभिन्न अवतारों के हृदय में हुआ। उन्होंने उसे शिष्यपरम्परा से प्रचारित किया। यह उल्लेख तत्तत् पुराणों में उल्लिखित है। जैसे ब्रह्मपुराण में उल्लेख है—हिरण्यगर्भ ऋषि से वसिष्ठ नें, वसिष्ठ से नारद ने, नारद से मैंने अर्थात् व्यासजी ने पुराणज्ञान प्राप्त किया है (ब्र० पु० अ० 244 श्लोक 45)। विष्णुपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण, कूर्मपुराणादि में सभी में ऐसा उल्लेख मिलता है।

क्या समस्त पुराण— एक ही व्यास की रचना हैं, या व्यास परम्परा ने इसका (विपुल साहित्य का) निर्माण किया है– इस प्रश्न के समाधानार्थ उन्होंने 28 व्यासों का उल्लेख किया है तथा प्रमाणरूप में कूर्मपुराण, शिवपुराण, देवीपुराण– भागवत के पद्यों को उद्धृत किया है। विवेचन मननीय है।

महाभारत एवं पुराणकर्त्ता कृष्णद्वैपायन व्यास की उत्पत्ति का विवेचन करते हुए श्रीचतुर्वेदीजी ने विभिन्न पुराणों के उद्धरणों को प्रस्तुत

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

किया है, महाभारत युद्ध के काल पर 'प्रकाश' डाला है तथा व्यास के कार्यों का उल्लेख भी किया है।

'वैज्ञानिकोपाख्यानि' शीर्षक से उन्होंने वेद मन्त्रों को प्रस्तुत कर उनकी वैज्ञानिकता प्रतिपादित की है, क्योंकि अधिकांश पुराणों में इन्हीं उपाख्यानों का विस्तार से उल्लेख प्राप्त होता है। जो आख्यायिकायें वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होती हैं, वेदव्यासजी ने इन्हीं का सरलीकरण कर तारतम्य से पुराणों में वर्णन किया है। व्यासपरम्परा के समान व्यास की शिष्यपरम्परा भी स्मरणीय है। महामहोपाध्यायजी भी इसी सिद्धान्त के पोषक हैं कि आज उपलब्ध पुराण वक्ता-श्रोता के वैविध्य के कारण विस्तार को प्राप्त हैं, जैसा कि महाभारत के संबन्ध भी है। यह जय, भारत तथा महाभारत के रूप में परिवर्धित हुआ है। इसी विषय को श्री चतुर्वेदीजी ने विस्तार से प्रस्तुत किया है। उनके कथन का सारांश यही है कि पुराणों के दो रूप प्राप्त होते हैं, संक्षिप्त तथा विस्तृत। इसे पुराण तथा महापुराण भी कहा जा सकता है। श्रीमद् भागवत एवं देवीभागवत को महापुराण मानना, पद्मपुराण का भी द्वैविध्य, वायु पुराण एवं शिव पुराण पर चर्चा, महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। पुराणों के काल निर्णय प्रसंग में उन्हें वर्ष शब्द का अर्थ 'दिन स्वीकारना पडा है। उन्होंने भाषा की दृष्टि से एवं अन्यान्य कारणों से (ज्योतिषआदि) पुराणों को जैन-बौद्ध ग्रन्थों से प्राचीन माना है। पुराणों में समागत यवनादि शब्दों पर भी विचार किया है तथा प्रसंगवश 'महाभारतमीमांसा' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है, जिसमें ग्रन्थ लेखक श्री चिन्तामणि विनायक ने प्रचलित अनेक मतों का खण्डन किया है। श्रीचतुर्वेदीजी ने अनेक प्रसंगों की युक्तियुक्त व्याख्या भी की है। वैदेशिक प्रमाणों के अनुसार भी महाभारत आदि की प्राचीनता प्रमाणित की है, परन्तु साथ ही 'यूरोपीय विद्वानों के मतों का खण्डन भी किया है। यह समस्त विषय विशेषतः पठनीय एवं मननीय होने के साथ ही विचारणीय भी है। शोधपूर्ण यह आलेख शोधकर्ताओं के लिए अत्यन्त उपादेय है, जिसमे 'ना मूलं लिख्यते किंचिद् नानपेक्षितमुच्यते" सिद्धान्त की अक्षरशः पालना की गई है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

राजस्थान संस्कृत अकादमी वस्तुतः धन्य है, जिसे 'पुराणविद्या' ग्रन्थ के प्रकाशन का गौरव प्राप्त हुआ। सम्पादन कर्म में प्रवीण, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के प्राच्यविद्या विभाग में साहित्यविभागाध्यक्षचर डॉ० शिवदत्त जी चतुर्वेदी नें मनोयोगपूर्वक इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है, अतः मैं व्यक्तिशः एवं अकादमी की ओर से डॉ० चतुर्वेदी के प्रति साभार धन्यवाद प्रदान करता हूँ। श्लोकबद्ध प्रस्तावना (पुरोवाक्) उनके वैदुष्य को प्रकट करती है।

श्री राधेश्याम शर्मा सञ्चालक श्री शंकर आर्ट प्रिन्टर्स, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंनें अत्यधिक श्रमपूर्वक अस्पष्ट एवं पुरातन पाण्डुलिपि को सुन्दर ढंग से प्रकाशित किया है। वस्तुतः वे साधुवाद के पात्र हैं।

संस्कृत अकादमी की ग्रन्थप्रकाशन समिति, महासमिति एवं माननीय अध्यक्षजी श्रीराधाकृष्णजी दीक्षित के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्तव्य मानता हूँ, जिन्होंने उक्त ग्रन्थ प्रकाशन के प्रति उत्सुकता, औदार्य एवं महनीयता का परिचय दिया। उक्त कार्य के निष्पादन में सहयोगी रहे कार्यालय के समस्त कर्मचारी एवं ज्ञाताज्ञात सभी अन्य मार्गदर्शकों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त करता हूँ।

आशा है, सारस्वत साधना में लीन, शोधार्थी, मनीषी एवं प्रबुद्ध पाठक इस ग्रन्थ की सहायता से ज्ञानार्जन करेंगे तथा लाभान्वित होंगे। यदि आवश्यक समझा गया तो उक्त ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी अकादमी प्रकाशित करने का विचार करेगी। इत्यलं बहु विस्तरेण।

विदुषां विधेयः—

(प्रो०) डॉ० प्रभाकर शास्त्री

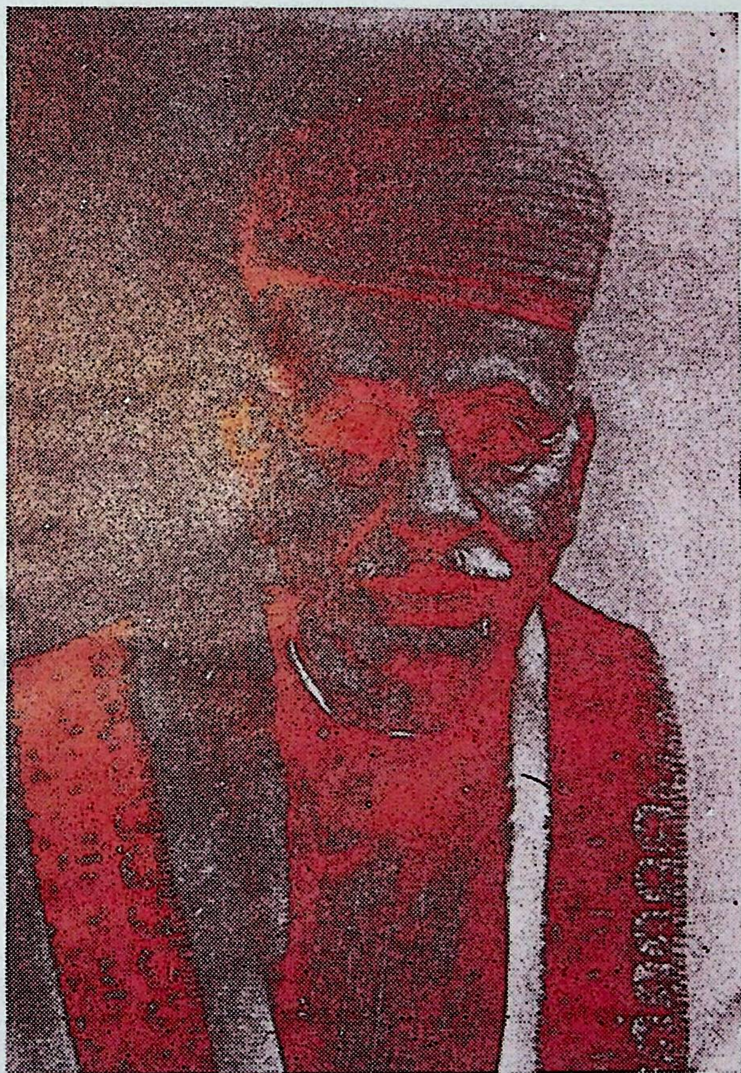
निदेशक

राजस्थान संस्कृत अकादमी

जयपुर

गीता जयन्ती, सं. 2051

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA



स्व० म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुरोवाक्

'पुराणविद्या' ग्रन्थस्य प्रकाशनपुरस्कृतिः ।
सेयं संजायते तावद्विद्वद्भिरभिनन्दिता ॥ १ ॥

ग्रन्थस्यास्य विनिर्माता सर्वदेशस्य भूषणम् ।
सर्वविद्यापारदृश्वा सर्वमर्मविभावसुः ॥ २ ॥

महामहोपाध्यायो यः श्रीमान् सर्ववेदविदांवरः ।
वाचस्पतिश्च शास्त्रार्थरचनाचारुपण्डितः ॥ ३ ॥

रीतिनीतिविनिर्माता मर्यादापरिपालकः ।
तेजोरूपः प्रसन्नाऽस्यो निखिलज्ञानवर्षकः ॥ ४ ॥

प्रातःस्मरणवेलासु देशे देशेऽभिवन्दितः ।
सहस्रशो वा चित्रेषु प्रत्यहं परिपूजितः ॥ ५ ॥

समस्ते भारते देशे भ्रामं भ्रामं निरन्तरम् ।
मर्मोपदेष्टा धर्माणामाचाराणां च नित्यशः ॥ ६ ॥

पौराणिकरहस्यानामसमो गुरुरव्ययः ।
आचाराञ्चितनिश्वासवन्द्यशोभाप्रदायकः ॥ ७ ॥

तादृगृषिवरेण्यस्य ग्रन्थोऽयं मुद्रितोऽधुना ।
ग्रन्थरूपेण लिखितो ग्रन्थोऽयं बहुयत्नतः ॥ ८ ॥

तेषां लेखकवर्याणां श्रीगिरिधरशर्मणाम् ।
ये ग्रन्था मुद्रिता जातास्तेष्वेके लेखसंग्रहाः ॥ ९ ॥

टीकारूपास्तथैवाऽन्ये भाषायां लिखिता अपि ।
संस्कृते लिखितस्तावद् ग्रन्थोऽयं बहुतोषदः ॥१०॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

राजस्थानसंस्कृताऽकादेमी याऽस्ति विश्रुता ।
तन्निदेशकवर्यः श्रीप्रभाकरवरःश्रुतः ॥११॥
विद्यावंशे लेखकस्य पौत्रतां यो बिभर्ति वा ।
श्रीमतां ख्यातयशसां वृद्धिचन्द्राख्य शास्त्रिणाम् ॥१२॥
धर्मशास्त्रधुरीणानां रत्नाकरतरस्विनाम् ।
पुत्रो प्रभाकरो नूनं प्रभाकर समो भुवि ॥१३॥
वृद्धिचन्द्राः पट्टशिष्या आसन् वै लेखकस्य ते ।
नानाविद्याप्रवीणास्तु नाना व्याख्यानतत्पराः ॥१४॥
मया सर्वमनुध्याय पाण्डुग्रन्थः समर्पितः ।
निदेशकस्य हस्तेऽथो मुद्रणं स व्यजिज्ञपत् ॥१५॥
समये सकृदायाते मुद्रणं यत्प्रजायते ।
तेन प्रसन्नाः सर्वेऽपि मादृशा सहृधर्मिणः ॥१६॥
पूर्वंभासन्प्रसन्नास्याः श्रीशालग्रामशास्त्रिणः ।
तैरुक्तं न कदाऽप्याहो संस्कृते लिखितुं यतेत् ॥१७॥
नैकोऽपि पाठकस्तावदुपलभ्यो भवेदिति ।
हिन्द्यामेव लिखेत्सर्वं पाठकास्तत्र सन्ति वा ॥१८॥
किन्तु तत्रापि भूयांसो विद्वांसो संस्कृतं विना ।
नो लिखन्ति स्म तेषां वा पूजनीयं महद्यशः ॥१९॥
तेष्वेव लेखकेष्वासँश्चतुर्वेदविदांवराः ।
निरन्तरं ये व्यलिखन् संस्कृते सश्रमाः किल ॥२०॥
तेषां विज्ञानमाहात्म्यादद्य धर्मस्य संस्थितिः ।
काचित्संजायते देशे साकारोऽयं महान् स्तवः ॥२१॥
शास्त्राण्यालोड्य बहुशो यज्ज्ञानं मथितं मुहुः ।
या च संरचना जाता सा वाणी धन्यतां गता ॥२२॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

नाना मूलविचाराणां संचारे यैर्विचारितः ।
दिव्योऽथ शोभनः कालो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥२३॥
पौराणिकं वाङ्मयं तन्निखिलं मूलमात्मनः ।
भारतीयस्य सर्वस्य सौख्यानां कारणं हि तत् ॥२४॥
पौराणिके वाङ्मये वा सर्वमेव समाहितम् ।
देशकालसमायुक्तधर्मार्थादिविनिश्चयः ॥२५॥
पुराणविद्या यात्रेयं ग्रन्थेऽस्मिन् प्रतिपादिता ।
चतुर्दशसु विद्यासु स्वतन्त्रैकाऽथ सा भुवि ॥२६॥
कथानामेव साम्राज्यं पुराणेषु निरूपितम् ।
एतादृशी धारणापि बद्धमूला जने जने ॥२७॥
पुराणानां प्रपठने नोत्सहन्ते जनाः क्वचित् ।
संस्कृते ख्यातयशसामपि सैषा स्थितिर्मता ॥२८॥
यस्य तस्य पुराणस्य प्रसङ्गे समुपागते ।
तमेवांशं समुद्घाट्य स्वकार्यपरिचालनम् ॥२९॥
सम्पूर्णस्य पुराणस्य यदि स्यान्मननं मनाक्–
का कथा तस्य संसारे मुक्तिभाजो महात्मनः ॥३०॥
ये पुनस्तत्त्वदीक्षायां दीक्षिताः श्रुतिसागराः ।
पौराणिकं रहस्यार्थं ज्ञातुं बोधयितुं पुनः ॥३१॥
जनतासौहृदाबद्धभावा दिव्या विभूतयः ।
तेषां तु चरणद्वन्द्वं वन्दनीयं सदैव वा ॥३२॥
पुराणेषु निगूढेयं व्याख्याता सृष्टिवल्लरी ।
कथं तावत्सृष्टिरियं प्रादुर्भूताऽथ केन वा ॥३३॥
प्रपाल्यते प्रयत्नेन संहारे कोऽथ वा प्रभुः ।
कियान् कालो मिलत्यत्र वीक्षणाय सुमेधसाम् ॥३४॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

कालस्य रूपं किं तावत्तत्त्वानि विविधानि वा ।
कथमुत्पादितान्येवं पुराणं बोधयेत्पुनः ॥३५॥
संसारे वस्तुजातानां मूल्यं यद्वा प्रकीर्त्यते ।
अद्य तावद् वयं सर्वे मूल्यानामेव पूजकाः ॥३६॥
आदर्शाः कथिता ये वा प्राचीने लेखने तदा ।
मूल्यं वा नूतनं नाम तेभ्य एव प्रदीयते ॥३७॥
उपयोगोऽथ लाभो वा मूल्यं सर्वं प्रकथ्यते ।
"वैल्यू" आङ्ग्लशब्दस्यानुवादः प्रथितोऽस्त्ययम् ॥३८॥
मूल्याख्यस्त्वथ शब्दोऽयं क्रेयवस्तुपरिग्रहे ।
प्रयुज्यते स्म सामान्ये विशेषोऽयं तथा कृतः ॥३९॥
पुराणमूल्यमपि वा वक्तव्यं साम्प्रतं त्विदम् ।
मूल्यव्याख्याप्रसङ्गेषु पुराणान्यधुना कथम् ॥४०॥
सोद्देश्यानि प्रवर्तन्ते लाभं किं दर्शयन्ति वा ।
एतत् सर्वं विनिश्चेयं नो चैतानि गतानि तु ॥४१॥
एतादृशानां शतशः प्रश्नानामुत्तरे मुदा ।
विद्वांसो नूतनान् ग्रन्थान् रचयन्ति पुनः पुनः ॥४२॥
पुराणानि बहोः कालाद्दूरितानि निभाल्यताम् ।
पुराकाले पुराणानि दैनिकानि भवन्त्यहो ॥४३॥
पुराणस्य कथांशानां दिव्यानामर्थनिश्चये ।
अनिश्चये वा सन्देहाः कैश्चिदुत्थापिता इह ॥४४॥
तैरेवं यत्कृतं तत्र समाजे सा परिष्क्रिया ।
काचिन्मूलस्थितैवासीत्तेन तस्यापि संस्तुतिः ॥४५॥
संजाताऽर्यसमाजाऽख्यसंस्थानिर्माणकारणात् ।
स्वामी श्रीमान्दयानन्दस्तत्र मुख्यो व्यजायत ॥६६॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ब्राह्मणो बाल्यकाले यो मूलशंकरसंज्ञकः ।
दयाप्रबलतायां स दयानन्द इति श्रुतः ॥४७॥
एवमेव पुरा काले बुद्धदेवो व्यजायत ।
जैनमासीन्मतं तादृक् प्रपन्नं जगतीतले ॥४८॥
का वा तत्राऽथ भाषाऽसीत्कासीत्तत्राऽथ संस्कृतिः ।
पुराणभाषा तत्राऽसीत्पुराणानां च संस्कृतिः ॥४९॥
तेषां मतानां ग्रन्थेषु पुराणानि बहूनि वा ।
सन्त्येव सम्यक् पुष्टानि मार्मिकाण्यपि भूरिशः ॥५०॥
एवं वैदिकसन्मार्गविरोधपरिकल्पने ।
प्रारम्भादेववर्धिष्णुविचाराः प्रकटीकृताः ॥५१॥
समाजघटकास्तावद्राजानो धानिका अपि ।
विरोधभाषाकेन्द्रस्थाः पोषयन्ति स्म तां रुचिम् ॥५२॥
विचार्यमाणे बहुशो दोषा दृष्टौ समागताः ।
व्यथयन्ति मनांस्येव तेषां तेषां मनस्विनाम् ॥५३॥
बहुकालप्रचलनादूर्ध्वं कारणादृष्टयो ।
विलुप्यन्ते प्रकृत्यैव फलमात्रेऽथ दृष्टयः ॥५४॥
केन्द्रीभूता भवन्त्येव तेन दोषा अपि स्वतः ।
प्रादुर्भवन्ति शतशो फललाभेऽपि व्यत्ययः ॥५५॥
संजायते पुरस्तात्तु संजाता विषमा स्थितिः ।
कारणानां परिज्ञाने तेजोवत्त्वं समागतम् ॥५६॥
कारणज्ञानलोपेन दोषाणां भूयसाऽपि च ।
साम्राज्यं जायते येन मूलोच्छेदः प्रजायते ॥५७॥
तत्रैवदृष्टिमाकृष्टुमान्दोलनपुरस्सरम् ।
बौद्धा जैनाचार्यवादाः प्रादुर्भूता इहाऽभवन् ॥५८॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

आर्यसमाजिका संस्था दयानन्दपुरस्कृता ।
तामेव त्रुटिमन्वेष्टुं वेधसैव प्रकल्पिता ॥५९॥
तेनैव दृष्टिराकृष्टा गवेषणपुरस्सरम् ।
प्रवर्तन्ते महात्मानो विद्वांसः साम्प्रतं मुहुः ॥६०॥
पुनस्तान् मूलभूतांस्तु सिद्धान्तान् स्थापयन्ति वा ।
तेन जागरणं जातं मूलतत्त्व-गवेषणे ॥६१॥
मूलतत्त्वाऽन्यथाभावे दोषाणां प्रचुरा तु या ।
स्थितिः संजायते काचित्तदैवाऽन्दोलनस्थितिः ॥६२॥
समाजे संभवत्याहो क्रमः प्रकृतिनिष्ठुरः ।
एवं प्रवर्तितं चक्रमनुकार्यं तदैव तु ॥६३॥
साफल्यं जनुषो नाम जायते कृष्णकल्पितम् ।
तयैव दृष्ट्या जानीमः कार्याऽकार्यविनिश्चयम् ॥६४॥
नो चेद् भ्रान्ता भवन्त्येव काले काले गवेषकाः ।
केचित्पुराणसाहित्यं दूषयन्ति विचक्षणाः ॥६५॥
वेदाश्चैते मते तेषां हालिकानां प्रगीतयः ।
एवं श्रद्धाऽभावमहामाहात्म्येन तु संस्थितिम् ॥६६॥
स्वीयां प्रघोषयन्तोऽपि नो सीदन्ति दिवाऽनिशम् ।
सैषैवाऽऽसुरसम्पत्तिः खड्गहस्ता सदैव वा ॥६७॥
सन्दृश्यते पुरस्तात्तु तद्विरोधोऽपि जायते ।
रहस्यकथने तावद्विद्वांसः कृतनिश्चयाः ॥६८॥
प्रवर्तन्ते यदा तावत्पटस्य परिवर्तनं ।
तदा संजायते नित्यं सैषा सर्वा व्यवस्थितिः ॥६९॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वदा जायमानाऽस्ते दृश्यते सर्वदैव वा ।
एवं प्रासङ्गिकत्वं वा भूयो भूयः प्रजायते ॥७०॥
पौराणिकानां मर्माणां प्रकाशे संगते पुनः ।
पुराणानां [महाकोशः संसारे दीप्यतेऽव्ययः ॥७१॥
सर्वेषु देशकालेषु पुराणानां प्रकल्पनम् ।
संजातं जायते चापि नैरन्तर्येण नित्यशः ॥७२॥
सर्वेषु देशेषु च ते विषया विनिरूपिताः ।
पुरातनेषु ग्रन्थेषु संकेतास्ते मिलन्त्यहो ॥७३॥
आर्यावर्ते पुण्यभूमावाद्या विज्ञानराशयः ।
प्रादुर्भूय समस्तेऽपि जगतीतलमण्डले ॥७४॥
विस्तारिता येन धरा धारिताऽस्ति दिवाऽनिशम् ।
नो चेत्सर्वं विनश्येत गहनेऽज्ञानसागरे ॥७५॥
पुराणसंहिता काचिदेकैवाऽसीत्पुरा श्रुता ।
'पुराणसंहितां चक्रे भगवान् बादरायणः' ॥७६॥
वेदोऽपि च पुराकाले एक एव व्यजायत ।
यज्ञसंपादनायाथ व्यासेनैव चतुष्टये ॥७७॥
विभक्त आसीद् वेदोऽयं सौकर्ये यज्ञकर्मणाम् ।
विभाजितानां वेदानां भाषा-विषयकारणात् ॥७८॥
काठिन्यमासीद् बोद्धुं वा परमार्थसुधां तदा ।
काठिन्यदूरीकरणे पुराणानां विनिर्मितिः ॥७९॥
संजाता तेन वेदार्थो जनतायां गतोऽखिलः ।
सारल्येन च संकेता ये निगूढा तु मन्त्रगाः ॥८०॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तेषां कथानकेष्वासी दवतारोऽनुरञ्जकः ।
सर्वेषां तु गभीरार्थज्ञाने नैव प्रवृत्तयः ॥८१॥

मनोरञ्जकतायां तु जायन्ते नाऽत्र संशयः ।
सुहृत्संमितमार्गोऽयं कान्तायाः संमितोऽपि वा ॥८२॥

प्रभुसंमितता वेदे सुहृत्संमितता तथा ।
न कान्तासंमितत्वं तु वेदे क्वाऽपि प्रदृश्यते ॥८३॥

विभावा अनुभावाश्च विद्यन्ते संचरिष्णवः ।
रत्यादिनवभावाश्च मूलतः संस्थिता इह ॥८४॥

तस्यैव परिपोषेण कान्तासम्मितता मता ।
लोकावर्जनपुण्येन परमार्थमनःस्थितिः ॥८५॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां समवाप्तये ।
यतनीयं मनुष्येण जीवनस्य विशुद्धये ॥८६॥

मोक्षलाभाय सर्वोऽयं सम्भारः क्रियते पुनः ।
मानुषं दुर्लभं तावच्छारीरे चक्र-विस्तरे ॥८७॥

इदं मानुष्यकं लब्ध्वा यदि बन्धनसंहृतिः ।
नोच्छेदिता वृथैवेयं मानुषीगतिरास्थिता ॥८८॥

बोद्धुं सर्वं समर्थोऽस्ति मानवो बुद्धिकारणात् ।
तेनैव तत्कृते तावदुपदेशा मता इह ॥८९॥

अधीत्य सर्ववाक्यानां पुष्पितानां कदम्बकम् ।
जागर्तिः काऽपि जायेत परमार्थविनिश्चये ॥९०॥

देवाश्चैवासुराश्चैव मनोवृत्तिषु संस्थिताः ।
तेषां युद्धं मनोभूमौ जायतेऽहर्निशं किल ॥९१॥

कदाचिदेते देवा वै विजयं यन्ति वान्यदा ।
असुरा एव युद्धेषु विजयं यान्ति भूरिशः ॥९२॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

या तु सत्वात्मिका वृत्तिर्यया लोकस्य पालनम् ।
सेवाभावो यदा नूनं देवानां विजयस्तदा ॥९३॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चाऽपरानपि ।
एवमाद्या विचारास्तु राक्षसानां जयावहा ॥९४॥

दानवीं वृत्तिमाश्रित्य मरणं जायते यदा ।
दानवीगतिरायाति नितान्तक्लेशदायिनी ॥९५॥

दैवीं गतिं समाश्रित्य देहपातादनन्तरम् ।
दैवीं योनिमुपाश्रित्य मोदन्ते मुक्तमानसाम् ॥९६॥

दैवान् विचारानादाय शास्त्रौघः सम्प्रवर्तते ।
करुणा खलु मूलं स्याद् ग्रन्थानां रचने सताम् ॥९७॥

येनोपायेन जीवानां क्लेशनाशः प्रजायते ।
कारुण्यैरथ सम्पूर्णा ऋषयः प्रस्तुवन्ति तम् ॥९८॥

व्यासदेवस्य कः स्वार्थो पुराणानां विलेखने ।
करुणादृष्टिरस्याऽसीज्जगतां प्रति सादरा ॥९९॥

ज्ञानावतार एवाऽसीद् भगवान् बादरायणः ।
निर्व्याजा करुणा तस्य लेखनं सर्वमादिशत् ॥१००॥

अद्यापि चाऽथ संसारे सर्वं व्यासात्प्रजायते ।
सर्वबुद्धिस्थितो व्यासः प्रधानश्चिरजीविनाम् ॥१०१॥

अद्यापि लोककल्याणं वीक्षतेऽहर्निशं ऋषिः ।
पारमार्थिकसाहित्यप्रकाशनविधिं प्रति ॥१०२॥

जागरूकः प्रेरयिता जागर्ति जगतीतले ।
अध्यात्माधिकृतौ व्यासो जगतां हृदयास्थितः ॥१०३॥

नवोन्मेषे च सिद्धान्तान्व्याकरोति पुनः पुनः ।
पुराणानां च विविधा व्याख्याकाराः सुमेधसः ॥१०४॥

CC-0 Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

बोधयन्ति पुराणेषु प्रतीकानां समुन्नतिम् ।
व्यासस्यैवाऽस्ति सर्वं तद् व्याख्यानं यन्त्रतां गताः ॥१०५॥

ते ते ते तेऽथ ये केचिदाचार्या लेखनीं श्रिताः ।
विद्यावाचस्पतिश्रीमन्मधुसूदनशर्मणाम् ॥१०६॥

स्वीयोऽनुभव एवाऽसीद् व्यासस्य प्रेरणां प्रति ।
अनेकदिनपर्यन्तं यदा तत्त्वं न संगतम् ॥१०७॥

भोजनाच्छादनादीनामप्यरुचिर्व्यजायत् ।
विचार्यमाणं तद् यावन्नैव संस्पष्टतामियात् ॥१०८॥

तावत्संकोच आयाति निखिलेष्वपि कर्मसु ।
निद्राकालेऽपि नामुञ्चद् विचारपरिधावनम् ॥१०९॥

तदा कश्चित् कथितवान् कर्णे सर्वं विनिर्मलम् ।
प्रकाशितमभूत् सर्वं येनाऽयाता प्रसन्नता ॥११०॥

कस्तावत्संकथितवानेवं सर्वं व्यवस्थितम् ।
इति पृष्टाः स्वशिष्येण स्वीयच्छायाऽनुवर्तिना ॥१११॥

समीक्षाचक्रवर्तित्वे स्थितास्तेऽवादिषुर्मुदा ।
व्यासः सर्वं कथयति रहस्यांशं विनिर्मलम् ॥११२॥

श्रीमानाद्यस्तु भगवान् शंकराचार्य एव वा ।
शारीरकस्य भाष्यस्य निर्माणानन्तरं किल ॥११३॥

शिष्याध्यापनवेलायां वृद्धंब्राह्मणमागतम् ।
पृच्छन्तं विविधान् प्रश्नान् ब्रह्मसूत्रस्थितानथ ॥११४॥

उत्तराणि प्रकृत्यैव प्रगल्भो व्याहरत् किल ।
पुनः प्रश्नानथोत्थाप्य पुनरुत्तरकर्मणि ॥११५॥

दिनाष्टकं व्यतीयाय वाचां कलहखेलया ।
शंकराचार्यशिष्यस्तु पद्मपादो ह्यमर्षभाक् ॥११६॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

व्यासं समागतं बुद्ध्वाऽऽचार्यं तत्त्वं न्यवेदयत् ।
तदा ज्ञातं भगवता शंकरेण विनिर्मलम् ॥११७॥
तेजो राशिः स्थितं तावत्समक्षं परमोज्ज्वलम् ।
तदेवं व्यासदेवोऽयं भ्रामं भ्रामं महीतले ॥११८॥

नित्यं ज्ञानात्मकं ज्योतिर्व्याकरोति दिवाऽनिशम् ।
ये चाऽसुरा व्याकुलाः स्युर्नास्तिक्यपरिपोषणे ॥११९॥

तेषां मतानां दलने जागरूकत्व संस्थितिः ।
सर्वत्रैव सदा दृष्ट्या व्यासाधीनाऽखिला स्थितिः ॥१२०॥
यत्तदान्तरिकं ज्योतिस्तदन्तरतमं पुनः ।
कथं करतलं गच्छेदित्येव विषमा स्थितिः ॥१२१॥
वेदास्तथा पुराणानि तद् ज्योतिर्दर्शयन्ति वा ।
दिव्यतायाः समाह्वानं जीवने जायते पुनः ॥१२२॥
क्षणे क्षणे लोक्यमानं यदेतत्परिवर्तनम् ।
स्वभाव एव जगतां गच्छतीति जगत्किल ॥१२३॥
पूर्वं यदाऽसीत्सुस्पष्टं तत्सन्देहाऽस्पदं भवेत् ।
मध्ये मध्ये विलुप्तं वा तत्त्वज्ञानं विनिर्मलम् ॥१२४॥
वैज्ञानिकी रश्मिरेषा धूमिला बोभवीति वा ।
मध्ये मध्ये कारणानां माला विस्मृतिमागता ॥१२५॥
अदावन्ते च तत्त्वानां ज्ञानं रुढि प्रयच्छति ।
परमार्थस्तु तेनाऽपि साधनीयो भवत्यहो ॥१२६॥
किन्तु नो दार्ढ्यमायाति यावत्सर्वं विनिर्मलम् ।
नैव संजायते बुद्धौ मानितानां विवेकिनाम् ॥१२७॥
पूर्वं पुराणविषये शङ्काः स्युः खण्डनाय वा ।
पूर्वपक्षास्तदा सर्वे प्रादुर्भूता भवन्त्यहो ॥१२८॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तेषमुत्तरदानेषु रहस्याऽख्यानमुत्तमम् ।
सुनिगूढं सुविस्पष्टमाचार्यैः प्रकटीकृतम् ।।१२९।।
तेनैव नूनं धर्माणां पुनः संस्थापना मता ।
स्थूणानिखननन्यायादेते प्रश्ना विलोकिताः ।।१३०।।
सत्यं तिरोधापयितुं नैव शक्यं चिराय वा ।
सत्यं भगवतो रूपं जगतां धारकं हि तत् ।।१३१।।
स्वयमेव स शङ्कानां जनको वाऽपि जायते ।
बुद्धाद्या अपि तस्यैवाऽवतारा इति भण्यते ।।१३२।।
सर्वं ज्ञात्वा च कल्याणीं मतिमास्थाय नः पिता ।
जगदीशः प्रकुरुते लीलामात्रं मुहुर्मुहुः ।।१३३।।
तस्य लीलामजानाना मोहितास्तस्य मायया ।
चकिता भीतभीता वा प्रभवन्ति मनीषिणः ।।१३४।।
तेषामेव परित्राण-काम्यया भगवानपि ।
भूयो भूयः समायाति धृतरूपः सतां गतिः ।।१३५।।
एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
अव्ययः पुरुषः साक्षान्नारायण इति श्रुतः ।।१३६।।
क्रूरात्क्रूरतरा वाऽस्तु प्रत्याक्रमणवेशिता ।
कष्टां दशां प्रपन्नानां साधूनां चित्तवृत्तयः ।।१३७।।
मुह्यमाना लेह्यमाना चोष्यमाणास्तथाऽपि वा ।
समाह्वयन्ति रूपेषु पितरं तं समद्भुतम् ।।१३८।।
संसारेषु कृतार्थत्वं तदा सद्यः प्रजायते ।
घोराऽज्ञानान्धकाराणां पटलीवेगतो यदा ।।१३९।।
संसारेषु समस्तेषु संव्याप्नोति दिवाऽनिशम् ।
सहस्रभानोरुदयो नूतनो वा प्रजायते ।।१४०।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विस्तारयति तज्जोतिःपुञ्जं ज्ञानात्मकं पुनः ।
येनाऽज्ञानं तमस्तावद्दूरा दूरे पलायते ॥१४१॥

परितोऽपि स्फुरत्प्रेमप्रकाशः परिदृश्यते ।
सा वाणी परमा लोके यया सर्वा विभूतयः ॥१४२॥

सम्प्राप्यन्ते विनाऽयासं वरदानसमा स्वतः ।
करुणामय संदृष्टिरार्षा भवितुमर्हति ॥१४३॥

लौकिकानां मानवानां व्याहारा रागसंगता ।
द्वेषादिभिः संगता वा नत्वार्षेयी तथा स्थितिः ॥१४४॥

निखिलं वाङ्मयं चैतद् ऋषिप्रज्ञासमन्वितम् ।
जगतामुपकाराय सर्वदैव प्रवर्तते ॥१४५॥

पुराणविद्या ग्रन्थेऽस्मिन् पुराणानां तु कुञ्जिका ।
प्रस्तुतालेखकैरस्मत् पितृभिः सर्वतोषिणी ॥१४६॥

नूनमेतेन तोषः स्यात् माननीयमनीषिणाम् ।
लेखकानामपि कृते श्रद्धा काचित्समर्प्यते ॥१४७॥

दिनाङ्कः २७ । ९ । ९४
गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी मार्गः
जयपुरम्
(राजस्थानम्)

इति निवेदयते
शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदः
दीपावली
२०५१

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणविद्या

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणविद्या

पुराणानि खलु भारतीयवाङ्मयहारलतायां नायकायमानानि, भारतीयसंस्कृतिमन्दिरस्य विद्युत्प्रकाशस्तम्भायमानानि भारतीयानां जीवनस्य पोषकरसायनायमानानि चेत्यत्र नास्ति कस्याप्यक्षरजुषः संशयलेशः।

भारतीयानामाचाराः, विचाराः, विज्ञानानि, इतिहासाः, कुलगोत्रपरम्पराः, कलाकलापाः, राजनीतिः, वार्ता: (संपत्तिहेतवः), दर्शनानि, कर्तव्यमार्गाः, पारस्परिका व्यवहाराश्चेति सर्वान् संस्कृतिप्रकोष्ठकानेतानि समुज्ज्वलं द्योतयन्ति, समादधते च तत्रतत्रोत्पद्यमानान् संशयान् निःशेषतया। न हि पुराणानि अनाराध्य भारतीयसंस्कृतिस्वरूपं कथमपि सुबोधं भवेत्। वेदा हि संक्षेपेण समाम्नाताः, तेषां भाषा प्रतिपादनशैली चाद्यतनलोकानां बुद्धेरति दूरे गता, केवलं यज्ञप्रक्रियां च समालम्ब्य प्रवर्तन्ते तेषामनुशासनानि, या यज्ञप्रक्रियाद्य परोक्षतमास्माकम्। तस्माद्वेदैः सर्वविधं संस्कृतिज्ञानं दुःशकमेव। पुराणानि नु वेदानुसारीण्येव वेदाज्ञां शिरसि निदधानानि संस्कृतेः सर्वेष्वङ्गेषु निर्विशेषं प्रकाशं पातयन्ति। अशिक्षितैरल्पशिक्षितैरपि च तत्र तत्र कथाश्रवणमात्रेण या संस्कृतिर्भारतीया विज्ञायते, सोऽयं पुराणानामेव प्रभावः। यदि हि नावातरिष्यत् पुराणप्रकाशः, अन्धकारगर्त एव लीनाद्य भारतीया संस्कृतिर्न केनाप्यमोत्स्यत। "यस्य देशस्य चिरं स्वातन्त्र्यमपजिहीर्षितम्, तस्येतिहासे संस्कृतौ च दृढं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रहर्तव्यम्" इति राजनीतिसूत्रशिक्षानिपुणैर्यूरोपीयैर्विविधान् प्रयत्नानास्थाय पुराणेष्वश्रद्धा समुत्पादिता भारतीयानाम्, विस्मृतात्मानश्च भारतीया अपि कञ्चित्कालं तत्स्वर एव स्वरं मेलयन्तोऽनवरतं पुराणनिन्दामेव स्वं कर्तव्यं मन्यन्ते स्म। तत एव देशे पुराणकथापद्धतिह्रासः, तत्र शिक्षितानामसहयोगश्च संप्रवृत्तः। तत एव च भारतीयसंस्कृतिस्वरूपस्याज्ञानमप्यद्य विजृम्भितं दृश्यते, विशेषेण नवशिक्षितेषु। परं प्रयत्नशतेनापि सत्यं तिरोधापयितुं चिरं न शक्यते।

विवेकेन पुनर्जागरितम्। य एव पुराणेषु चिरं घृणामकुर्वन्, त एवाद्य तेषामत्यादरे संलग्ना दरीदृश्यन्ते। इतिहासान्वेषणे बद्धपरिकराणां नवशिक्षितानामपि मुखाद्बलान्निःसरति - यत्पुराणान्यनालम्ब्य न शक्यो भारतीयइतिहासः कथमप्यन्वेष्टुम्। महतीष्वपि अन्वेषणसंस्थासु अद्य पुराणान्याद्रियन्ते, तेषामेवाधारेण प्राक्तनेतिहाससूत्रं परिचाय्यते। तेषां शुद्धपाठान्वेषणायापि वहुत्रानुष्ठीयन्ते प्रयत्नाः। सुप्रतिष्ठितेषु विश्वविद्यालयेषु महाविद्यालयेष्वपि च पुराणपरीक्षा, पुराणशिक्षा च सादरं संनिवेश्यते। केवलं व्याकरणन्याययोर्जन्मयापनमेव परं पुरुषार्थं मन्यमानेषु, पुराणे बद्धश्रद्धान् "पौराणिकः" इत्युपहसितवत्सु न शास्त्रार्थपण्डितेष्वपि पुराणचर्चाद्य क्रमेण प्रसरति। उच्चशिक्षाधुरमुद्वहन्तीष्वपि सर्वमान्यासु संस्थासु समये समये पुराणप्रवचनानि जायन्ते। पुराणान्यधिकृत्योच्चशिक्षितैर्निबन्धा विरच्यन्ते। सोऽयं सर्वोऽपि पुराणानां स्वोमहिमा, यः पथि भ्रष्टानपि भारतीयान् पुनराचकर्ष। यावद्यावच्च घर्षणं स्यात्, तावत् शाणोल्लीढस्य मणेरिव पुराणमणेः प्रकाशोऽधिकाधिकं प्रसरेदिति सुदृढोऽस्माकं विश्वासः। यथा पुराणोक्तानि विमानादीनि श्रुत्वा ये जना 'वृद्धाकथानकम्' इत्युपहसन्ति स्म, त एवाद्य प्रत्यक्षं विमानानि पश्यन्तः पुराप्येतत्कदाचित्प्रचलितं स्यादिति विश्वसन्ति, दिव्यास्त्राणां प्रभावमुपहसितवन्तोपि चाद्य परमाणुभेदनास्त्रेण चकिताः, कथंचित् पुराप्येवंविधमर्थं विश्वसितुं विवशीभवन्ति, तथैव आधुनिकस्यापि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भौतिकस्य विज्ञानस्याधिकाधिकप्रसारे पुराणोक्ताः सर्वेऽपि विषया विश्वसनीयाः संपद्येरन्, भारतीयानां मस्तकं च क्रमेण गर्वोन्मत्तं तेन जायेत - यद्विज्ञानमद्यैतावत् परिश्रम्य यदन्विष्टवत् तदतिपुरातन एव काले भारतीयैर्विज्ञातं बभूवेति ।

1. पुराणेषु आधुनिक्यो विद्या वादाश्च

याश्च विद्या अद्यत्वे अति महत्त्वास्पदीभूता मन्यन्ते - यथासंपत्तिशास्त्रम् (इकोनामिक्स), भूगर्भविद्या (जियालाजी), मानवजातेः सर्वविध-इतिहासः, विकासशास्त्रमित्याद्याः, तासां संस्कृतभाषायामभावरूपं कलङ्कं पुराणान्येव प्रोञ्छन्ति । आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता दण्डनीतिश्चेति चतस्रो या विद्याः परिगण्यन्ते-तत्रैका वार्ता विद्या, सैवेदानींतनैः संपत्तिशास्त्रमिति व्यवह्रियते । वृत्त्युपायान् या विवेचयति, सा वार्ताख्या त्रिवेति । तस्यास्तत्र तत्र लक्षणदर्शनात् । इयं संस्कृतभारत्यां कियद्विस्तृतासीदिति चतसृषु विद्यास्वेकतमस्थानप्राप्त्यैव सुस्पष्टं शक्यमनुमातुम् । परमतीव खेदास्पदमिदम्-यदद्यत्वे न तस्या विद्याया एकोपि स्वतन्त्रो ग्रन्थः संस्कृतवाङ्मय उपलभ्यते । केवलं पुराणेष्वेव विप्रकीर्णा विद्येयमद्यत्व उपलभ्यते, राजनीतिग्रन्थेषु वा क्वचित् क्वचित्प्रसङ्गागता । भूगर्भविद्यापि च पुराणेष्वेव संप्राप्येदानीम् । इतिहासस्य च यावतो विभागानाधुनिकाः परिकल्पयन्ति - सभ्यतेतिहासः, शासनैतिहासः, विभिन्नजातीनामुदगमेतिहासः, इत्यादीन, ते सर्वेपि विभागाः पुराणेष्वेव संक्षेपेण विस्तारेण वा प्राप्यन्ते । विकासवादश्चापि पुराणेषु सपरिकरं निरूपित इति तत्र तत्र स्फुटीकरिष्यामः । किमन्यत्, य इदानीं विभिन्नाः वादाः प्रचलन्ति - वोलशेविज्मवादः, कम्यूनिज्मवादः इत्याद्याः, तेषामपि मूलं पुराणेषु प्राप्यते । सृष्टेरारम्भादेव विभिन्न-जातीनामितिहासं निरूपयितुं यदा सशक्नुवन्ति पुराणानि, तदा समये समये प्रादुर्भूतानां विभिन्नवर्गवादानां मूलं तत्र कथं नोपलभ्येत ? अद्यैव ते वादा जन्मालभन्तेति तु सृष्टिवैचित्र्यमविदुषां साहसमात्रम् । तत्तेषां वर्गवादानां दोषान् निराकृत्य गुणग्रहणमात्रं पुराणेषु कृतमित्यपरम-नुकूलम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यथा स्मर्यते श्रीमद्भागवते - (७ स्कन्धे अ० १४श्लो० ८)—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

विचार्यताम् - किमितोऽधिकं बोलशेविज्मवादे कम्यूनिज्मवादे वा संपद्विषय उच्येत । इममेव मूलसिद्धान्तं प्रचारयितुं प्रवृत्तास्ते ते वर्गवादाः, तेषु बहवो दोषा अपि नेतृजनभ्रमप्रमादादिजन्याः प्रवृत्ताः । तान् दोषानुपेक्ष्य समाजोपकारकाणि तत्त्वानि संगृहीतानि पुराणेषु ।

श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्ध एव शापप्रदानकाले (१८ अ० ऋषिपुत्रस्योक्तौ—

अहो प्रमादः पालानां पीवानां बलिभुजामिव ।
स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥३३॥
ब्राह्मणैः क्षात्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः ।
स कथं तद्गृहे द्वाःस्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति ॥३४॥

इत्यादि । किमितः परः प्रजानामधिकारो वर्ण्येत ?

यदि नाम नाभविष्यन् पुराणानि, तदा रघुवंश - कुमारसंभव-शाकुन्तल-विक्रमोर्वशीयसदृशेषु काव्यनाटकेषु कविकुलगुरोः कालिदासस्य सुमधुरा न्यक्कृतामृता वाचः श्रावं श्रावं यं लोकोत्तराह्लादमनुभवन्ति सहृदयाः, यच्च करुणामृतसागरे कृतमज्जना लोकोत्तरास्वादमनुभूयोन्मग्नाः—

"उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"

इति बलादिवोद्गिरन्ति, भारविमाघनैषधादिषु चानवरतं लोकोत्तरमाह्लादमापिबन्तीव, तदेतत् सर्वं खपुष्पायितमभविष्यत्, पुराणमेव सर्वेषां कवीनामाधारभूमिरिति । अद्यापि च ये केचन काव्यं नाटकमाख्यायिकादिकं वा विलिख्य जगति प्राप्तप्रतिष्ठा भवन्ति, तेऽपि प्रायेण पुराणानां यं कमप्यंशमुपजीव्यैवेति प्रत्यक्षं दृश्यते ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इदं च सूर्यचन्द्रादिभिरनुक्षणं नीराज्यमानं तारकितनीलनभोवितानं समुद्रमेखलाजगतीप्राङ्गणं दोधूयमानवायुचामरं गङ्गायमुनादिभिर्विरचिताल‌वालं पर्वत-तरुराजिविराजितं मनसाप्यचिन्त्यविस्तारं जगन्मण्डलं यद् दृष्टिगोचरीभवदनन्तं कौतुकं विस्मयगर्भमुत्पादयति नः सर्वेषाम्, तदिदं कुत आगतम्, केनास्येदृशी दिव्यानामपि मनोहारिणी सुषमा संपादिता, कियतः कालादिदं नयनगोचरीभवति – कियन्तं च कालं स्थास्यति, द्रष्टारश्चास्य वयं कुत आगताः, कियन्तश्चास्मादृशा अस्मत्पूर्वजा अतीताः इत्यादि जिज्ञासा कस्य वा चेतसो नाकुलयति चेतः, को वा दुरवगाहस्यास्य विज्ञानवारांनिधे रत्नं प्राप्तुं न समुत्सुकः, कस्य सकाशे सविज्ञानं ज्ञानमिदं लभेयेति कः सहृदयो नानुक्षणमनुचिन्तयति । सेयं सर्वापि जिज्ञासा सर्वेषां सहैव शरीरेण लयमाप्स्यत् - यदि नाम पुराणानि न भूतलममण्डयिष्यन् । पुराणान्येव हि सर्वविधसृष्टितत्त्वमाचक्षाणानि विमलयन्ति मनांसि जिज्ञासामुपशमय्य । ये त्वनाश्रित्यपौराणिकं विज्ञानमतीन्द्रियं स्वबुद्धावेवालम्भन्ते, ते पदे पदे स्खलन्ति, प्रत्यहं स्वसिद्धान्तान् परिवर्तयन्ति, न च तेषां तरणिः कदापि लब्धस्थाना सुप्रतिष्ठिता भवतीति प्रतिपदमवलोक्यते विचारचणैः ।

2. वेदेषु पुराण-महत्त्वम्

तदेतत्सर्वं हृदि निधायैव भगवती श्रुतिरपि पुराणानां पंचमवेदत्वं स्वयमाचष्टे । तत्र प्रथममथर्वसंहितायाः पंचदशं काण्डमेवालोच्यताम् । तद्धि व्रात्यमहिमप्रतिपादकमखिलमपि काण्डम् । काण्डारम्भादेव प्रथमेऽनुवाके प्रथमे पर्यायसूक्ते व्रात्यस्य प्रजापतिप्रेरकत्वं चाम्नाय, व्रात्यस्य नीललोहितत्वम्, ईशानमहादेवपदाभिलष्यतां च प्रतिपाद्य, द्वितीये पर्यायसूक्ते तस्य व्रात्यपदाभिधेयस्य महादेवस्य उत्थाय प्राच्यादिषु चतसृषु दिक्षु चलनम्, बृहद्रथन्तरादीनां साम्नाम्, आदित्यविश्वदेववरुणादीनां देवानाम्, ऋषीणाम्, यज्ञयजमानादीनां च तत्तद्दिक्षु तदनुगमनमभिधाय, अन्यदपि बहुतरं तस्य परिकरमुक्त्वा तद्विनिन्दकस्य हानिम्, स्तोतुश्च

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तत्तत्पदार्थसम्पत्तिमभिष्टुत्य, तृतीये पर्यायसूक्ते देवसमर्पितायामासन्द्यां तस्य महादेवस्यारोहणम्, ऋग्यजुरादीनां वेदानाम्, साम्नाम् ग्रीष्मवसन्तादीनामृतूनां चासन्द्या अङ्गत्वं प्रख्याय, चतुर्थे पर्याय सूक्ते वसन्तादीनामृतूनां बृहद्रथन्तरादीनां साम्नाम् च पृथक् पृथक् प्राच्यादिषु दिक्षु तद्गोप्तृत्वं व्याख्याय, पंचमे भव-शर्व-रुद्राद्या अष्टौ प्रसिद्धा रुद्रमूर्तयः पृथक् पृथक् दिक्षु तस्य इष्वासाः (शर प्रक्षेप्तारः) इति निरूप्य, तत्रैव प्राच्यादिभिश्चतसृभिर्दिग्भिः सह ध्रुवा-ऊर्ध्वा-अन्तर्देश इत्यपि दिश उक्त्वा, षष्ठे पर्यायसूक्ते (अथ१५ का० १अनु० ६सूक्त) तस्य व्रात्यापरपर्यायस्य महतो देवस्य ध्रुवायां दिशि चलनम्, तत्र भूम्यग्न्यादीनां तदनुगमनम्, ऊर्ध्वायां दिशि चलनम्, तत्र ऋतसत्य-सूर्य-चन्द्रनक्षत्रादीनां तदनुगमनम् च निरूप्य तदनन्तरं गणानामप्ययनं श्रूयते।[1]

अग्रेऽपि परमाद्यासु दिक्षु चलनमनुचलनं च सुदूरपर्यन्तमाम्नातम् इह व्रात्यस्य वैदिकं रहस्यमतिविस्तृतत्वादप्रकृतत्वाच्च न व्याख्यायते। न चात्र सायणमाधवादीनामाप्तानां भाष्यमप्युपलभ्यते। केवलमत्रैतावदेव प्रतिपाद्यम् यद् ऋग्यजुःसाम्नाम् ब्रह्मपदप्रतिपादस्याथर्ववेदस्य च यथात्र व्रात्यानुगमनं श्रुतम् तथैवेतिहासपुराणयोरपीति वेदैः सह परिगणनात् पंचमवेदत्वं तयोर्भगवत्या श्रुत्यैव व्यंजितम्। व्रात्यपदेनात्र रुद्रावतारः परमात्मा विवक्षित इति तु स्फुटमेव। 'व्रात्यो वा इदमग्र आसीत्' इति हि पैप्पलादसंहितायां सर्वेभ्यः पूर्वभावित्वं निर्दिष्टम्। रुद्रस्य नीललोहितकुमारत्वं च पुराणेषु ख्यापितमेव। 'नमो व्रात्याये' ति रुद्राध्यायेऽपि श्रूयते।

---

1. स उत्तमां दिशमनुव्यचलत् ।७।
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ।।८।।
ऋचां च वै ससाम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।९।
स वृहतीं दिशमनुव्यचलत् ।।१०।।
तमितिहासश्च पुराण च गाथाश्च नाराशंसीश्चाव्यचलन् ।।११।।
इतिहासस्य च स वै पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां प्रियं धाम भवति, य एवं वेद ।।१२।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ततश्च अत्रोपनिबद्धं देवादीनां वेदपुराणादीनां च तदनुगमनं युक्तमेवेति। आत्मतत्त्वं सृष्टिनिरूपणे वेतिकुमार व्याख्याने।

छान्दोग्योपनिषदि च (७ प्रपा० १ख०) नारदसनत्कुमार संवादे स्पष्टं श्रूयते।[1]

अत्र हि स्पष्टमितिहासपुराणयोः पंचमत्वम्-अर्थात् पंचमवेदत्वमभिहितम्। अग्रेऽपि तस्मिन्नेव प्रकरणे पुराणोल्लेखो दृश्यते।[2]

एवमभ्यासेनेतिहासपुराणानां वेदेषु पंचमत्वमत्र श्रुतम्।

इह केचिद् वेदानां मध्ये पंचमं वेदम् इति वा, वेदानां चतुर्णामपि वा वेदम्-ज्ञानसाधनम्-इति इतिहासपुराणस्यैव विशेषणं 'वेदानां वेदम्' इति व्याचक्षते। अन्ये तु महान्तो 'वेदानां वेदम्' इति व्याकरणं गृह्णन्ति। यथा यथावाऽस्तु - पंचमत्वं त्विह स्पष्टं भूयसा श्रुतं नापलपनीयमेव, तच्च पंचमत्वं वेदेष्वेव, उपस्थितत्वादिति पंचमवेदत्वं स्फुटं ख्यापयति श्रुतिः। अश्वमेधप्रकरणे च शतपथब्राह्मणे (१३ काण्डे ४ अध्याये ३ ब्राह्मणे) पारिप्लवास्थाने प्रथमादिदिनेषु ऋग्यजुरादिवेदानां, सर्पदेवयजनविद्यानां च

---

1. अधीहि भगव इतिहोपससाद सनत्कुमारं नारदः, तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद, ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति।१।

स होवाच - ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्, इतिहास पुराणं पंचमम्, वेदानां वेदम्, पित्र्यं राशिम् दैवं निधिम्, वाकोवाक्यम्, एकायनम् देवविद्याम्, ब्रह्मविद्याम् भूतविद्याम्, क्षत्रविद्याम्, नक्षत्रविद्याम्, सर्पदेवजनविद्याम् एतद् भगवोऽध्येमि।२। सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविद्"।

2. नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेद आथर्वणश्चतुर्थः इतिहासपुराणः पंचमो वेदानां वेदः। इत्यादि (७।१।१४)

तदग्रेऽपि—

"वाग्वाव नाम्नो भूयसी, वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्, इतिहासपुराणम् पंचमम्, वेदानां वेदम् इत्यादि (७।२।१)।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

व्याख्यानं विधाय अष्टमेऽह्नि इतिहासव्याख्यानम् । नवमेन्हि पुराणाख्यानं च विहितम्, तत्र चेतिहासपुराणविशेषणत्वेन वेदशब्दः स्पष्टमुपात्तः ।[1]

एतदग्रे च साम्नां प्रवचनमुक्तम् । अयमत्र क्रमः–पूर्वं सावित्रीस्तिस्र इष्टीः कृत्वा यदाश्वमेधे अश्वो विमुक्तः, तदनन्तरं यज्ञमण्डपे देवसदनाख्ये यत्कर्तव्यं भवति – तत् शतपथे (कां० १३ अ० ४ ब्रा० ३)[2]

एतत्सर्वं भगवता कात्यायनेनापि विवृतं श्रौतसूत्रेषु, अश्वमेध-प्रकरणे च ।[3]

---

1. 'अथाष्टमेऽहन् एवमेवेतास्विष्टिषु संस्थितासु एषैवावृद् - अध्वर्यवितिह्वे होतरित्येवाध्वर्युः', मत्स्यः सामवेदो, राजेत्याह, तस्योदकेचरा विशस्त इम आसत इति मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चापि समेता भवन्ति, तानुपदिशति इतिहासो वेदः सोऽयमिति कश्चिदितिहासमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः संप्रेष्यति, न प्रक्रमान् जुहोति । (१२)

अथ नवमेऽहन् एवमेवैतास्विष्टिषु संस्थितासु एषैवावृद-अध्वर्यवितिह्वे होतारित्येवाध्वर्युः, तार्क्ष्यो वै पश्यतो राजेत्याह, तस्य वयांसि विशस्तानी-मान्यासत इति वयांसि च वयोविधिकाश्चोपसमेता भवन्ति-तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किंचित् पुराणमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः संप्रेष्यति, न प्रक्रमान् जुहोति (१३क) ।

2. तदुक्तमध्यायारम्भे एव– "प्रमुच्याश्वं दक्षिणेन वेदिं हिरण्मयं कशिपूपस्तृणाति (कशिपुः – मृदु आसनम्) तस्मिन् होता उपविशति, दक्षिणेन होतारं हिरण्मये कूर्चे यजमानः, (कूर्चः सपादमासनम् पीठभूतम्) दक्षिणतः ब्रह्मा च उद्गाता च । हिरण्मय्योः कशिप्वाः पुरस्तात् प्रत्यङ् अध्वर्युः – हिरण्मये वा कूर्चे हिरण्मये वा फलके (पादरहितमासनम् फलकम्) समुपविष्टेषु अध्वर्युः – संप्रेष्यति (होतारं प्रेरयतीत्यर्थः)" ।

3. दक्षिणतो वेदेर्हिरण्मयेपूपविशन्ति ।१८।
अध्वर्युयजमानौ कूर्चयोः ।१९।
फलकयोर्वा ।२०।
होतृब्राह्मणोद्गातारः कशिपुषु ।२१।
होतर्भूतान्वाचक्ष्व, भूतेष्विमं यजमानमध्यूहेति पारिप्लवं प्रेष्यति ।२२।
ह वै होतारिति प्रतिगृणाति" ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अत्र अध्वर्युणा प्रैषे कृते होता सर्वान् तत्तद्वेदादि व्याख्यानं श्रावयति। इदमेव पारिप्लवाख्यानमुच्यते। दशदिनानीदं व्याख्यानं प्रत्यहं प्रचलति। प्रत्यहं तिस्रः सावित्र्य इष्टयः क्रियन्ते। तत्र षट्सु दिवसेषु व्याख्यानानन्तरं प्रक्रमहोमोऽपि विधीयते, सप्तमादिषु चतुर्षु दिनेषु तु प्रक्रमहोमो न क्रियते। एवं दशसु दिवसेषु पूर्णेषु पुनरावृत्तिः इति संवत्सरपर्यन्तं षट्त्रिंशदावृत्तयः क्रियन्ते। तदुक्तम्—[1]

प्रत्यहं च ऋत्विग् यजमानातिरिक्ता विभिन्नाः श्रोतारो यज्ञमण्डप आहूयन्ते। यस्याख्यानस्य यो राजा आम्नातस्तत्प्रजाभूताः तदुपयुक्ता एव श्रोतारः तस्मिन् दिने सन्निधाप्यन्ते।

अत्र प्रथमे दिने मनुर्वैवस्वतो राजा, तत्प्रजानां मनुष्याणां प्रतिनिधिभूताः अश्रोत्रिया गृहस्थाः श्रोतारः ऋचां व्याख्यानम्, द्वितीये दिने यमो वैवस्वतो राजा तत्प्रजानां पितॄणां प्रतिनिधिभूताः स्थविराः (वृद्धाः) श्रोतारः यजुषां व्याख्यानम्, तृतीये दिने वरुण आदित्यो राजा, तत्प्रजानां गन्धर्वाणां प्रतिनिधिभूताः शोभना युवानः श्रोतारः अथर्ववेदस्य व्याख्यानम्, पंचमे दिने अर्बुदः काद्रवेद्रः (सर्पः) राजा तत्प्रजानां सर्पाणां प्रतिनिधिभूता सर्पविदः (सर्पपालकाः 'सपेरा' इति प्रसिद्धाः) सर्पैः सहिताः श्रोतारः सर्पविद्याया व्याख्यानम्, षष्ठे दिने कुबेरो वैश्रवणो राजा, तत्प्रजानां रक्षसां प्रतिनिधिभूताः पापकृतः सेलगाः (सेलं गायन्ति ये) श्रोतारः, देवयजनविद्याया व्याख्यानम्, सप्तमे दिने असितो धान्वो राजा, तत्प्रजानां असुराणां प्रतिनिधिभूताः कुसिदिनः (कुसीदम्-ऋण-रूपेण दत्तानां रूप्यकादीनां वृद्धि व्याजं, इति सूद इति च प्रसिद्धं ये उप-जीवन्ति) श्रोतारः भाषाप्रतिपादकस्य वेदस्य व्याख्यानम्, अथाष्टमे दिने मत्स्यः सामदो राजा, तत्प्रजानामुदकेचराणां मत्स्यानां प्रतिनिधिभूता मत्स्याश्च मत्स्यघातकाश्च श्रोतारः इतिहासस्य व्याख्यानम्, नवमे दिने

1. "एतदेव समानमाख्यानम् पुनः पुनः परिप्लवते तस्मात् पारिप्लवम् षट्त्रिंशतम् दशाहानाचष्टे" (शतपथ १३का० ४अ० ३ब्रा० १५क)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तार्क्ष्यो (गरुडः) वैपश्यतो राजा, तत्प्रजानां पक्षिणां प्रतिनिधिभूता पक्षिणश्च पक्षिविद्यावेत्तारश्च श्रोतारः पुराणस्य व्याख्यानम्, दशमे तु दिने धर्म इन्द्रो राजा तत्प्रजानां देवानां प्रतिनिधिभूताः प्रतिग्रहवर्जिताः श्रोत्रियाः श्रोतारः साम्नां व्याख्यानमिति। एवं वेदमध्ये व्याख्यानविधानात् वेदः सोऽयम् इति स्पष्टं श्रवणाच्च वेदत्वमितिहासपुराणयोरत्र स्पष्ट-मुक्तम्। उभे चेतिहासपुराणे अशिक्षितप्रायाणामवरजातीयानामवरकर्म-रतानामपि चोद्धारके इत्यपि श्रोतृविवरणेन व्यंजितम्। अनेनैव श्रोतृ विवरणेन न प्रसिद्धवेदभागमितिहासपुराणे—अपि तु ततः पृथगेव वेदपद वोधनीये वेदपदम्यर्हणीयं चेत्यपि स्फुटं व्यंजितम्। तत एव वेदानधिकृता-नामपि श्रोतृतया इहोपस्थापनम्। वेदज्ञानामृत्विग् यजमानादीनामपि च तच्छ्रवणविधानमित्युभयोपकारकत्वमनयोरितिहासपुराणयोर्व्याख्यातं भवति।

तदित्थं ब्राह्मणेषु बहुत्र पंचमवेदत्वमितिहासपुराणयोः स्फुटमाम्नात मिति प्रदर्शितम्। न हि ब्राह्मणानि चतुर्णामेव वेदानामन्तर्भूतानि स्वस्यैव पंचमत्वमाचक्षीरन्निति ब्राह्मणेभ्यः पृथगेवेतिहासपुराणयोः सत्वमेभिः प्रमाणैः साधितं भवति, वेदवदभ्यर्हितत्वंच पुराणेतिहासयोः।

वैज्ञानिकं मन्त्रे च पुराणेतिहासयोरपि वेदैः सहैव परमात्मन उद्भव आम्नायते—

"ऋचः सामानि छंदांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रिताः" (अथर्व ११।७।२४)

अत्र उद् ऊर्ध्वम्-अर्थात् सर्वेषां भूतभौतिकानामवसाने, शिष्टः उर्वरितः परमात्मा, तस्मादुच्छिष्टात् – परमात्मनः, ऋगाद्याः सर्वेऽप्युत्पद्यन्ते, इति श्रीमाधवाचार्यप्रभृतयो व्याचक्षते। वैज्ञानिकास्त्वन्वेषणशीला इत्थं वदन्ति-यत्कश्चिदपि पदार्थः परेण मुक्तः पराङ्गतां गतः–परस्मिन्ननुप्रविष्ट इति यावत्-स्वकीयाद् घनाद्यदा विच्छिद्यते तदा स "उच्छिष्ट" इत्युच्यते। यथा ग्रीष्मे सूर्यातपः स्वसंयोगिषु प्रस्तरादिष्वनुप्रविष्टोऽस्तंगतेऽपि सूर्ये स्वघनाद्विच्छिन्नस्तस्मिन् प्रस्तरादावेव स्थितो भवति, तत एव

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अस्तंगतेऽपि सूर्ये तस्मिन् प्रस्तरादावूष्मानुभूयते। यदि तु सोयमातपः सूर्यकेन्द्राद्विच्छिन्नो न स्यात् तदा सूर्येण सहैव गच्छेदिति कथं प्रस्तरादावूष्मानुभव-संभवः? सोऽयं भागः ऋग्वेदपरिभाषायां 'प्रवर्ग्यं' इत्युच्यते, आथर्वणे च 'उच्छिष्ट' इति परिभाषितः। ततश्चेत्थमत्र संगतिः– रसवलाख्ये द्वे जगतो मूलतत्त्वे – ब्रह्ममायाऽपरपदाभिधेये। तत्र रसो विभुर्नित्यः,वलं तु परिच्छिन्नमपि विनश्वरमपि च संख्यानन्त्याद् व्याप्तिमद् प्रवाहनित्यं च, तत्संबन्धाद्रसोऽपि परिच्छिन्न इवाभाति। तत एव च मितिसाधनाद्वलं मायेत्युच्यते। तस्मिन् परिच्छिन्ने मायाख्ये महावले यावान् रसभागोऽनुप्रविष्टो भवति–गृहादिष्विवाकाशभागः, स पूर्वोक्तेन प्रकारेण प्रवर्ग्यभूतश्च उच्छिष्टश्च परिभाष्यते। स एव च भवति सर्वजगदुपादानम्–इति तस्मादेव सर्वा सृष्टिराथर्वणे समाम्नाता। अत्र पुरुषसूक्तसंवादोऽपि —

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ इति॥

अलमनेनाप्रकृतविचारेण, सृष्टिप्रकरणे इदं सर्वं व्याख्यायेत। पुराणानां वेदैः सह तस्मादेव सर्वजगन्मूलादुत्पत्तिरिति स्पष्टमेव मन्त्रे। अत्र च नान्यविशेषणत्वेनोक्तः स्वतन्त्रः पुराणशब्दः पुराणविद्याया एवाभिधायक इति नात्र सन्देहावसरः। बृहदारण्यकोपनिषत्स्वपि —[1]

महतो भूतस्य परमात्मनो निश्वासरूपाण्येव वेदाः पुराणानि चाख्यातानि। अयमत्राभिप्रायः – अस्मादादिशरीरे द्विविधास्तावत्क्रियाः समुपलभ्यन्ते —

---

1. "स यथार्द्रैन्धनाग्नेरभ्याहितत्वात् पृथक् धूमा विनिश्चरन्ति एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि अनुव्याख्यानानि, व्याख्यानानि अस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।" (बृह० २/४/१०)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञानजन्याभवेदिच्छा इच्छाजन्या कृतिर्भवेत् ।
कृतिजन्यं भवेत्कर्म – – – – – –

इति न्यायशास्त्रोक्त-प्रक्रियया जायमानाः प्रथमाः । पुरुषः प्रथममिन्द्रियादिभिः स्वप्रतिकूलं दंशं वा मशकं वा पुरुषान्तरमेव वा प्रहरन्तं जानाति। ततश्च निवारयेयमेनमिति वा पलायेयेत इति वा इच्छति, इच्छयात्मनि यत्नः प्रादुर्भवति, प्रयत्नवदात्मप्रेरणाच्च हस्ते पादे वा क्रिया भवति, यया दंशादिकं पुरुषान्तरं वा निवारयति । ततः पलायितोऽन्यत्र वा गच्छतीति क्रमः सर्वत्रानुभूयते। अपरास्तु क्रिया अनिच्छाकृता एव भवन्ति – यथा हृत्कम्पः, नेत्रनिमीलनम्, श्वासनिर्गमश्चेत्याद्याः। न हि वयं स्वेच्छया प्रयत्नमुत्पाद्य श्वासादिकं प्रेरयामः, अबुद्धिपूर्वकमेव तु सततं क्रमेण ताः क्रियाः स्वभावात् प्रवर्तन्ते, तथैव परमात्मनोऽपि स्वभावादेव वेदपुराणादिकं प्रादुर्भवति – न तु बुद्धिपूर्वकं तदुत्पाद्यत, इति निःश्वाससादृश्येन प्रयत्नाजन्यत्वरूपापौरुषेयत्वं च वेदपुराणादीनामभिव्यंजितम् । नहीश्वरस्यापि वेदपुराणाद्युत्पादने स्वातन्त्र्यम्, अपि तु नित्यान्येव तानि स्वभावतस्तस्मात्प्रादुर्भवन्ति इति । यथा च निःश्वासैरेव शरीरस्यात्माधिष्ठितत्वपरिचयः, सर्वथा निःश्वासनिरोधैर्हि मृत इत्येवोच्यतेऽखिलैः, तथैव ब्रह्माण्डस्येश्वरशरीरभूतस्य वेदपुराणादिभिरेवेश्वराधिष्ठितत्वनिश्चयः । "यदि नाभविष्यन् वेदाः पुराणानि वा, न तर्हि केनाप्येतदधिष्ठाता परमेश्वरः प्रत्यभ्यज्ञास्यत। वेदपुराणादिभिरेवेश्वरः प्रत्याय्यते । तदुक्तं भगवता व्यासेन ब्रह्मसूत्रेषु – शास्त्रयोनित्वाद्" (१/१/३) इति ।

जगज्जन्मादिकर्तृ ब्रह्मेति शास्त्रेणैव प्रत्याय्यते यमर्थं इति सर्वं चेदमुपरिष्टाद्विस्तरेण स्पष्टीकरिष्यते ।

यत्तु केचिदाक्षिपन्ति – उपात्तेयं श्रुतिर्वृहदारण्यकोपनिषदि याज्ञवल्क्यमैत्रेयीसंवादे समुपलभ्यते, तत्र च जीवात्मैवोपक्रान्तिः "नवा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति, आत्मनस्तुकामाय पतिः प्रियो भवति"

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्यादिना। ततश्चात्र महतो भूतस्येति प्रक्रान्तो जीवात्मैव ग्रहीतव्य इति नैतया श्रुत्या परमात्मनः सकाशाद् उत्पत्तिर्वेदपुराणादीनां सिद्धयति इति। तदेतद्वाक्यान्वयाधिकरणेन भगवता व्यासेनैव ब्रह्मसूत्रेषु समाहितम्। जीवात्माभेदेनैवात्र परमात्मानं ग्राहयितुं प्रवृत्तो भगवान् याज्ञवल्क्यः प्रथमं सौकर्याय जीवात्मानमेव प्रियतास्पदत्वेन ग्राहयित्वा तदभिन्नतयैव परमात्मनो दर्शनं विधत्ते। तत एव "आत्मा वा अरे द्रष्टव्य इति, आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्वा विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्" इत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञामुपनिषत्प्रसिद्धामन्ववदत्। तेन च सर्वजगन्मूलभूतस्य परमात्मन एवात्र ज्ञेयत्वेनोपक्षेप इति स्फुटीभवति। मूलतत्त्वस्य विज्ञानेनैव सर्वविज्ञानसंभवात्। इदं सर्वं यदयमात्मा इति च वदन् सर्वात्मभूतः पारमात्मैवात्र वेधतयोपदिष्ट इति स्फुटीचकार। तदग्रे महत् भूतपदाभ्यां तमेव स्मारयित्वा तस्मात् सर्वस्याप्युत्पत्तिमभिदधे – इति सुस्फुटोऽयमर्थः। ये तु जीवात्मनः परमात्मनासहाद्वैतभावं न सहन्ते – तेषां दुरभिलप्येयं श्रुतिरित्यन्यदेतत्।

यदपि केचिदाहुः – इतिहास - पुराण - विद्योपनिषत् - श्लोक - सूत्र-व्याख्यानादिकं सर्वमिदं ब्राह्मणभागस्यान्तर्गतमिह ग्राह्यम् – जगतः प्रागवस्थाप्रतिपादकः "नैव वा किंचिदग्र आसीत्" इत्यादि ब्राह्मणभाग एव पुराणम्। देवासुराः संयत्ता आसन् "इत्यादयश्चेतिहासाः इत्यादिः। तदपीदं न विवेकबुद्धिग्राह्यम्। इह हि उपदर्शितायां बृहदारण्यकश्रुतौ 'ऋचः' 'यजूंषि' 'सामानि' इति नोपात्तम्, अपि तु "ऋग्वेद", "यजुर्वेदः" सामवेव इत्युपात्तम्। तेषामृगयत्रार्थवशेन पादव्यवस्था (मी०सू० २/१/३५) इत्यादिजैमिनिवचोनुसृत्य ऋृक् पदेन पद्यान्येव ग्रहीतुमुचितानि।

सामपदेन गीतय एव, यजुः पदेन गद्यान्यैव। ऋग्वेदपदेन तु ऋक्प्रधानः सर्वोऽपि संहिताब्राह्मणात्मको ऋग्वेद इति प्रसिद्धः संग्रहो ग्राह्यः। तथैव च सामवेदयजुर्वेदपदाभ्यामित्यस्ति शिष्टपरम्परागता शब्दार्थ व्यवस्थितिः। तथा च ब्राह्मणानामग्वेदादिपदेनैव संगृहीतत्वात

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुनरितिहासपुराणग्रहणमपार्थकमेव। तथैव च उदाहृतपूर्वायां छान्दोग्य-श्रुतावपि ऋग्वेदादिपदानि संकीर्त्य इतिहासपुराणमित्यस्य विशेषणं पंचमम् इत्यपि श्रूयते। यदि नाम ब्राह्मणानामेव कतिचन भागाः इतिहास-पुराणशब्दाभ्यां विवक्षिताः स्युः, तर्हि पंचमपदेन ते भागाः कथं संगृह्येरन्। तत्र हि विद्यागणना वा प्रस्तुता, ग्रन्थगणना वेति तावद्विचार्यम्। तत्रादित एव विद्यागणना चेन्मन्येत, ऋग्वेदाद्युपादानं तर्हि नान्वियात्, न हि ऋग्वेद इति यजुर्वेद इति वा कापि विद्या प्रसिद्धयति। बह्वीनां विद्यानां तत्र तत्रान्तर्भावात्। तस्मात् "पंचमम्" इति पर्यन्तग्रन्थगणनैवाभिप्रेते-त्यकामेनाप्यवश्यं स्वीकर्तुमुचितं स्यात्। तत एव च अथर्ववेदस्य चतुर्थत्वेन पृथग्गणनापि युक्तिमती। ऋचः यजूंषि इत्यादिरूपेण चेत्परिगण्यते, न तर्हि आथर्वणं चतुर्थमिति वक्तव्यं स्यात्। ऋगादिपदेन तद्भागानामपि संगृहीतत्वात्। अनन्तरन्तु भवतु विद्यागणनाभ्युपगमः, तत्र संख्यावाचकपदाश्रवणात्, विद्याशब्दस्य स्पष्टं श्रवणाच्च। ततश्च ग्रन्थगणनायामितिहासपुराणमिति पुराणविद्या प्रतिपादको ग्रन्थ एवोक्तो न तु ब्राह्मणेषु, तत्र तत्रोपलभ्यमानास्ते भागा इत्येव युक्तमभ्युपगन्तुम्, बृहदारण्यकश्रुतावपि तुल्यन्यायात्तथैव। यथा चेतिहासपुराणमिति शब्दो विद्यावाचको ग्रन्थेपि प्रवर्तेत, तथाग्रिमेषु प्रकरणेषु सुस्फुटं स्यात् पुराणविद्यापि वरेभ्य पृथगेव सिद्धयति किं च, ब्राह्मणभागा एव यदि विशकलय्य तैस्तैः पदैः श्रुतिषु विभिन्ननामभिः परिगृहीताः, तर्हि ब्राह्मणानां मुख्यो भागः कर्म विधिर्नाम केन शब्देन गृहीत इति विमृश्यं स्यात्। किं सर्वा विद्या अधिगतवतापि नारदेन कर्मभागो नाधीतः? बृहदारण्यके वा तस्य परमात्मन उत्पत्तिर्नाम्नाता। अन्ये पुराणाद्या ब्राह्मणभागा महतो भूतान्निश्वसितरूपेणोत्पन्नाः मुख्यो ब्राह्मणभागः कर्मविधिरूपश्च न महतो भूतादुत्पन्न इति श्रुत्याशयमनुन्मतः कः श्रद्दधीत? विद्यासूत्रव्याख्यानादिपदैरस्तु तत्संग्रहमिति ब्रूयुश्चेत्, ननु विलक्षणेयं पद्धतिर्यद् ब्राह्मणेष्वप्राधान्येन यत्र कुत्रचिदुपलभ्यमानाः पुराणादिभागाः स्वशब्दैरुच्चार्यन्ते। मुख्यतमो विधिभागस्तु कथंचिद्गौणरूपेण केनचिच्छ-न्देन परिगृह्यत इति। कर्मविधिशब्देन एतावान् प्रद्वेषस्तत्रभवतां नारद

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

याज्ञवल्क्यादीनाम् यत्ते तं शब्दं नोच्चारयन्ति इति तस्माद्दग्वेदादिपदैरेव मन्त्रब्राह्मणात्मकास्ते ते वेदा इह गृहीताः। अग्रे चाम्नाता इतिहासपुराणाद्या ब्राह्मणेभ्यः पृथगेवेत्यर्थः स्फुटस्तत्र स्वीकार्यः। यत्तु आधुनिका आर्यसामाजिका वेदमन्त्रभागस्यानादितामुद्घोषयन्तोपि यज्ञप्रक्रियापरो मन्त्राणामर्थः पश्चात् प्रवृत्त इति साधयितुं सन्नह्यन्ति। तेषां मते—

" ऋचां त्वः पोषमास्ते । पुपुष्वान्
गायत्री त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मात्वो वदति जातविद्यां
यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः ॥"

ऋ० १०/७१/११

इत्यादिना स्पष्टं यज्ञे ऋत्विक् कार्यविभागप्रतिपादकानां निरुक्ते च तथैव व्याख्यातानां मन्त्राणां कः प्रमाणिकोऽर्थः।

यजुःसंहिताथर्वविंशतिकायाश्च यज्ञविनियोगक्रमेणैव संघटितायाः का संगतिरिति त एव साहसिका जानीरन्। किं च मन्त्रात्मकान् वेदान् समुपदिश्य तदर्थग्रहणे शक्तान् ईश्वर एव तदर्थं ग्राहयामास, तानि मन्त्रव्याख्यारूपाणि ब्राह्मणानि, इति स्वनिबन्धे श्रीस्वामी दयानन्देनोक्तम्। ब्राह्मणेषु च कर्मबोधपराण्येव व्याख्यानानि मन्त्राणामुपलभ्यन्त इतीश्वर बोधितादप्यर्थात् प्राक् का व्याख्या संभवेदिति आर्यसमाजप्रवर्तकस्वामिनः सिद्धान्तोऽपि तैर्न विचार्यते, हन्त इत्यास्तां तावत्। ननु भोः श्लोकाः सूत्राणि व्याख्यानानि अनुव्याख्यानानि इत्याद्यपि तर्हि परमात्मन आविर्भूतमनादिस्वीकर्तुमापतेदिति चेत्तद् बाढम्। अनतिशङ्कनीया भगवती श्रुतिरिति श्लोक-सूत्रव्याख्यानादिकमपि मूलभूतमनाद्यप्युपगन्तव्यमेव। यथात्वद्यत्वे पुराणेतिहासा व्यासेन स्वरूपान्तरीकृता एव अस्माभिरुपलभ्यन्ते, तथा श्लोकसूत्रादिकमपि मूलभूतमनादि नोपलभ्यते, तैस्तैर्मुनिभी रूपान्तरतां प्रापितमेव तु लभ्यत इत्यैव स्वारसिकः सिद्धान्तः स्वीकरणीयः स्यात्,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

गत्यन्तराभावात्। अतएव च "इमे सर्वे देवा निर्मिताः सकल्पाः-सरहस्याः सब्राह्मणाः, सोपनिषत्काः, सेतिहासाः, सान्वाख्याना, सपुराणाः, ससंस्काराः, सनिरुक्ताः, सानुशासनाः, सानुमार्जनाः, सवाकोवाक्याः, इति (गोपथ पूर्वभाग प्रपा० २-१-का० १) इति गोपथश्रुतिरप्युपपद्यते। इह हि स्फुटमेव ब्राह्मणेभ्यः पृथक्कृत्य पुराणेतिहासादीनि कल्पान्वाख्यानादीनि चोपात्तानि। ब्राह्मणवसिष्ठन्यायाश्रवणं त्वगतिकगतिः, तस्मात् सर्वाण्येतानि वेदवदनादीन्यासन् पूर्वयुगे, इदानीं तु मन्त्रब्राह्मणोपनिषदात्मका वेदा एव स्वस्वरूपे सुरक्षिता अध्ययनपरम्परया द्विजैः। अन्यानि तु कालपर्यायेण रूपान्तरतामेवापद्यत्वे उपलभ्यन्ते, न तु अनादिरूपे इत्यैवं स्पष्टं फलति इत्यलं विस्तरेण। तदित्थं पुराणानां पंचमवेदत्वमीश्वरनिःश्वसितत्वमनादित्वं च श्रुतिभिरेव प्रतिपाद्यत इति किमतः परं तन्महत्त्वमनुकीर्तनीयं स्यात्।

3. धर्मशास्त्रदर्शनादिषु पुराणमहत्त्वम्

तत एव भगवान् याज्ञवल्क्योऽपि—

"पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥" (१ अ०)

इति चतुर्दशसु विद्यासु पुराणं प्रथममन्वकीर्तयत्। भगवान् मनुरपि च श्राद्धकालं पुराणश्रवणं धर्ममभ्युपागच्छत्, गृह्यादिसूत्राण्यपि च तानि तानि वेदैः सह पुराणानामपि ब्रह्मयज्ञादिषु स्वाध्यायं व्यदधुः। परमाप्तेन तत्र भवता न्यायभाष्यकृता वात्स्यायनेनापि इतिहासपुराणानां ब्राह्मणेभ्यः सुस्पष्टं पृथक्त्वमुक्तम्। न केवलं ग्रन्थपृथक्त्वम्, अपितु विषयपृथक्त्वमपि।[1]

1. तथाहि "समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः" (४-१-६५) इति न्यायसूत्रभाष्ये चातुराश्रम्यविधानाच्चेतिहास - पुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरसः इतिहासपुराणस्य प्रामाण्यत्ववदन् इतिहासपुराणं पंचमो वेदानां वेद" इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यमिति। द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चास्याप्रामाण्यानुपपत्तिः। य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः, प्रवक्तारश्च न त एवेतिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति। विषय-व्यवस्थापनाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम् - अन्यो मन्त्र - ब्राह्मणस्य विषयो, अन्यश्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति। यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य, लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः। तत्रैकेन न सर्वं व्यवस्थाप्यत इति यथा विषयमेतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति।" अत्र ब्राह्मणेन इतिहासपुराणादीनां प्रामाण्यं व्यवस्थापयता स्पष्टमेव तयोर्भेदोऽप्युपगतः। परमाप्तस्तत्रभवान् कुमारिलभट्टपादोऽपि - मीमांसावार्तिके मन्त्रब्राह्मणात्मकस्य - वेदस्यापौरुषेयत्वात् स्वतःप्रामाण्यमभिवदन् स्मृतिपादे पुराणेतिहास प्रामाण्यं व्यवस्थापयदिति तद्रीत्यापि इतिहासपुराणानां ब्राह्मणेभ्यः पृथक्भावः सुप्रसिद्ध एवेति। अत्र सर्वत्रैतिहासस्य पृथगनुकीर्तनं पुराणस्य सृष्टिविद्या प्राधान्यम्–इतिहासस्य चेतिवृत्ताधान्यमभिलक्ष्येति द्रष्टव्यम्। महाभारत-रामायणे, चेतिहास-प्राधान्यादितिहास-पदेनोच्येते। सामान्येन प्रस्तुते विचारे तु ते अपि पुराणविचारे विचार्येत एवेति।

4. पुराणेषु पुराणमहत्त्वम्

पुराणेष्वपि च पुराणानां महत्त्वं फलस्तुति-विधया सडिण्डिमघोषमुद्घोष्यते।[1]

---

1. श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणानां समुच्चयम्।
यस्मिन् ज्ञाते भवेज्ज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम्॥
(वृहन्ना० ५ ख अ० ९२/२१)

यस्मिन् श्रुते श्रुतं सर्वं ज्ञाते ज्ञातं कृते कृतम्।
वर्णाश्रमाचारधर्मं ससंस्कारमुपैष्यति ॥
(वृहन्ना० ५०ख ९२/९)

आत्मनो वेदविद्या च ईश्वरेण विनिर्मिता।
शौनकीया च पौराणी धर्मशास्त्राश्रिता च या॥ क्रमशः १४

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तिस्रो विद्या इमा मुख्या सर्वशास्त्रविनिर्णये ।
पुराणं पंचमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम् ॥
यो न वेद पुराणं हि न स वेदात्र किंचन ।
कतमः स हि धर्मोऽस्ति किं वा ज्ञानं तथाविधम् ॥
अन्यद्वा यत्किमत्राह पुराणे यन्न दृश्यते ।
वेदाः प्रतिष्ठिताः पूर्वं पुराणे नात्र संशयः ॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।
इतिहासपुराणैश्च कृतोऽयं निश्चयः पुरा ॥
आत्मा पुराणं वेदानां पृथगङ्गानि तानि षट् ।
यच्च दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिभिः किल ॥
उभाभ्यां यत्तु दृष्टं हि तत्पुराणेषु गीयते ।
(स्कान्द पु० अवि ख० रेवाख० १५)

शृण्वतः पठतश्चैव सर्वकामप्रदं नृणाम् ।
वेदविच्च भवेद्विप्रो क्षत्रियो राज्यमाप्नुयात् ॥
धनं धान्यं तथा वैश्यः शूद्र :सुखमवाप्नुयात् ।
यो वेद चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ॥
पुराणं नैव जानाति न च स स्याद्विचक्षणः ।
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
भारताख्यानमकरोद् वेदार्थैरुपबृंहितम् ।
(स्क० पु० प्रभास खण्ड़ २ अ०)

धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चात्र कीर्त्यते ।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत्फलम् ॥
इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं पितॄणामतिवल्लभं च ।
इदं च देवेष्टमृतायितं च नित्यं त्विदं पापहरं च पुंसाम् ॥
(मत्स्यपु० ५३ अ०)

भगवतो विष्णोरुक्तिः । योगोयोगोऽहमेवाद्यः पुराणान्यहमेव च ।
(गा० पु० आख० २/४३)

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना ।
(ब्रह्माण्ड पु० उत्तर भा० ४/५०) क्रमशः १९

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्यादि बहुतरं तत्र तत्र, तदित्थमार्यसर्वस्वभूतायाः पुराणविद्यायाः महत्त्वं सर्वेष्वेवार्यशास्त्रेषु समुद्घुष्टमिति प्रतिपादितम् ।

6. पुराणोपयोगवल्ली

अथ कस्तावत्पुराणानामुपयोगो येनैतावन्माहात्म्यमेषामुद्घोष्यत इति विचारे सर्वासां विधानां पूर्णता सम्पादनम्, स्वातन्त्र्येण स्वार्थसमर्पणं चेति, महानुपयोग इति ब्रूमः । तथाहि – सर्वजनसमर्हणीया वेदा एव तावत्पूर्वं परामृश्यन्ताम् । द्विविधा हि वेदानां पठनपाठन-प्रक्रिया-कर्मकाण्ड प्रधाना (शब्दमात्र-ग्रहणपरा) अर्थानुसंधानप्रधाना च । तत्र शिष्टसंप्रदाये विशेषेणाहृतत्वात् कर्मकाण्डप्रधानायामेव प्रक्रियायामुपयोगं पुरस्ताद्दर्शयामः ।

जगद्यथा निरालोकं जायते शशिभास्करम् ।
विना तथा पुराणं ह्यव्ध्येयमस्मान्मुने सदा ।।
तप्यमानं सदा ज्ञानान्निरये योपि शास्त्रतः ।
संबोधयति लोकं तं तस्मात् पूज्यः पुराणगः ।।
मर्त्यबुद्धिर्न कर्तव्या पुराणज्ञे कदाचन ।
पुराणज्ञः सर्ववेत्ता ब्रह्मा विष्णुर्हरी गुरुः ।।
अन्यो न दृष्टः सुखदो हि मार्गः पुराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः ।
शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति सूर्येण हीना इव जीवलोकाः ।।
(शिवपु० उमा० सं० १३ अ०)

इदं गृहस्थैः श्रोतव्यं यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ।
धनसौख्यप्रदं नृणां पवित्रं पापनाशनम् ।।
तथा ब्रह्मपरैर्विप्रैर्ब्राह्मणाद्यैः सुसंयतैः ।
श्रोतव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक् श्रेयोऽभिकाङ्क्षिभिः ।।
प्राप्नोति ब्राह्मणो विद्यां क्षत्रियो विजयं रणे ।
वैश्यस्तु धनमक्षय्यं शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।।
यं यं काममभिध्यायन् शृणोति पुरुषः शुचिः ।
तं तं काममवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ।।
(ब्रह्म पु० २४५ अ०)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

7. वैदिक-कर्मकाण्ड-प्रक्रियायामुपयोगः

कर्मसु विनियुज्यमानानां मन्त्राणाम् ऋषिच्छन्दोदैवतविनियोग-ज्ञानमावश्यकं श्रूयते स्मर्यते च ऋष्यादिकमविज्ञाय मन्त्रान् पठतां पाप-सम्बन्धोऽपि च श्रूयते ।[1]

आह चामुमेवार्थं व्याचक्षाणो भगवान् कात्यायनः ।[2]

स्मृतश्चायमर्थोऽन्यत्रापि—

मन्त्राणां दैवतच्छन्दौ निरुक्तं ब्राह्मणानृषीन् ।
कृत्तद्धितादींश्चाज्ञात्वा यजन्तो यागकण्टकाः ।।
अविदित्वा ऋषिच्छन्दौ दैवतं योगमेव च ।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः ।।
ऋषिच्छन्दो दैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि ।
अविदित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यते ।। इति ।

तत्र च छन्दांसि गायत्र्यादीनि पिङ्गलादिभिराचार्यैस्वच्छन्दः शास्त्रेषु विस्तारशः प्रतिपादितानि । विनियोगश्च ब्राह्मणभागे निरूपित एव कल्पसूत्रेषु समुपबृंहितः । अथ दैवतानि ऋषयश्चानुक्रमणी-सूत्रेषु नाम्ना प्रतिपादितानि । तत्र दैवतानां वंशः कर्मादीनि च ब्राह्मणेषु केषांचिदुक्तानि । पुराणेषु च समुपबृंहितानि ।

---

1. यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा, स्थाणुं वर्च्छति, गर्तं वा पत्यते प्रवामीयते पापीयान् भवति, तस्मादेतानि मन्त्रे-मन्त्रे विद्यात्" इति ।

2. एतान्यविदित्वा योऽधीते योऽनुब्रूते, जपति, जुहोति, यजते, याजयते, तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवति । अवान्तरा श्वगर्तं वा पद्मते, स्थाणुं वर्च्छति, प्रमीयते, वा पापीयान् भवति । अथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवत् । अथ योऽर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति, जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते इति (कात्यासर्वानुक्रमसूत्रे १ अ० १२ ख०)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्रद्रष्टारो ऋषयश्च त्रिविधाः – ब्रह्मर्षयः, राजर्षयः, सामान्यश्चेति।

तत्र ब्रह्मर्षयो वसिष्ठगौतमादयो, राजर्षयस्त्रसदस्युमान्धातृप्रभृतयः, सामान्यास्तु ऐलूषकवषादय इति। तेषान्तु केषां च देवकर्माणि ब्राह्मणेषु प्रतिपादितानीति सर्वेषां विशेषज्ञानोपयोगिवंशपरंपरा कर्मादीनां याथातथ्येन निरूपणाय भगवतो व्यासस्यैव समारम्भः। न हि सामान्यविशेषोभयविधज्ञानमुपेक्ष्य केवलेन नामाज्ञानेन विधिः परिपालितः स्यात्। तस्मात्कर्मकाण्डप्रक्रियायामपि विहितस्य ऋषिदेवताज्ञानस्य सिद्ध्यर्थमस्ति पुराणानामुपयोगः।

8. वेदार्थे पुराणोपयोगः

अथार्थज्ञानाय येषां वेदाध्ययनम्, तेषामप्यत्यर्थमुपयुक्तमृष्यादि ज्ञानम्, एतच्चतुष्टयज्ञानमन्तरेणमन्त्राणामर्थ-प्रतिपादनस्य कर्तुमशक्यत्वात्, तथाहि यद्येन मन्त्रेण प्रतिपाद्येत, तत्तस्य मन्त्रस्य दैवतं भवति। इन्द्राग्न्यादित्यादिप्रतिपादकानां मन्त्राणां तत्तद्देवताकत्वेनैव व्यवहारात्। ये तु मन्त्रा दानादीनि कर्माण्येव स्तुवन्ति, ते तद्देवताका एवोच्यन्ते। यत्र तु ऋषिरात्मानमेव स्तौति, तत्र ऋषिदैवतयोरैक्यमेव भवतीति सुस्पष्टं वेदार्थपर्यालोचन-चणाम्। उक्तश्चायमर्थो बृहद्देवतायाम्—[1]

निरुक्ते यास्कोप्याह—यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुंक्ते, तद्दैवतः स मन्त्रो भवति (नि० ७ अ०) इति।

---

1. नवकः प्रथमस्त्वासां वर्गस्तुष्टावदेवताः।
ऋषिभिर्देवताभिश्च समूदे मध्यमो गणः॥
आत्मनो भाववृत्तानि, जगौ वर्गस्तथोत्तमः।
उत्तमस्य तु वर्गस्य याः ऋषिः सैव देवता॥
संवादेऽप्याह वाक्यं यः स तु तस्मिन्भवेदृषिः।
यस्तेनोच्येत वाक्येन देवता तत्र सा भवेत्॥ इति॥
(समूदे-संवादं कृतवानित्यर्थः)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अस्य हि प्रतिपाद्यरूपस्य दैवतस्याज्ञाने को नाम मन्त्रार्थं प्रतिपादयितुमीशो भवेत् ? तत्तन्मन्त्रे नामग्रहणादेव दैवताज्ञाने सिद्धं पृथक् तद्विज्ञानं नापेक्ष्यत इति तु न विचारसहम्, अगृहीत्वाऽपि देवतानां नामानि बहूनां मन्त्राणां प्रवृत्तिदर्शनात् । किं च क्वचिद्देवतानामग्रहणेऽपि न तस्य तद्देवताप्रतिपादकत्वं भवति, अपि तु नामग्रहणं तत्र प्रासङ्गिकमेव ।[1]

तस्मादन्यार्थप्रतिपादकस्य मन्त्रस्थान्यार्थकत्वं मा प्रसाङ्क्षीदिति दैवतज्ञानं प्रथममावश्यकम् ।

छन्दोविज्ञानमपि च दैवतज्ञानायोपयुज्यते । श्रुतौ तत्तद्देवतानां तैस्तैश्छन्दोभिः प्रतिपादनसंकेतात् । तद्यथा गायत्र्याग्निस्त्रिष्टुभेन्द्रो-जगत्या चादित्यः प्रतिपाद्यते – इति छन्दसि ज्ञाते दैवतज्ञानं सुकरं भवति ।[2]

एषा चाग्न्यादिभक्तिर्निरुक्ते विस्तरेण निरूपिता भगवता यास्केन (७ अ.) तत्र च छन्दसोऽपि दैवतालिङ्गत्वमुक्तम् ।

---

1. तदुक्तं बृहद्देवतायाम्—

मन्त्रेऽन्यदैवतेऽन्यानि निगद्यन्ते प्रसङ्गतः ।
सालोक्यात्साहचर्याद्वा तानि नैपातिकानि तु ।।

यास्कोप्याह – ते चेदं द्युलिङ्गा अत्र स्म–इति "इन्द्रो न त्वा शवसा देवता पायं पृणन्तीति" (ऋ. ४/५/६/२) वायुलिङ्गं चेन्द्रलिङ्गं चाग्नेये मन्त्रे अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्वेति (ऋ० ८ / ३ / १९ / २) तथाग्निर्मान्यवे मन्त्रे निरुक्ते १ अ. ६ पाद १७ ।

तद्यदन्यदैवते मन्त्रे निपतति, नैघण्टुकं तदिति । इत्यपि निरुक्ते ।

2. एतदप्युक्तं बृहद्देवतायाम्—

देवता तद्यथा सूक्तमविशेषं प्रतीयते ।
भिन्ने सूक्ते वदेदेव देवतामिह लिङ्गतः ।।
अग्निभक्तिस्तु तान्सर्वानग्नावेव समापयेत् ।
यदिन्द्रभक्तिः तच्चेन्द्रे सूर्ये सूर्यानुगं च यत् ।। इति ।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विनियोगस्तु तत्तन्मन्त्राणां तासु तास्वितिकर्तव्यतासु सम्बन्धबोधकः। यत्तज्ज्ञानमन्तरा वेदज्ञानफलभूतस्यानुष्ठानस्याशक्यत्वात्सोऽपि विज्ञेय एव। इतिकर्तव्यता सम्बन्धे ज्ञाते चार्थज्ञानेऽपि सौकर्यं भवतीति।

अथ यद्वाक्यत्वेन मन्त्रस्य विवक्षा भवति, तेऽत्र ऋषयः। ते च प्रायेण मन्त्रद्रष्टार एव। एषां च मन्त्रार्थप्रतिपादकत्वेन विवक्षितानामृषीणां ज्ञानेन प्रतिपाद्यप्रतिपादकयोः सम्बन्धे ज्ञाते सुखेनार्थप्रतिपत्तिर्भवति।[1]

ननु च भोः? अपौरुषेया वेदा इति मीमांसायां जाग्रत्यां कथमेवं प्रलप्यते मन्त्राणां वक्ता ऋषिरिति। न हि मन्त्राणां कोऽप्यस्ति वक्ता अनादय एव ते अनादिरेव च वैदिकानां शब्दनामर्थैः सम्बन्धः। स च निघण्टुनिरुक्तव्याकरणादि साहाय्येन तदध्येतृभिर्ज्ञायत इति। येऽपीश्वरनिर्मितत्वं वेदानामिच्छन्ति, तेषामपीश्वर एव वक्तेति कोऽर्थज्ञाने ऋषीणामुपयोगः? इति चेच्छ्रूयताम् – – –

नात्र वयं वेदकर्तृत्वविचारं प्रस्तोष्यामः। पुराणकर्तृपरम्पराविचार एवाऽत्रापि विषये संक्षेपेण किंचिद् वक्ष्यामः। इदन्त्वत्रावश्यं पर्यालोच्यम्।

9. वेदेषु इतिहासः

वेदेष्वितिहासान्वेषणे मीमांसानुयायिनः आर्यसामाजिकाश्च विद्वांसो विप्रतिपद्यन्ते। तथाहि-वेदानामपौरुषेयतां समर्थयमानेन भगवता जैमिनिना

---

1. तद्यथा "ऋ० म० १ अ० १६ सू० ११० म० २"

"आभोगयं प्रयदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम केचिदापयः" इत्यादि ऋभुदेवताके मन्त्रे प्रतिपादकाऽज्ञाने – "मम प्राञ्चः" इति न विज्ञातुं शक्यते। एतत्सूक्तर्षेः कुत्सस्य ज्ञाने तु सुष्ठु तद् विज्ञायते।

तदुक्तमेतद् भाष्ये माधवाचार्यैः—

"ऋभवो हि सुधन्वन आङ्गिरस्य पुत्राः, कुत्सोप्याङ्गिरसः, अतस्तेन मदीया ज्ञातय इत्युक्तम्" इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"अनित्यदर्शनाच्च,, इति पौरुषेयता—पूर्वपक्षमुद्भाव्य' परंतु श्रुतिसामा-न्यमात्रम्" इति समाहितम्।

जैमिनेर्भगवतः क आशय इति तु वेत्ति सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञो भगवान्। अनेकधा स विवरीतुं शक्यते विव्रियते च बहुभिः। परं श्रीशबरस्वामि-प्रभृतयो मीमांसका इत्थम् वर्णयन्ति —

"यन्मानुषं चरितं यदि वेदेषु वर्ण्यते तर्हि वेदास्तन्मनुष्यादुत्तरं प्रादुर्भूता इति अनादित्वमपौरुषेयत्वं च वेदानां भज्येतेति शङ्का न। न सन्त्येव वेदेषु मानुषाणि चरितानि नाम, सादृश्यमूलया तु भ्रान्त्या नित्यपदार्थसम्बन्धि-वर्णनं मानुषमित्यभिमन्यते कैश्चित्। यथा- "बबरः प्रावाहणिरकामयत" इत्यादिषु "ब ब" इति शब्दानुकृत्या "बबर" इति वायुरभिधीयते। स च "प्रवहणि" रुक्तः। अत्र प्रवहणपुत्रो "बबर" नामा कश्चिन्मनुष्योऽपि भवेत् तदितिहासभ्रान्तिर्लोकानां जायते। वस्तुतस्तु वाय्वादेर्नित्यस्यैवेदं वर्णनमिति तत्समाधानं चैति।"

एतेनेदंसाधितं यन्मनुष्येतिहासो वेदे नास्त्येव। मतमिदं बहुभिरेत्रे-दानीन्तनैराद‍ृतमनूदितं च।

इदन्तु स्मर्तव्यम् — इमां पद्धतिमालम्ब्य मीमांसकाभिमतस्य मन्त्र-ब्राह्मणात्मकस्य कृत्स्नस्य वेदस्य प्रामाणिकी व्याख्या न केनाप्यद्यावधि विरचिता। दुःशकं च कार्यमिदमिति बहवो विद्वांसः स्फुटमभिमन्यते। सर्ववेदव्याख्यातारौ तत्रभवन्तौ सायणमाधवाचार्यौ सादरमुपोद्घाते मीमांसकमतमिदमन्ववदताम्। परं व्याख्यानकाले त्विदं सर्वं व्यस्मरतामिव। यतोहि बहवो मन्त्राः, बहूनि च ब्राह्मणप्रकरणानि मानुषेतिवृत्तावलम्बनैं नैव तत्रभवद्भ्यां व्याख्यातानि। यथा—

"आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम केचिदापयः।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमना गच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम्॥
(ऋ० १/१ १०/२)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इति मन्त्रं व्याचक्षाणो माधवाचार्य आह–"ऋभवो हि सुधन्वन आंगिरसस्य पुत्राः। कुत्सोऽप्याङ्गिरसः। अतस्तेन मदीया ज्ञातय इत्युक्तम्। हे सौधन्वनासः सुधन्वनः पुत्राः, इत्यादि तदेतदुक्तं प्रागपि। तथैव—

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति। तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या निधते।

(ऋ० १।१२५।१)

इति मन्त्रं व्याचक्षाणो माधवाचार्यः दीर्घतमः कक्षीवतोः सर्वमितिहासम् भावयव्यपुत्रेण स्वनयेन तस्मै यद्यद् दत्तम्, तस्य विवरणं च सर्वमुपनिबध्नाति। तदेव च वृत्तमवलम्ब्य सूक्तमिदं व्याचष्टे। तथैव—

"युवं च्यवानं चक्रथुर्युवानम्" इति अश्विदैवते मन्त्रेऽपि च्यवनस्य पुराणप्रसिद्धमुपाख्यानं माधवाचार्येण व्याख्यातम्।

एवमेव शतश इतिहासाः सायणमाधवीये भाष्ये मन्त्रार्थरूपेण व्याख्याता उपलभ्यन्ते। ब्राह्मणेष्वपि ऐतरेयादिषु या हरिश्चन्द्रनहुषादिकथाः, ताः सर्वा अपि मनुष्यचरितरूपेणैव व्याख्याताः। एवमुव्वटमहीधरादिभिरपि इतिहासपरं व्याख्यानमेवाहृतं तत्र तत्रेति।

मीमांसका मन्त्राणामिव ब्राह्मणानां तदेकदेशभूतानामारण्यकोपनिषदादीनामपि च वेदत्वमेव सिद्धान्तयन्ति। "तच्चोदकेषु मन्त्राख्या" शेषे ब्राह्मणशब्दः" इत्यादि। तथैव च सर्वे प्रामाणिका आस्तिका मन्वते। उपनिषत्सूपलभ्यमाना आख्यायिका मनुष्यपरतयैव श्रीशङ्कराचार्यप्रभृतिभिः सर्वैरपि भाष्यकृद्भिस्तत्र तत्र व्याख्याताः। शुगस्य तदनादरश्रवणात्, तदाद्रवणात् सूचयते हि 'क्षत्रियत्वगतेश्चेतरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात्' (ब्रह्मसूत्र १ अ० उपा ३४-३५) इत्यपशूद्राधिकरणे च सूत्रकृता भगवता व्यासेनैवोपनिषत्सु मनुष्याख्यानमभिमतम्। तदाधारेणैव चाधिकरणमिदं प्रवृत्तमिति न तिरोहितम् सूत्रपरिशीलिनाम्।

मनुष्यचरितं वेदेषु व्याचक्षाणा अपि च मान्यमहानुभावाः "भूतं भवद् भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति" सिद्धान्तमवलम्ब्यापौरुषेयतामनादितां च वेदस्य रक्षन्त्येव।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अपि च "न कदाचिदनीदृशं जगद्" इत्यभिमन्यमानां मीमांसकानामनया युक्त्या अपौरुषेयत्वरक्षणं सम्भवेदपि। अन्येषां तु सर्गप्रलयप्रवाहमुररीकुर्वतां दार्शनिकानां पौराणिकानां चेते वर्तमानकल्पसम्बन्धिनः पृथिव्यादिपदार्था अप्याद्रियन्त इति तद्वर्णनेऽपि वेदानामनादित्वभङ्गशंकातंको दुस्तर एव। प्रवाहरूपेण नित्यतां तु पृथिव्यादीनामिव देवर्षि-पितृ-राजर्षि-प्रभृतीनामपि पौराणिका अभ्युपगच्छन्त्येवेति पक्षद्वयसाम्ये नेतिहासविलोपपक्षस्य प्रयोजनं किमपि पश्यामः।

ततश्च—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

(मनु० १-२१)

इति भगवन्मनूक्तदिशा "स भूरिति व्याहरत्, भुवमसृजत्" इति श्रुत्यनुगतया यथोत्पत्स्यमानानामपि स्थावरजङ्गमादीनां सामान्येन गुणधर्मादिकं पूर्वपूर्वकल्पानुसारि प्रथमत एव श्रुतिनिबद्धमभूत्, तथैवोत्पत्स्यमानानामपि ऋषीणां राजर्षीणां च चरितं भविष्यद्दृष्ट्या, पूर्वकल्पनानुसारि वा श्रुतं श्रुतिष्विति कात्रानुपपत्तिः? किमिवापौरुषेयेषु वेदेषु न सम्भाव्यते। यथा खलु भगवतो वाल्मीकेरपि भविष्यद्-रामराज्यस्थितनिबन्धृत्वं श्रद्दधतेऽद्याप्यार्याः। ये खलु वेदानामलौकिकत्वं श्रद्दधते ते भविष्यदर्थस्य पूर्वमेव तत्र वर्णनमपि विश्वसेयुरेव। इतरथा तु कयापि युक्त्या तेषामपौरुषेयत्वविश्वासोऽपि दुःसाध इति मन्दप्रयोजन एवायमितिहास-विलोपनप्रयासो दृश्यते। "परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्" इति जैमिनीयं सूत्रमपि पूर्वकल्पोत्पन्नानामिदानीन्तनानां च श्रुतिसामान्यंनामसादृश्यम्, तेन पूर्वकल्पसम्बन्धीनि तानि वृत्तानि वेदेषूपात्तानि, ईश्वरज्ञाननिष्ठानां वा पदार्थैः सह श्रुतिसामान्यं नामसादृश्यम्—इत्यर्थपरतया व्याख्यातुं शक्यमेव। दृश्यते चायमपि मान्यानामार्याणामेव बहूनां पक्षो यज्ज्ञानरूपेण नित्या वेदाः, शब्दरूपेण तु काले काले तत्तदृषिभिरेव दृष्ट्वाविर्भावं नीता इति। निरुक्तकृद् भगवान् यास्कोऽपि "तत्र ब्रह्म

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तिहासमिश्रं मृङ्मिश्रं गाथामिश्रंच भवति" (नि०अ० ४) इति आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान्" इत्यादिमन्त्रव्याख्यायां च (निरुक्ते नैगम कां० अ० २) देवापिशन्तनुप्रभृतीनां चरितं तत्तन्मन्त्रनिदानत्वेन प्रस्तौति, "देवापिशन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः" (अ० २) इत्यादिना। यत्त्वत्र निरुक्तभाष्यकृता दुर्गाचार्येण देवापिशन्तनू अग्निविशेषौ–इत्युक्तम्–सा तस्यैव कल्पना, न तु निरुक्ताक्षरैस्तत् सिध्यति, "अत्रेतिहासमाचक्षते", इति निरुक्त उपक्रमणात्। मन्त्रेष्वपि च पूर्वमुपदर्शितेषु (१०, ९८, ८) मनुष्यः-इति देवापि-विशेषणश्रवणात् तस्माच्छ्रुतिविरुद्धा इमाः कल्पनाः। बृहद्देवताकृत् शौनकोऽपि बहूनामृषीणां चरितानि मन्त्रनिदानत्वेन बृहद्देवतायां स्पष्टं व्याचष्टे।

कर्माणि यानि प्रथितानि राज्ञां दानानि चोच्चावचमध्यमानि।
नाराशंसोरित्यृचस्ताः प्रतीयाद्याभिः स्तुतिर्दाशतयीषु राज्ञाम्।
३/१५४॥
पराश्चतस्रो यास्त्वत्र वशिष्ठद्वेषिणी विदुः।
विश्वामित्रेण याः प्रोक्ता अभिषापा इति स्मृताः॥

वशिष्ठास्ता न शृण्वन्ति (४।११२–१४) इत्यादि च तेन तत्र तत्र सुस्पष्टं विवृतम्। किं च पुराणानां नाम तद्विषयोऽपि च वेदेषु निर्दिश्यते, न केवलं पुराणानाम्, अपितु इतिहासानामपि। इतिहास-पुराणादीनि च तत्तन्मनुष्यचरितं बोधयन्ति इति भवद्भिरप्यभ्युपगन्तव्यमेव। ततश्च मनुष्यचरितोपनिबन्धकानि पुराणानि तन्मनुष्योत्तरं जातानि तन्नामग्राहिणो वेदाश्च ततोप्युत्तरमिति शङ्केयं पुनरपि दुरुद्धरा। तस्माद् भविष्यन्नप्यर्थो वेदैः पुराणैश्च ख्याप्यत इत्येष एव समाधानप्रकारः सम्यग् भवेत्, नान्यः पन्थाः।

येऽपि च वेदस्यापौरुषेयत्वपक्षपातिनो न मनुष्यकृतिसम्बन्धं मनागपि वेदेषु सहन्ते, तेऽपीतिहासं वेदेषु अङ्गीकुर्वन्तीति भगवत्पादश्रीशङ्कराचार्यश्रीसायणाचार्यादिनिदर्शने साधितम्, प्रदर्शितञ्च दिङ्मात्रेण

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुरुष-सम्बन्धशङ्कायाः समाधाने तेषां पन्थाः "भूतं भवद् भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति इति"। किं च यत्रापि वृत्रवधादि-मन्त्रेषु वैज्ञानिकी व्याख्या यास्केन कृता तत्रापि "इत्यैतिहासिकाः" इति "निरुक्ताः" इति वदता ऐतिहासिकपक्षोऽप्युपन्यस्त इति वेदेष्वितिहास-पक्षाभावो न कथञ्चिदपि साधयितुं शक्यः।

वेदेषु सर्वथेतिहासानभ्युपगमे महान् विप्लवः प्रसज्येत। सन्ति खलु मन्त्र-ब्राह्मणात्मकेषु वेदेषु उर्वशी-पुरुरवः प्रभृतीनां राजर्षिहरिश्चन्द्र-प्रभृतीनां च बहव ऐवेतिहासाः, त एव चोपलभ्यन्ते इतिहासपुराणेष्वप्युपबृंहिताः। ततश्च वेदेषु यदि तेऽर्थान्तरपरास्तर्हि पुराणेष्वपि तथैव सम्भाव्यन्ते इति तद्घटितपौराणिकसर्वराजवंशस्यैतिहासिकं तथ्यं दूरमुत्सारितं मास्तु। ततश्च "नास्त्येव भारतीयानां कोऽपीतिहासः" "कल्पनामात्रसाराः पौराणिका इतिहासाः" "नासीत्कोपि रामो वा युधिष्ठिरो वा" "नैतिहासिकः पुरुषो भगवान् कृष्णोपि" इत्याद्याः केषाञ्चित् पाश्चात्यविदुषां तदनुयायिनां भारतीयानां चानर्गला जल्पना एव विजयेरन्, गुहायां दृढदत्तार्गलं च भारतीयसभ्यतायास्तत्त्वं स्यादिति किमतः परमनर्थास्पदं नाम? कुतश्चः श्रीशबरस्वामिनोपबृंहितं मतमेव प्रमाणीकुर्महे, न तु शौनक-यास्कशङ्करमाधवादिभिः स्वीकृतं वेदेषु स्फुटं भासमानं स्वारसिकं सिद्धान्तम्? "किञ्च यत्परः शब्दः स शब्दार्थः" इति हि मीमांसाभिमतमेव न्यायमवलम्ब्य धर्म एव मीमांसाया दृढप्रामाण्यं शक्यमुररीकर्तुम्। इतिहासादिविषये तु पुराणमहाभारतादीनामेव मुख्यं प्रामाण्यम्। धर्मविचारे इतिहासदीनामर्थवादान्तर्भूतानां प्रवृत्ति-निवृत्ति-बोधनाङ्गतयैव सप्रयोजनत्वमिति जैमिनीसिद्धान्तं शिरसाद्रियामहे[1] वेदप्रामाण्य–साधन–बद्धपरिकरा महतो वेदभागस्यैव मिथ्याप्रतिपादकत्वलक्षणमप्रामाण्यं शब्दान्तरेण प्रसञ्जयेयुरिति महदिदमुपहासास्पदम्।

अपि च—

1. परं कल्पनाप्रसूता मिथ्यात्वमुक्ता एवैत इतिहासा इति न शक्यमभ्युपगन्तुम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते ।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः ।।

इति मीमांसकाभियुक्तोक्त्यनुसारं प्रमाणान्तरविरुद्धानां गुणवादत्वं भवतु नाम, अनुवादभूतार्थवादयोस्त्वैतिहासिकं तत्त्वं कथमपलप्येत ? तदेतदाहुः श्रीशङ्कराचार्यपादाः (बृह० उ० ३।१ प्र० ३–१) बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्ये "आत्मेश्वरदेवतादीनामप्ययथार्थानामेव चेद् ग्रहणं श्रुतितः अनर्थप्राप्त्यर्थं शास्त्रमिति ध्रुवं नाप्नुयाल्लोकवदेव । न चैतदिष्टम्, तस्माद्यथाभूतमेवात्मेश्वरदेवतादीनां ग्राहयत्युपासनार्थं शास्त्रम् इति ।" ब्रह्मसूत्रभाष्येऽपि च देवताधिकरणे इतिहासप्रतिपादकानां देवताविग्रहादिप्रतिपादकानां च मन्त्रब्राह्मणभागानां स्वार्थप्रतिपादनपूर्वकमेव विधिनिषेधशेषत्वमिति विस्तरेण श्रीशङ्करभगवत्पादैः समर्थितम् । व्यासादीनां देवतादिभिर्व्यवहरणमपि च स्पष्टैरक्षरैः स्वीकृतम्, यद्देवताविषये तैरुक्तम् । तुल्यमेतन्मनुष्यचरितेष्वदीति तेप्यादिशब्दग्राह्यतामर्हन्ति । न ब्रूमो वयं वेदेषु पुराणेषु वा न सन्ति कल्पना इति, को हि नाम सचेताः—

पिप्पल्यः समवदन्त आयतीर्जननावधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्यति पूरुषः ।।
ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ।।

इत्यादीनां पूर्वोक्तानां संवादत्वेन भासमानानामपि वचोभङ्ग्या तत्तदौषधादिगुणाभिव्यञ्जकत्वं नानुमन्येत, को वा वेदेषु कृतावगाहोऽगस्त्यमत्स्यसंवादादिषु क्वचिदाधिदैविकम्, क्वचिदाध्यात्मिकं वा तत्त्वमेवोपबृंहितमितिहासशैल्येति न दृढं विश्वस्यात् ? पुराणेष्वपि पुरंजनोपाख्यानप्रभृतीनि स्वयमेवाध्यात्मिकार्थ-परतया व्याख्यातानि । परं नैतावता सर्वाण्येवाख्यानानि तथाभूतानीति भ्रमितव्यम् । न हि "गङ्गायां

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

घोष" इत्यादौ भवति लक्षणेति गङ्गायामवगाहते इत्यादावपि सा नियमेन युक्ता स्यात् । तेन वेदेषु पुराणेषु वा यान्याख्यानानि आध्यात्मिकाधिदैविकाद्यर्थपरतया व्याख्यातानि भवन्तु तथैव । यानि तु नार्थान्तरपरतया क्वचिदप्युक्तानि, तेषु गुणवादत्वकल्पना सर्वथानर्थायैवेति सुदृढं भावयन्तु सुधियः । सन्ति कानिचिदाख्यानानि द्विपराणि, कानिचिच्च त्रिपराणि । आधियज्ञम् आध्यात्मिकम् आधिदैविकं, चापि तत्त्वं तैर्बोध्यते, ऐतिहासिकं तत्त्वमपि चाविष्क्रियते । बहूनि खल्वैतिहासकानि तत्त्वानि वेदपुराणानि दाढ्र्यमेवोपयान्ति । किं च बबरः, प्रावाहणिः इत्यादीनां यथाविधोऽर्थः श्रीशबरस्वामिभिः प्रतिपादितः,तथैव देवापि,सुदास, हरिश्चन्द्रादिशब्दानामपि यौगिकोर्थः कश्चित् प्रकल्प्येत, तर्हि मीमांसकैरेव निर्णीतस्य प्रसिद्धपदार्थकाधिकरणस्य विरोध आपतेत् । इदमधिकरणं पृथग्भूतमाकृत्यधिकरणात पूर्वं केचिदिच्छन्ति । भट्टपादैस्तु आकृत्यधिकरणपूर्वाङ्गतयैव व्याख्यातम् । "प्रयोगचोदनाभावदर्थैकत्वमविभागात्" (१।३।३०) इति हि जैमिनीयं सूत्रम् । अस्मिन्नधिकरणे य एव लौकिकाः शब्दाः त एव वैदिकाः, य एव च लोके तेषां शब्दानामर्थाः, त एव वेदेपीति निर्णीतम्, न तु व्याकरणादिसाहाय्येनार्थान्तरं कल्पितव्यमिति । "त एव शब्दा अर्थाः" इति ह्यत्रोपसंहारभाष्यम् । ततश्च बबर-देवापि-सुदास-हरिश्चन्द्रादिशब्दानां प्रसिद्धविलक्षणेऽर्थे स्वीक्रियमाणे तदधिकरणविरोधः स्फुट एवेति । ततश्च सन्त्येव मन्त्र-ब्राह्मणात्मकेषु वेदेष्वपीतिहासाः । ते चातिसंक्षिप्ताः पुराणादिषूपबृंहिताः सम्यगवबुध्यन्त इत्यैतिहासिकप्रक्रियायामपि पुराणानामुपयोगः सम्यक् प्रदर्शितः ।

केचन नव्यास्तु केवलं मन्त्रभागस्यैवानादित्वं वेदत्वमीश्वरप्रणीतत्वं च समर्थयन्ते । मन्त्रभाग एव चेतिहाससत्तां प्रतिषेधन्ति । ब्राह्मणभागस्य तेषां मते न वेदत्वम् , न वेश्वरकृतत्वम् चानादित्वमिति तत्रेतिहासाभ्युपगमेऽपि न दोषः : तदेतदर्द्धजरतीयं न कथमपि युक्तियुक्तम् । शरीरधारिपुरुषनिर्मितत्वाभावरूपमपौरुषेयत्वं वेदानां मीमांसकैरेव साध्यते । ते च

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्रब्राह्मणयोरुभयोरपि वेदत्वमपौरुषेयत्वं च प्रतिपादयन्ति । यज्ञादिधर्म-प्रतिपादकत्वादेव वेदं निरपेक्षं प्रामाण्यं तेऽभ्युपगच्छन्ति । यज्ञप्रतिपादकत्वं च ब्राह्मणान्तर्गतानां विधिवाक्यानामेवेति ब्राह्मणानि पृथक्कृत्य मन्त्रभाग-मात्रस्य वेदत्वप्रतिपादनं तन्मते व्यर्थप्रायम् । "विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः" इति परिभाषायां मन्त्रास्तु ब्राह्मणान्तर्गतानां विधिवाक्यानां विधेयाः, ब्राह्मणोक्तकर्मस्मारकाश्चेति न तेषां सिद्धान्ते मन्त्राणां प्राधान्यम्, अपि तु ब्राह्मणान्तर्गतविधिवाक्यानामेव । तथा च विधिवाक्यानि यदि नापौ-रुषेयाणि, तर्हि मन्त्राणामपौरुषेयत्वकल्पनं व्यर्थप्रायम् । ईश्वररचितत्व-वादश्च वेदानां कणादसूत्रप्रामाण्यादेव नवीननैयायिकैरुच्यते । तेऽपि च "ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम्" (६।१।२) इति सूत्रेण ब्राह्मण-भागस्यापि ईश्वररचितत्वमभ्युपगच्छन्ति । ब्राह्मणमिह वेदभागः तत्र यत् संज्ञाकर्म नामकरणम्, तद्व्युत्पादकस्य बुद्धिमाक्षिपति, यथा लोके लम्बकर्ण-दीर्घनास-लम्बग्रीवादिनामकरणम् । इति तत् सूत्रव्याख्याने उपस्कारः । तेन वेदस्य बुद्धिपूर्ववाक्यघटितत्वं दृढीभवतीति पूर्वसूत्रेण संबन्धः । व्युत्पादनमिति यावत् । तत्सिद्धेर्ज्ञानस्य लिङ्गम्-अनुमापक-मित्यर्थः । तथाहि-"सोऽरोदीत् योऽरोदीत्-रुद्रः सः, रुद्रः किल रुरोदेति रोदनकर्तृत्वेन रुद्र इति नाम व्युत्पादितं ब्राह्मणेषु"-इत्यपि स्फुटा व्याख्या सूत्रस्य क्वचिद् । न्यायसूत्रकारश्च भगवान् गौतमोऽपि 'विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात्' (२/१/६२) इति सूत्रेण वेदानां प्रतिपाद्यविषयविभागान् बोधयन् ब्राह्मणभागस्य वेदान्तर्गतत्वं स्पष्टमभि-व्यञ्जयति, ब्राह्मणभाग एवैषां विभागानामुपलम्भात् । तस्मादनार्षो मन्त्रभागमात्रस्य वेदत्वाभ्युपगमः । सनातनधर्मोद्धारे च श्रीमदुमापति-द्विवेदिमहाभागैर्महता परिकरेण ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं प्रतिष्ठापितमिति नात्र वयं तान्प्रपञ्चयिष्यामः, अप्रकृतत्वात् । इदं तु प्रकृतं पृच्छामो यदीश्वरस्य सर्वज्ञस्य सर्वशक्तिभाजोऽपि भविष्यदर्थज्ञानं भवद्भिरभ्युपग-म्यते न वा ? न चेत्, सर्वज्ञत्वहानिः, सर्वपदार्थे त्रैकाल्यप्रवेशात् । अभ्युपगम्यते चेद्, स्वज्ञानविषयीभूतस्य भविष्यदर्थस्यापि प्रकाशने को

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

दोषः ? यन्निवारणाय मन्त्रभाग इतिहाससत्ता भवद्भिरपलप्यते, भूतार्थक-लकारप्रयोगस्तत्र बाधक इत्यपि न शक्यते वक्तुम्, "व्यत्ययो बहुलम्" इति च्छन्दसि सर्वेषु कालेषु सर्वलकारविधानात्, श्रीस्वामिदयानन्दैरनेकत्र तथाभ्युपगमाच्च । किं च सामाजिक-नियम-विधानं बहुभिर्मन्त्रैः श्रीस्वामिभाष्यमनुसरन्तो भवन्तोऽभ्युपगच्छन्ति । सामाजिका नियमाश्च समाजसंघटनानन्तरमेव व्याप्रियन्त इति वेदानामनादित्वं पुनरपि कथं सिध्येत् ? यथा— "अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्" इति यमयमीसंवाद-सूक्तघटितमन्त्रैकदेशेन "अशक्तः पतिः स्वपत्न्यै पत्यन्तरकरणानुज्ञां ददातीति" भावत्कोऽभ्युपगमः । पतिश्च विवाहकाले "दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि" इति पुत्राप्राप्तिं पत्न्या एकादशपर्यन्तम् पतींश्चाभिवाञ्छतीत्यपि भवत्पक्ष्योऽर्थः । तदेतत्सर्वं तदैवोपपद्यते यदा पुरुषा उत्पन्नाः, तैः पत्न्यश्च परिणीताः, परिणीयन्ते वा[1] पुनश्च तेषामशक्तिरपि जाता । एतावत्पर्यन्तं यदि वेदा न प्रादुर्भूताः, तदा कथं तेषामनादिता ? पूर्वमेवेश्वरेण भविष्यन्मनुष्यार्थमेतज्ज्ञानं प्रकाशितमिति चेत्, भविष्यदितिहासप्रकाशनेऽपि किं हीयते ? तस्मान्मन्त्रभाग इतिहासाभ्युप-गमेपि न कश्चिद् भवद्रीत्या विरोध आपतति, ऋतेऽभिनिवेशादिति सम्यग् विभाव्यताम् । समाजसंघटनानन्तरं वेदानां प्रकाश इति चेत्, तत्तदितिवृ-त्तानन्तरमपि प्रकाशोभ्युपगम्यतामिति कृतं प्रपञ्चेन । यत्तु केचिदाधुनिका शतपथ-ब्राह्मणवचनमुदाहृत्य वेदेष्वितिहासो नास्तीति वक्तुमीहन्ते "तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्दैवासुरम्, यदिदमन्वाख्यानैं त्वदुद्यते इतिहासे त्वत्" (शत० ११। अ० १/६/९) । अत्र इतिहासे देवासुरा अन्य एवेति स्पष्टमुक्तम्, तस्माच्छ्रुत्युक्ता देवासुरा इतिहासे न सन्तीति स्पष्टमेवेति । तदेतदपर्यालोच्य चक्षुषोर्धूलिप्रक्षेपमात्रम् - तत्र हि शतपथे प्राणरूपाणां सृष्टिमुपक्रम्य प्रजापतिना प्रकाशेन सह देवाः सृष्टाः, देवानामुत्पत्तौ प्रकाशो जातः, असुराणामुत्पत्तौ तु तमो जातम् – इति प्रतिपाद्य तमो दर्शनादसुराणां पापरूपतां विज्ञाय पाप्मनैव तेषां वधः कृतः । ततस्ते पराभवं प्राप्ताः इत्युक्तम् । तत्र यदि शङ्क्यते - यदुत्पत्तिकाल एव पराभूताश्चेदसुराः,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

कथं तर्हि तेषां देवैः सह युद्धम्—कदाचिच्च जयोऽपि वर्ण्यते इतिहासप्रकरणे, तत्रेदमुत्तरितम्—अन्वाख्याने—अत्र सृष्टिप्रकरणे ये देवा असुराश्च ते भिन्नाः, इतिहासे तु ये देवा असुरा वा वर्ण्यन्ते ते भिन्नाः, इमे प्राणरूपाः, ते तु प्राणिरूपा इति। तदित्थं भेद एवात्रोभयोरुच्यते, न तु वेदेष्वितिहासाभावः। प्रत्युत इतिहासप्रकरणमपि वेदोक्तमेवात्र ध्वन्यत इति भाव्यम्।

यत्तु सनातनधर्मोद्धारप्रणेतृभिः श्रीमदुमापतिद्विवेदिमहाभागैर्मीमांसकमतमनुसृत्य वेदेष्वितिहासाभावं साधयितुमुक्तम्—

किञ्च वेदे कस्यापि शब्दस्य न काचिदनित्या व्यक्तिरर्थो वेदस्य नित्यत्वात्, किन्तु जातिरेव नित्या पदार्थं इति पूर्वमेवोत्पत्तिकसूत्रमुपन्यस्योपपादितम् सिद्धान्तितञ्च पूर्वमीमांसादर्शने १ अध्याये ३ पादे-"आकृतिस्तु क्रियार्थत्वात्" ॥३३॥ इति सूत्रेण जातीनामेव पदार्थत्वात्, न तु व्यक्तीनामिति भगवता जैमिनिना। अस्य च सूत्रस्य क्रियार्थत्वाद्-आकृतिः जातिः पदवाच्येति योजना। अयं भावः व्यक्तिशक्तिवादिनाप्यवश्यं जातिर्भासते इति वाच्यम् अन्यथा, "श्येनचितं चिन्वीत" इति वैदिकवाक्यार्थानुपपत्तेः। तथाहि धात्वर्थे श्येनः किं करणत्वेनान्वेति उत कर्मत्वेन? नाद्यः। कर्मण्यग्न्याख्यायामिति हि पाणिनिसूत्रम्। कर्मवाचके श्येनशब्दस्यादिरूपे उपपदे धात्वर्थेऽपि कर्मणि अग्न्याख्यस्थण्डिलसंज्ञायां कर्तव्यायां चिनोतेः धातोः क्विप् स्यादिति तदर्थः। इत्थं चोक्तसूत्रानुसारेण श्येनशब्दस्य श्येनसदृशे लक्षणां स्वीकृत्य श्येनसदृशं चीयमानं स्थण्डिलं चयनक्रियया भावयेदिति वाक्यार्थः सम्पद्यते। करणत्वेनान्वये तु कर्मवाचकोपपदाभावेन निरुक्त-सूत्र-विरोधः, अतोऽवश्यं कर्मत्वेनान्वये सदृशलक्षणया कर्मत्वं श्येनपदार्थस्य संपादनीयम्। चयनक्रियायाः फलं श्येनसादृश्यम्। तादृशगुणस्यैव 'श्येनचितं चिन्वीत स्वर्गकामः' इत्यत्र स्वर्गसाधनत्वं प्रतीयते। एवं सति केवल-व्यक्तिशक्तिवादिना यावद्-व्यक्तिसादृश्यमिष्यते, उत यत् किंचिद्व्यक्तिसादृश्यम्। नाद्यः। सर्वव्यक्तिसादृश्यस्यैकत्र असम्भवात्। न द्वितीयः। यद् व्यक्तिसादृश्यं वेदतात्पर्यविषयीभूतम्, तन्नाशेऽनुष्ठानलोपापत्तेः। तात्पर्यविषयीभूतवस्तुनोऽभावात्-इत्य-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

गत्या श्येनत्वाश्रयसदृशमिति वाच्यम् । तथा च श्येनत्वबोधस्यावश्यकतया तदर्थं तत्रापि शक्तिस्तवावश्यकी । तथा सति तत्रैव शक्त्या सर्वकार्यनिर्वाहे व्यक्तिशक्तिर्निरर्थिकेति । उपपादितं "चैतत्सर्वमस्मिन्नेवानुकृत्यधिकरणे विस्तरेण भाष्यवार्तिकयोः" । इत्यादि । तदप्येतन्न मनोरमम् । सर्वेषां शब्दानामाकृतिरभिधेयेति मीमांसकानामभ्युपगमस्यैवाभावात् । अनेकाधिकरणविरोधापत्तेः । तथा हि अरुणाधिकरणे पूर्वोत्तरपक्षयोरुभयोरपि अरुणशब्दस्य गुणवाचकता स्वीकृता । इदं हि तत्र भाष्यम्, "ननु नैवायं गुणवचनः, किं तर्हि द्रव्यवचनः, कुतः ? स्त्रीलिङ्गसंबन्धात् । द्रव्यविषया ह्येते–स्त्री पुमान् नपुंसकमिति । स्त्रियां यत् प्रातिपदिकं वर्तते तस्मात् स्त्रीप्रत्ययो भवतीति स्त्रीप्रत्ययं चारुणयेत्युपलभामहे, तस्माद् द्रव्यवचनोरुणशब्द इति । तदेतदपेशलम् । तदेव हि द्रव्यमरुणिम्ना परिच्छिद्यमानमरुणाशब्दाभिधानीयतां लभते तदेवान्यगुणकं नारुणशब्दः शक्नोत्यभिवदितुम् । अरुणिमानमेष शब्दो न व्यभिचरति, व्यभिचरति पुनर्द्रव्यम् । अव्यभिचारि च कारणं कारणवतामिष्टम्, अतोऽस्य गुणः स्वार्थं इति गम्यते । तदस्य प्रत्यक्षतो गुणवचनता गम्यते, स्त्रीप्रत्ययदर्शनात्तु नूनमरुणाप्रातिपदिकं द्रव्यवचनमित्यनुमानम् । प्रत्यक्षं चानुमानाद् बलीयः, तस्माद् गुणवचनः । कथं तर्हि स्त्रीप्रत्ययसम्बन्धः, भवति हि गुणवचनस्यापि स्त्रीलिङ्गता, यथा करणा बुद्धिः, एवमरुणेति (अ.३।पा.५। अ.६) एवमुत्तरपक्षेऽप्येतत्स्वीकृत्यैव पूर्वपक्षनिराकरणं कृतम् । तदेवमत्र गुणवाचकता स्पष्टं शब्दानां स्वीकृता । आकृत्यधिकरणस्य सर्वेषां शब्दानामाकृतिरभिधेयेत्यभिप्रायो यदि मन्येत, स्पष्टं तर्हि अरुणाधिकरणं विरोधितं स्यात् । एवं भाट्टरहस्येऽपि "मीमांसकानां शाब्दबोधप्रकरणग्रन्थे प्रथमाद्वयार्थस्य नीलगुणविशिष्टस्य, घटस्य च कर्तृतासंसर्गेण शाब्दबोधे भावना–विशेष्यके जाते पश्चाद् घटस्य परिच्छेदकीभूतगुणापेक्षायां गुणविशिष्टस्य च जात्यपेक्षायां मानसोऽभेदानुभव इति पार्ष्टिकबोधमादायानुभवोपपत्तेः" इति नीलादिशब्दानां गुणवाचकताऽपि सुस्पष्टं स्वीकृता ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तथैव च भावार्थाधिकरणे (२ अ० १ पा० १ अधि.) आख्यातशब्दा भाववाचका इति महत्यारभट्यो सिद्धान्तितम् । नियोगापूर्वादिपदवाच्यं मीमांसकानां सर्वस्वं चाख्यातशब्दैरेव प्रतिपाद्यते-यन्मनागप्याकृतिसंबन्धं न सहत एव, अमूर्तत्वादुत्पाद्यत्वाच्च । तस्माच्चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः जातिशब्दाः, गुणशब्दाः, क्रियाशब्दाः, यदृच्छाशब्दाः-इति मीमांसकानामभीष्टमेव, यदृच्छाशब्दा एव द्रव्यशब्दा इत्यपि क्वचिदुच्यते । क्वचिच्च भिन्ना अपि द्रव्यशब्दा दण्ड्यादय इति । प्रत्युत मीमांसोपज्ञ एव शब्दानामयं चतुर्धा विभागः–इति तत्तद्ग्रन्थपर्यालोचनया प्रतीयते । तत्र जातिप्रवृत्तिनिमित्तका ये जातिशब्दा उच्यन्ते, यैर्जातिर्व्यक्तिरित्युभयं तेषां वाच्या जात्यपरपर्याया आकृतिरेव । व्यक्तिबोधस्तु तत्र पार्ष्टिको लाक्षणिको वेत्येतदेवाकृत्यधिकरणप्रतिपाद्यम् । न तु शेषान् त्रिविधान् शब्दानधिकरणमिदं स्पृशति । तदेतदधिकरणारम्भ एव मीमांसकशिरोमणिभिः श्रीकुमारिलभट्टपादैस्तत्र वार्तिके उक्तम्–"इह नामाख्यातोपसर्गनिपातानां मध्यान्नामानि परिगृह्यन्ते, तेषामपि जातिगुणक्रियाद्रव्ययदृच्छासर्वनामशब्दानां मध्याज्जातिशब्दाश्चिन्त्यन्ते । तेषामप्येकं गोशब्दमुदाहृत्य विचार्यते–किं पुनरयमाकृतेर्वाचकोऽथ व्यक्तेरिति ।" यद्यप्यग्रे "एवं वा" इति पक्षान्तरमुपन्यस्यद्भिर्भट्टपादैः सर्वाणि नामान्याख्यातानि, तानि चात्र विचार्यन्ते इत्यप्युक्तम्–नामाख्यातपदे तेन कस्यार्थस्याभिधायके । किमाकृतेः उत व्यक्तेरिति चिन्ता प्रवर्तते इति, तथापि प्रौढिवादेनैव व्याख्यातानां पृथगेव द्वितीयाध्याये विचारितत्वात् । यदपि तत्र समाधानमुक्तं तत्पक्षान्तरम्–

प्रत्ययार्थस्य भावस्य वाच्यता प्रतिपादिता ।
प्रकृत्यर्थं विवेकार्थं विचारः क्रियतेऽधुनाम् ।।
प्रत्ययस्यापि वा तत्र भावार्थत्वे निरूपितम् ।
सामान्यं वा विशेषो वा किं वाच्यमिति चिन्त्यते ।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्यादि, तदेतत्सर्वं पक्षान्तरं विज्ञेयम्। आख्यातप्रत्ययार्थं सामान्यस्य भावाधिकरण एव चिन्तितत्वात्, अस्मिन् आकृत्यधिकरणे यान्युदाहरणानि, या वा युक्तयः, तत्सर्वमपि जातिशब्दमेवाश्रयति विषयतया। न गुणक्रियाशब्दानां काप्यत्र सूत्रभाष्यवार्तिकादिषु चिन्ता। तस्माद् भट्टपादैरुपक्रमोक्तं मुख्यपक्षमाश्रित्य जाति-शब्द-मात्रविषयकमधिकरणमिदम्, इतिहासबोधकानि व्यक्तिनामानि यदृच्छाशब्दरूपाणि न स्पृशति इति विद्वत्प्रवराणामपि श्रीमदुमापतिमहाभागानां यूरोपीयविद्वत्खण्डनाभिनिवेशेनैवात्र तदधिकरणोपन्यासः। अस्तु वा सर्वेषां शब्दानां जातिरेव वाच्येति पक्षान्तरम्, परं सा जातिर्व्यक्तिवाचकेषु यदृच्छाशब्देष्वपि कथंचित्प्रकल्प्यत एव यदृच्छाशब्दानां संकेतसम्बन्धेन तत्तद्व्यक्तौ निवेशिता इत्यादि शब्द एव प्रवृत्तिनिमित्तम्, तस्मिंश्च प्रत्युच्चारणं भिद्यमाने एकत्वप्रत्यभिज्ञार्थं कल्प्यत एव जातिः। वाच्यायां डित्थादिव्यक्तावपि च बाल्यकौमारयौवनादिभेदेन भिन्ने शरीरे अभेदप्रत्यभिज्ञार्थं कल्प्यते जातिरिति काव्यप्रकाशादौ स्पष्टम्। तदित्थं जातिवाचकत्वे स्वीकृतेपि इतिहासार्थता न हीयते, व्यक्तीनां ग्रहणस्योक्तरीत्या समर्थनात्।

भवद्भिरपि च हरिश्चन्द्रसुदासादिशब्दानामाकृत्यधिकरणरीत्यैवमेवार्थो वक्तव्यः स्यात्। व्याकरणादिरीत्याऽर्थान्तरे कल्प्यमाने प्रसिद्धपदार्थकाधिकरणविरोधः प्रसज्येतेत्युक्तं प्राक्। श्रीशंकराचार्यपादा अपि देवताऽधिकरणे मीमांसकोक्ताकृतिपदेनाऽवयवसंनिवेशः स्थानविशेषो वा बोध्यत इति व्याख्याय व्यक्तिग्रहणमपि वैदिकशब्दैः समर्थयामासुः। यद्यपि वेदे न सन्ति यदृच्छाशब्दा इति तत्र तत्र मीमांसकैरुच्यते, परं स तेषां प्रतितन्त्रसिद्धान्त एव, न निरुक्तभाष्यादिषु समादृत इति विस्पष्टं निरूपितं प्राक्। ततश्चैतिहासिकप्रक्रियापि शिष्टसम्मता, तस्याश्च विवरणभूतानि पुराणानीति।

यत्तु "केचित् प्राणो वै वसिष्ठः" "चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः" इत्यादीनि विवरणानि ब्राह्मणेषूपनिषत्सु च श्रूयमाणान्युपन्यस्य तत्तद्व्यक्तिपरत्वमेषां शब्दानां खण्डयन्तो वेदेऽष्वितिहासं निराकुर्वन्ति, तदप्येकदेशितामवलम्ब्यैव।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वेदार्थ-विचारे मतभेदाः

वेदार्थविचारोऽपि अनेकधा प्रथते—

१. कर्मकाण्डप्रक्रियाप्राधान्येन । यथा श्रीमाधवोव्वटमहीधरादीनां भाष्येषु ।

२. ऐतिहासिक-प्रक्रियाप्राधान्येन । यथा यूरोपीयपण्डितानां, तदनुयायिनां भारतीयविदुषां च ।

३. वैज्ञानिक-प्रक्रियाप्राधान्येन । यथा निरुक्तकृद्यास्क-श्रीस्वामिदयानन्द – श्रीसत्यव्रतसामश्रमि – श्रीमधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रभृतीनाम् ।

४. समाजसंघटनप्रथापरत्वेनेति चतुर्थ्यपि विधा शक्यते गणयितुम्, या श्री स्वामिदयानन्दैस्तदनुयायिभिश्च विशेषेण समाद्रियते ।

५. आध्यात्मिकप्रक्रियापि च पञ्चमी उपनिषद उपजीव्य नक्वचित्प्रवर्तते । परमल्पस्यैव वेदभागस्येति ।

आसु सर्वास्वपि प्रक्रियासु अस्त्येव बाहुल्येन पुराणानामुपयोगः । कर्मकाण्डप्रधानायां पुरातनभाष्यकारैः समादृतायां प्रक्रियायामुपदर्शित एव ।

ऐतिहासिक-प्रक्रियायामुपयोगः

अथैतिहासिक-प्रक्रियायामप्यालोच्यताम् । मन्त्रेषु ये दृश्यन्ते अतिसंक्षेपेणेतिहासाः, तेषु केचन ब्राह्मणेषु संक्षेपेण विव्रियन्ते । विस्पष्टं तेषां विवरणन्तु पुराणेष्वेवोपलभ्यते । यथा—

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥
(ऋ० १।८४।१३)

अत्र दधीचिनाम्न ऋषेरस्थीनि याचित्वा तैर्वज्रं निर्मायेन्द्रेण वृत्रासुरो निहत इति संकेतमात्रम् । विस्तृतन्त्वेतद् वर्णनं पुराणेष्वेव

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

लभ्यम् । न च पुराणपर्यालोचनमन्तरेण मन्त्रस्यास्यार्थो मनस्तुष्टिकरः प्रजायेत। "नवतीर्नव" इत्यपि च वेदपुराणैकवाक्यतयैव शक्यं सम्यगवगन्तुमिति ।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे ॥
(ऋ० १।२२।१७।)

अत्र श्रूयमाणं विष्णोर्विक्रमणं शतपथब्राह्मणे प्रथमकाण्डे कथंचिद् विवृतमपि सपरिकरं पुराणेष्वेव लभ्यम् । उभयैकवाक्यतयैव च संपद्यते सर्वविद्याधिकारिणां चेतसस्तुष्टिः ।

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापिर्देव सुमतिं चिकित्वात् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद् वर्ष्या अभि ॥
(ऋ० सं० १०।९८।५)

अस्मिन् तु समुद्रे अध्युत्तरस्मिन् आपो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता आद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षणीषु ।
(ऋ० सं० १०।९८।६)

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो
बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥
(ऋ० सं० १०।९८।७।)

यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥
(ऋ० सं० १०।९८।८)

अत्र श्रूयमाणः कोऽयं शन्तनुः, को वा देवापिः ? कस्तयोः सम्बन्धः, कथं च होत्राय वरणमित्यादि सर्वं पुराणपर्यालोचनेनैव शक्यं विज्ञातुम् । यदपि च निरुक्तकृदादिभिः किंचिद्विवृतम्, तत्पुराणान्युपजीव्यैवेति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्रेष्वेवंविधेषु नैतिहासिकी प्रक्रिया पुराणान्यनवलम्ब्य सफलं प्रवर्तेत। एवं सुदासादिविषयेष्वपि बहुषु मन्त्रेषु द्रष्टव्यम्।

वेदेष्वेतिहास-समर्थनम्

अत्र मीमांसानुयायिनः आर्यसामाजिकाश्च विद्वांसो विप्रतिपद्यन्ते। एषतेषामुक्तिसारः—

वेदानामपौरुषेयतां समर्थयमानेन भगवता जैमिनिना "अनित्य-दर्शनाच्च" इति पौरुषेयतापूर्वपक्षमुद्भाव्य "परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्" इति समाहितम्। वेदेषु हि आध्यात्मिकाः, आधिभौतिकाः, आधिदैविकाश्च सर्वेऽपि भावास्तत्र तत्र प्रकरणभेदेन विव्रियन्ते, सर्वेषां च सामञ्जस्यं विधातुं प्रसिद्धा ऋषिदेवादिवाचकाः शब्दाः सर्वत्रैव योज्यन्ते, नत्वितर-निराकरणं भवति तत्र तात्पर्यम्। तारामण्डलेऽपि सन्ति वसिष्ठाद्या ऋषयः इन्द्रवृहस्पत्याद्या-देवाश्च। अध्यात्मम्-तैन शरीरेपि सन्ति ऋषयो देवाश्च, अधिभूतमपि च व्यक्तिरूपेण नापलप्यते तेषां सत्ता। तदध्यात्मप्रकरणे इन्द्रियादिपरतया व्याख्यानं दृष्ट्वा इतरनिराकरणाय सज्जीभावो नूनं कृत्स्नवेदापर्यालोचनमूलिका एकदेशितैव। अधिभूतप्रकरप्रकरणादौ पर्या-लोचिते सा निवर्तेत इति सर्वमिदमग्रे सृष्टिप्रकरणादौ स्पष्टीकरिष्यते। तदित्थमितिहासप्रक्रियायामुपयोगः समर्थितः।

वैज्ञानिक-प्रक्रियायामुपयोगः

अथ तृतीया वेदार्थविपयिणी वैज्ञानिकप्रक्रिया। तत्राप्यस्ति पुराणानां महानुपयोगः। वेदेषु हि वैज्ञानिका विषया अतिसूक्ष्मरूपेणो-पात्ताः, ये नीरसत्वात्, साधारणबुद्धेस्तत्र दुरवगाहे विषये प्रवेशासंभवाच्च न सर्वजनबोध्या भवन्ति। पुराणेषु तु त एव रूपककल्पनादिभिरलंकृत्य तथा चमत्कृतिसारां रसमयीं सुषमां लम्भिताः, यथा तद्रसनितान्तसमा-कृष्टस्वान्तस्य साधारणस्यापि जनस्य सुखेन तत्र प्रवेशो भवेत्। सर्वोऽपि च दुरावगाहं तमर्थमतिप्रसीददन्तरङ्गो गृह्णीयात्। परिगृहीतं च तादृशे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

कल्पनामये रूपे संकेतमात्रेण सर्वमपि वैज्ञानिकं रूपं झटिति तस्य पुरस्तादुपस्थाप्यते, तेन गृह्यते च । अस्ति प्रसिद्धः आभाणकः गुलिकाक्रीडायामत्यर्थं व्यसनी कश्चन राजपुत्रः सर्वभावेनाध्ययनपराङ्मुखः पित्रा नियुक्तेन केनचिदतिचतुरेण विदुषा तस्यां क्रीडायामेव समासज्ज्य समुत्पादिता विस्रम्भेण गुलिकानामेव क-ख-ग-घादि नामानि, तत्र प्रतिपञ्चकं वर्गभेदान्-स्वरव्यञ्जनादि जातिभेदांश्च प्रकल्प्य सर्वामेव वर्णमालामतिसौष्ठवेन गाहितः, परस्तात्संकेतमात्रेणेदमेव गुलिकारूपं सर्वेषु पुस्तकेषु दृश्यत इति पुस्तकानुवाचने प्रवर्तितः क्रमेण समाससाद वैदुष्यम्, तथैव सांसारिक-विषयवासनाव्यसनिनः सुकुमारमतीनपि सरसकल्पनाप्रासादमधिशाय्य जनान् दुरूहविषयजातमपि कटुकौषधमिव गुडजिह्विकान्यायेन पाययित्वा शिथिलितमानसतमोरुजः संकेतमात्रेण ग्राहयन्ति वैदिकं तत्त्वं पुराणानि । वहु किलास्माभिरत्र विषये सृष्ट्यादि प्रकरणेषु वक्तव्यम् । इह तु निदर्शनमात्रं किंचिद्वदामः –

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

इति वेदप्रतिपादित आदिपुरुषे न कस्यापि मनो रमेत । रोचकतायास्तत्रासंस्पर्शात् । पयः पारावारोच्छलदनन्तशुभ्रमणिद्रवायित तरलतरङ्गततिपरिवृतां फणामणिसहस्रसमुद्भासित-कोमलच्छवि-विकस्वरां शुभ्रदुकूलसहस्रस्तरश्लक्ष्णां शेषशय्यामधिशयानः कोटिकामकमनीयः सजलजलदश्यामलः सौदामिन्येव कमलया समालिङ्गितः कौस्तुभोद्भासिश्रीवत्सलाञ्छनः पीताम्वरपरिवृतो ब्रह्मसूत्रं दधत् पाञ्चजन्यसुदर्शननन्दककौमोदकी विराजितकरकमलः शार्ङ्गधनुरनन्तशरव्रात-खचितं तूणीरं च कटौ बिभ्रत् पञ्चरूपया मुक्तामाणिक्यमरकतेन्द्रनीलवज्रव्रात - खचितया वैजयन्त्या मालया विभ्राजमानः, श्रवणविराजित मकराकृति-मरकतकुण्डलः, किरीटमुकुट-विभ्राजितमौलिर्विष्वक्सेनादिभिः पार्षदैरनुक्षणं धृतातपत्रः, चामरव्यजनैर्वीज्यमानश्च गणैस्सतामजस्रमुपासितः परमपुरुषस्तु कस्य वा सचेतसो

CC-0. Prof Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

न प्रसह्य समाकर्षति चेतः। एवंविधं स्वरूपं मनसानिशं ध्यायन्तश्च तत्रैव विज्ञानौपयिकं सर्गतत्त्वमपि संकेतमात्रेण बोध्यन्ते।[१]

---

१ नमस्कृत्वाऽप्रमेयाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
कथयामि यथाख्यातं वसिष्ठेन ममाभवत् ॥६६॥
आत्मानमस्य जगतो निर्लेपनगुणामलम्।
विभर्त्ति कौस्तुभमणि-स्वरूपं भगवान् हरिः ॥६७॥
श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्तेन समाश्रितम्।
प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ॥६८॥
भूतादिमिन्द्रियादिं च द्विधाहङ्कारमीश्वरः।
बिभर्ति शङ्खरूपेण शार्ङ्गरूपेण च स्थितम् ॥६९॥
चलत्स्वरूपमत्यन्तं जवेनान्तरितानिलम्।
चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुः करे स्थितम् ॥७०॥
पञ्चरूपा तु या माला वैजयन्ती गदाभृतः।
सा भूतहेतु-सङ्घाता भूतमाला च वै द्विज ॥७१॥
यानीन्द्रियाण्यशेषाणि बुद्धिकर्मात्मकानि वै।
शररूपाण्यशेषाणि तानि धत्ते जनार्दनः ॥७२॥
विभर्ति यच्चासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्मलम्।
विद्यामयं तु तज्ज्ञानमविद्याकोश-संस्थितम् ॥७३॥
इत्थं पुमान् प्रधानं च बुद्ध्यहंकारमेव च।
भूतानि च हृषीकेशे मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥७४॥
विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्वमेतत्समाश्रितम्।
अस्त्रभूषण - संस्थानस्वरूपं रूपवर्जितः ॥७५॥
बिभर्ति मायारूपोऽसौ श्रेयसे प्राणिनां हरिः।
सविकारं प्रधानं च पुमांश्चैवाखिलं जगत् ॥७६॥
बिभर्ति पुण्डरीकाक्षस्तदेवं परमेश्वरः।
या विद्या या तथाऽविद्या यत्सद्यच्चासदव्ययम् ॥७७॥
तत् सर्वं सर्वभूतेशे मैत्रेय मधुसूदने।
.... ॥७८॥ इति।

[विष्णुपुराणे (१ अंशे २२ अ०)]

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विष्णुपुराणे भगवत्स्वरूपमेव वैज्ञानिकेन रूपेण स्पष्टं व्याकृतम्। श्रीमद्भागवतेऽपि[२] – किञ्चिद् वैलक्षण्येन तदेव मुख्यं तत्त्वं प्रतिपादितम्।

---

(२) अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम्।
समस्त-तन्त्रराद्धान्ते भवान् भागवततत्त्ववित् ॥१॥

तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः।
अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च वै ॥२॥

तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम्।
येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥३॥

(श्रीमद्भागवते १२ स्क० अ० ११)

अस्य प्रश्नस्योत्तरम्

यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थयाऽमितः।
तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥९॥

कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः।
तत्प्रभा व्यापिनं साक्षात् श्रीवत्समुरसा विभुः ॥१०॥

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत्।
वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥११॥

बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले।
मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम् ॥१२॥

अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः।
धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥१३॥

ओजः सहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत्।
अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥१४॥

नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम्।
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA
कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥१५॥

एवमेव शैवेषु पुराणेषु भगवतः शिवस्य शाक्तेषु पुराणेषु च चिच्छक्तेरुपास्यरूपाणां जगदात्मतया विवरणं समुपलभ्यते । तदेतत्सर्वमीश्वरप्रकरणे स्फुटीकरिष्यामः । उक्तं च—

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्याशरीरिणः ।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ।।

चेतस एकाग्रतया साध्या उपासना, निर्गुणे निराकारे च न चेतो गच्छतीति उपासनार्थं वेदेऽपि सगुणः साकार ईश्वर उपादीयते । पुराणेषु च तथाविधेन सौन्दर्येण तद्विवरणं विधीयते, यथा सुरसाकृष्टं मनस्ततः क्षणमपि दूरीभवितुं नेच्छेत् । तस्माद्वैज्ञानिक-प्रक्रियायामपि वेदार्थे महदुपकुर्वन्ति पुराणानि । क्वचित्तु अतिगम्भीराणां वैज्ञानिकानां वैदिकार्थानां

इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यन्दनम् ।
तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ।।१६।।

मण्डलं देवयजनम्, दीक्षासंस्कार आत्मनः ।
परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ।।१७।।

भगवान् भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ।
धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ।।१८।।

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् ।
त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ।।१९।।

अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ।
विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ।
नन्दादयोऽष्टौ द्वाःस्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ।।२०।।

(श्रीमद्भागवत स्क० १२ अ० ११)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

स्फुटमपि विवरणं पुराणेषूपलभ्यते । यथा श्रीमद्भागवते पुरुषसूक्तस्य-टीकारूपेण विवरणमुपलभ्यते ।[1]

---

(१) सर्वं वै पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भविष्यत् ।
तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥१५॥
स्वधिष्ण्यं प्रतपन् प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ।
एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥१६॥
सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ।
महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥१७॥
पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ।
अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नो धाममूर्धसु ॥१८॥
पादास्त्रयो बहिश्चासन्न प्रजानां य आश्रमाः ।
अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधो बृहद्व्रतः ॥१९॥
सृती विचक्रमे विष्वक् साशनानशने उभे ।
यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥२०॥
यस्मादण्डं विराड् यज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः ।
तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥२१॥
यदास्य नाभ्यान्नलिनादहमासं महात्मनः ।
नाविदं यज्ञसंभारान् पुरुषावयवादृते ॥२२॥
तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ।
इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥२३॥
वस्तुन्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् ।
ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥२४॥
नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ।
देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तन्त्रमेव च ॥२५॥
गतयो मतयः श्रद्धा प्रायश्चित्तं समर्पणम् ।
पुरुषावयवैरेते सम्भाराः सम्भृता मया ॥२६॥

(भागवतपुरा० २ स्कन्धे ६ अध्याये)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अत्र पुरुषसूक्तस्यार्थो विवृतः ।

पुरातनभूगोलादिविद्या अपि पुराणैरेवेदानीं परिचीयन्ते, नास्ति गत्यन्तरम्। इदानीं परिचीयमानः को जनपदः, कः पर्वतः, का वा नदी, पुरा केन नाम्ना व्यवहृता अभवन्, कियान् वा पुरा देशविस्तार आसीद्-इत्येतत्सर्वं पुराणान्येव बोधयन्ति। ज्योतिषग्रन्थेष्वाधुनिकेषु यद् दृश्यते तदपि पुराणोपज्ञमेव। आश्चर्यंन्विदम्-यन्न वयमेवास्मद्देशे भारतस्य पुराणे भूगोलादिकं परिचिनुमः अपि तु अद्यत्वे विज्ञानपारङ्गता यूरोपीया विद्वांसोऽपि बहु साधयन्ति। ईजिप्ट इत्याङ्गलभाषया विख्याते मिश्रदेशे अस्त्येका सुप्रथिता नीलनदी, याऽति प्रसिद्धा तस्य देशस्य विभाजिकेव मध्ये प्रवहति। तस्या उद्गमस्थानं पुरा न केनापि परिचीयतेस्म। भारतीयपुराणैः सह बद्धपरिचयः श्रीविलफोर्ड महाशयो भारतीय पुराणान्याधारीकृत्य मानचित्रमेकं निर्मितवान्, यत्र नील नद्या उद्गमस्थानं प्रदर्शयामास।

बहुकालपर्यन्त भारतीयपुराणानामेवं विधं गौरवमसहमानाः श्री एच. एच. विल्सन श्री कनिघन्, फ्रांसदेशीयः श्री सैन्टमार्टीन इत्याद्या युरोपीयाः प्रसिद्धा विद्वांसस्तं विलफोर्डमहाशयमुपजहसुः, तदीया उक्तीश्चखण्डुः, अविश्वसनीयं तदीयं मानचित्रमुदघोषयन्, वृथैवायं पुराणानां पक्षपातेन वञ्चित इत्यादि च यथेच्छं जगदुः। परं सत्यं न चिरं तिरोधातुं शक्यत इत्यस्त्यैश्वरो नियमः। यूरोप जात एव लेफ्टनेण्ट जे.एच. एस्पीक महाशयस्तदन्वेषणे प्रवृत्तः स्वयं मिश्रदेशे परिबभ्राम, तेन विलफोर्ड महाशयनिर्मितस्य भारतीय पुराणाधारस्य मानचित्रस्य सत्यता स्वयं प्रतिपदमनुभूता, क्रमान्नील नद्या सङ्गमस्थानमपि च तल्लिखितं स्वयं प्रत्यक्षीकृतम्। सर्वमेतत् प्रत्यक्षेण परिगृह्य नीलनद्या उद्गमस्थानान्वेषणम् (डिस्कवरी आफ दी सोर्स आफ दी नाल) इति पुस्तके तेन सर्वेऽपि स्वानुभवाः सम्यक् प्रदर्शिताः। विल्फोर्डमहाशयेन भारतीयपुराणान्याधारीकृत्य निर्मितं तद्देशमानचित्रं तत्र प्रमाणानि तत्खण्डनमण्डनादिकं च सर्वमिदं (एशियाटिक रिसर्चेज) नामके क्रमेण प्रकाशिते महानिबन्धे तृतीयस्यां सञ्चिकायाम् मुद्रितमस्ति। हिन्दीभाषापत्रिकास्वपि तदंशः क्वचित् क्वचित

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्राकाश्यं गतः। अहो महिमा पुराणानाम्! यदद्यापि तानि विज्ञानपारंगतंमन्यानां देशेष्वप्यप्रसिद्धानि स्थानानि तान् प्रतिबोधयन्ति। सर्वमपि भूमण्डलं करतलामलकीकृत्यात्र संनिवेशितम्। एवमप्रसिद्धचराणां जातीनामप्युद्गमं तानि सप्रमाणं बोधयन्ति। किमन्यत् कियतश्चित् कालात् पूर्वमैतिहासिकैर्वैदेशिकैः "अन्धकार युगम्" इति नाम्ना या शताब्द्यः सहस्राब्दयो वा निर्दिष्यन्ते स्म, यत्र किमपि न ज्ञायते स्म, तत्राप्यन्धकारं दूरीकृत्य भारतमातुः सुपुत्रैर्युरोपीयैरपि च कैश्चित् पार्जिटरप्रभृतिभिः पुराणेष्वेव परिश्रम्य प्रकाशः पातितः। इदानीमितिहासशृङ्खला महाभारतयुद्धकालपर्यन्तमव्याहतं प्रवर्तमानाभिमन्यत ऐतिहासिकैः। अस्ति यद्यपि नास्तिकानां मतेऽद्यापि तत्र त्रुटिः, सापि तु पुराणेषु परिश्राम्यद्भिरेव दूरीक्रियेत क्रमेण। परं भारतीयानां दुर्भाग्यमहिमाऽपि सीमानमतिक्रान्त एव, यदेते स्वीयानि पुराणान्यद्याऽपि न सम्यगन्विष्यन्ति, अन्येभ्यः प्रबोधनस्य तु का कथा, न स्वयमपि तज्ज्ञानमुपाददते। प्रत्युत पण्डितम्मन्याः "अन्यैव काचन दिव्या भूमिः, पुराणेषु वर्णिता, न सा प्रत्यक्षेणेदानीन्तनैर्द्रष्टुं शक्येति" प्रलप्यात्मानमन्यांश्च वञ्चयन्ति परिश्रमविधुराः। आस्तामेतदप्रकृतम्, पुराणानां महानुपयोगोऽयं मनागस्माभिः प्रदर्शितः।

एवमन्यत्रान्यत्रापि वैज्ञानिकप्रक्रियया वेदार्थे पुराणानामुपयोगः संक्षेपेण प्रदर्शितः। अग्रे चात्रैव स्थाने स्थानेऽस्य विशदीकरणं भवेत्।

समाजसंघटनप्रक्रियया वेदार्थविचारे तु पुराणानि मुख्यमेवावलम्बनम्, पुराणेतिहासान् पृथक्कृत्य प्राक्तनस्य समाजसंघटनस्य ज्ञानं मृगतृष्णोदकायितमेव भवेदिति। यथाहि— "अनुव्रतः पितुः पुत्रो वा भ्राताभ्रातरं द्विषत्" इति श्रुतावुपदेशरूपेणोक्तम् – कथमनुवर्तनं—कथं च भ्रातृणामद्वेषो भवतीति तु रामयुधिष्ठिरादिनिदर्शनेन पुराणैरेव समर्थ्यते। निदर्शनैरेव चोपदेशाश्चेतसि प्रभावमादधातीति सामाजिक प्रक्रियया वेदार्थेऽपि पुराणानां महानुपयोगः। आध्यात्मिकप्रक्रिया च

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वेदार्थस्य पुराणेष्वेव बाहुल्येन प्रदर्शितेति सर्वास्वपि वेदार्थप्रक्रियासु पुराणानि जीवातुभूतानि। एतदेव सर्वं स्पष्टयितुमुक्तमनेकधा पुराणेषु—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

उत्तरार्धस्य निदर्शनानि नाद्यत्वे दुर्लभानि। इदानीं हि पुराणादिकं परित्यज्य यथेच्छं मन्त्रार्थकरणस्य प्रक्रिया पाश्चात्यैः प्रवर्तिता। तया प्रवर्तमानाश्च गुरवः पाश्चत्याः शिष्या भारतीयाश्च प्रतिपदं वेदार्थं कदर्थयन्ति, यथेच्छमाचारस्वातन्त्र्यं च वेदानेव द्वारीकृत्य प्रचारयन्तीति विप्लवमिव प्राप्ताः भारतीया संस्कृतिः। ये च संस्कृतविद्वांसोऽपि पुराणेतिहासाश्रयणमन्तरेण वेदार्थे प्रवृत्ता; तैरपि न वेदार्थव्यवस्थापने साफल्यमंशतोऽपि लब्धम्। इतिहासपुराणान्याधारीकृत्य प्रवृत्तैस्तु गुरुवरश्रीमधुसूदन विद्या-वाचस्पति महाभागैराविष्कृतं विलुप्तप्रायं वेदार्थविज्ञानम्। न पुराणाद्याश्रयणमन्तरेण वेदेषु सिद्ध्यति गतिरिति।

अन्यासु विद्यासूपयोगः

अथ वेदाङ्गेषु न्यायादिविद्यास्वपि च तत्तद्विद्या संप्रदायप्रवर्तकानामितिवृत्तसमर्पणद्वारेणास्त्येव पुराणानामुपयोगः। कस्यापि ग्रन्थस्याध्ययनारम्भे, तत्कर्त्तुस्तद्विषयस्य च पूर्णः परिचयः प्रथममेव प्राप्य इत्यस्ति तावदाधुनिकी सुप्रसिद्धा प्रक्रिया सूपयुक्ता च। स एष परिचयः सर्वासु विद्यास्वादिप्रवर्तकानामृषीणां मुनीनां च पुराणैरेव लभ्यः। न हि गौतम-जैमिनि - कपिल - व्यासप्रभृतीनामन्यतकुतश्चिदपि परिचयः शक्यसंपादः। संप्रदायप्रवर्तकपरंपरामविज्ञाय च त्रुटिरिव सर्वासु विद्यासु स्वतो भासत इति सर्वोपयोगीनि पुराणान्येव प्रसिद्ध्यन्ति। उपवेदेष्वायुर्वेद - धनुर्वेद-गान्धर्ववेदस्थापत्यवेदेषु च धनुर्वेदस्थापत्यवेदयोर्विलोप एवेदानीं प्रसक्तः। अनयोर्विषये यत्किमपि ज्ञायते, तत् पुराणेतिहासैरेव ज्ञायते पुराणेतिहासेषु प्राप्यन्तेऽद्यापि तादृशा अंशाः, यैरनयोरुपवेदयोः स्वरूपं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

परिचेतुं शक्यत इति। तथैव आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीतिः इति परिगणितासु चतसृषु विद्यासु वार्ताविद्या सर्वथेदानीं विलुप्ता। वृत्युपायान् बोधयति या सा वार्ताविद्येत्युच्यते, याम् "एकोनामिक्स" नाम्ना-प्रचारयन्ति पाश्चात्याः। अस्याः स्वतन्त्र एकोऽपि ग्रन्थोऽद्यत्वे भारतीय-विद्यासु नोपलभ्यते। इयमासीच्चतसृषु विद्यास्वेकेति एतावतैव कियान् विस्तारोऽस्या अस्मद्देश आसीदिति शक्यमनुमातुम्। पाश्चात्यविद्यास्वद्या-प्यस्याः प्राधान्यं दरीदृश्यते। संस्कृतवाङ्मये तु महामहिम्नां वैदेशिक-सम्राजां स्नानीयतोयोष्णीकरणाय विनियुक्ता अस्या ग्रन्था दोधूयमाना भारतं शप्त्वेव गताः। अस्या विद्याया यः कश्चिदंश इदानीं प्राप्यते, स पुराणेष्वेव। ततश्चविलुप्तविद्यापरिचयप्रदानमपि पुराणानामेक उपयोगोऽक्षुण्णः।

स्वातन्त्र्येण मुख्यानि प्रयोजनानि

अथ प्रातिस्विकेषु विषयेषु सर्गप्रतिसर्गवंश - वंश्यानुचरितमन्वन्तराख्येषु उपविषयेषु - आख्यानोपाख्यानगाथाकल्पशुद्धिषु चास्त्येव पुराणानां स्वातन्त्र्यमिति पुराणलक्षणप्रकरणेऽनुपदं व्याख्यास्याम। इहत्वेतावदेव वक्तव्यम् - यत् महाप्रबलैर्बलवदाक्रान्तापि, स्वीयेन केनाप्यरक्ष्यमाणापि भारतीयसंस्कृतिर्यदद्यापि कथञ्चिदुच्छ्वसिति, सोऽयं पुराणानामेवोपयोग इति निर्विवादम्। महाभारतयुद्धादनन्तरेमस्तं प्रयाते वैदिके विज्ञाने, उपेक्षिते इतिहासे क्रमेण पारतन्त्र्यमाप्तवति च भारते, युद्धस्वार्थपरैर्भारतीयैः परित्यक्तप्रायायां संस्कृतभारत्याम्, धर्म-विषयमावृण्वति गाढान्धतमसे, विस्मृति गहने पतन्त्यां भारतीयसंस्कृतै पुराणान्येव बभूवुरालम्बनानि। उच्छृंखल प्रायामज्ञानगर्ते पतनाभिमुखीं जनतां मेतान्येव –सुहृद्भावेन प्राक्तनीं संस्कृतिमबोधयम्। अहन्याकूतं निशि शयानं विवेकपराङ्मुखं विचारस्य पन्थानमप्यविन्दन्तं जनसमुदायं ग्रामेषु खर्वटेषु नगरचतुष्पथेषु देवमन्दिरादिषु च दक्षिणालु

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

न्धैरेव द्विजैर्वाध्यापयन्, अरक्षंश्च तेषां हृदये संस्कृतेर्भावान् कथञ्चित् तत एवाद्यापि जीवति भारतीया संस्कृतिरतितमां खिन्नापि। इमान्येवाश्रित्य सूरतुलसीकेशवकुलपति प्रभृतयो हिन्दीभाषाकवयः, लल्लूलालहरिश्चन्द्रप्रभृतयश्च लेखकधुरन्धरा हिन्दीभाषादिमयैरपि प्रबन्धैः संस्कृतेस्तत्वानि जनतायां प्रचारयन्तो ररक्षुः संस्कृतिम् —

निवासः कान्तारे प्रिजनवियोगाधिरधिको,
धनुर्मात्रं त्राणं रिपुरपि धुरीणः पलभुजाम् ।
अकूपारात्पारे वसति स च काऽत्र प्रतिकृति-
र्न मित्रं सुग्रीवो यदि तदियती राघवकथा ॥

(हनुमन्नाटके)

सुग्रीवो यदि मित्रं नाभविष्यत्, तर्हि पद्यस्यास्य त्रिभिः पादैरेव रामकथा समाप्ताभविष्यदिति तदाशयः, स खलु भगवान् भ्रुकुटीभङ्गमात्रेण चतुर्दशभुवनोत्पादनहरणयोः समर्थोऽपि लोकमर्यादया सुग्रीवसम्मानरक्षार्थमेवमवोचत्। इह तु तस्योक्तिमनुकृत्य सत्यमेवगदितुं शक्यते—यत् यदि पुराणेतिहासा नावातरिष्यन्नस्मिन् भारतमण्डले तर्हि रोमेग्रीकादि संस्कृतेरिव भारतीयसंस्कृतेरपि प्रबलैः परैराक्रान्ताया स्वीयैरप्यशक्यरक्षाया अरक्ष्यमाणायाश्च कथं जीवनं शक्यरक्षणं समभावयिष्यत इत्येवकथावशिष्टा स्यात्।

अद्यापि तु प्रत्यक्षं दृश्यताम्—"प्रतिशतं नवतिर्जना अद्यापि भारतीयसंस्कृतिप्रणयिनः" इति यत्साभिमानं ब्रूमहे-तत्र किं वा प्रमाणमस्माभिरुपस्थाप्येत-ऋते तीर्थयात्रायाः। तीर्थेष्वेवार्द्धकोटिमितान् जनान् निरावरणं निराश्रयं च भ्रमतः परं क्लिश्यमानानपि भारतीयसंस्कृतिपरिपालनजनितहर्षातिरेकान् विलोक्य भारतीयस्य धर्मस्य स्वरूपं प्रत्यक्षीभवतीव। इमान्येव तीर्थानि रक्षन्ति युगेऽस्मिन् भारतीयां संस्कृतिं विनिन्दतां मुहेराणाम्। ये फिलाङ्गलशिक्षादीक्षिताः प्रतिक्षणमाक्रोशन्ति भारतीयं साधुसमाजम्, ते पश्यन्तु गत्वा कुम्भपर्वादिषु प्रखरतरे ग्रीष्मे ललाटन्तपे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भगवति भास्करे, तरुपत्राण्यपि ग्रसन्ति हिमपाते वा निरावरणान् लक्षावधिकान् सर्वधर्मबलभूतत्यागतितिक्षादिव्रतानीव मूर्तिमतः-साधुजनान्। सेयं तीर्थयात्रा केन बोधिता ? पुराणैरेव। भवत्वस्माकं सर्वोऽपि धर्मो वेदमूलः, प्राप्यतां तत्र सूत्ररूपेण तीर्थतत्त्वम्, लभ्यतां वा क्वचित् स्मृतिष्वपि तीर्थचर्चा, अथापि कुत्र कुत्र कानि कानि तीर्थानि, कस्मिन् काले कस्य माहात्म्यम्, केन विधिनोपगन्तव्यानि तीर्थानि, किं वा तत्र विधेयमिति सर्वमेतद्विस्तरेण पुराणेष्वेव लभ्येत, नेतरत्र। तथैव व्रतादिप्रक्रिया येयमद्यत्वे प्रचरति, यत्प्रसादेन स्त्रीषु भारतीय-संस्कृतिरभिरक्षिता जागर्ति, सापि पुराणैरेव विरतार्यते। अस्ति यद्यपि श्रुतिस्मृत्योरपि व्रतविधानम्, परं स्मृत्यामुक्तानि कृच्छ्रसान्तपनचान्द्रा-यणादीनि क्वाऽनुष्ठीयन्ते ? अद्य तु पुराणोक्तानामेव व्रतानां प्रसरः। इष्टापूर्तमप्यद्यत्वे पुराणोक्तमेव तायते। उपासनामार्गेऽपि अवतारोपास-नैवाद्यत्वे प्रचरति। तस्या अपि विस्तरः पुराणमूलक एव। किमन्यत् भूतदया याऽवशिष्यते सनातनधर्मचिह्नं, भारतीयपुरातनसंस्कृति चिह्नं वा, तस्य सर्वस्य मूलभूतानि पुराणान्येव जाग्रति। मूढतमस्य यथाजातस्य धर्ममार्गे स्थापनं पुराणानामेव प्रसादः। धर्मव्यवस्थापका महामहान्तः चतुर्वर्गचिन्तामणि - वीरमित्रोदयपुरुषार्थचिन्तामणि - निर्णयसिन्धु प्रभृतयो निबन्धाः, सर्वेऽपि ते पुराणवचनैरेव भरिता विलोक्यन्ते।

त्रिविधामुपदेशप्रक्रियां विवृण्वन्त्यालंकारिकाः, प्रभुसंमिताम्, सुहृ-त्संमिताम् कान्तासंमिताञ्चेति। आज्ञामात्रेण तत्र तत्र क्रियासु लोकानां प्रवर्तनं प्रभुसंमिता प्रक्रिया। सेयं वेदानां–"अहरहः संध्यामुपासीत्","सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात्", "राहूपरागे स्नायात्" इत्यादिना केवलमाज्ञारूपेण प्रवर्तते। सुहृत्तु मार्गाद्विचलितं मित्रं नाज्ञारूपेण बोधयति, अपि तु परिणा-मान् दृष्टान्तैरुपदर्श्य तस्य मनोवृत्तिं परिवर्तयितुमनुक्षणं चेष्टते। सेयं सुकोमलोपदेशप्रक्रिया पुराणेतिहासादीनाम्। वशीकृतत्रिभुवनो विधे-यीकृतेन्द्रादिसुरगणः सुवर्णमय्या लङ्काया अधीश्वरोपि रावणः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

परित्यक्तन्यायमार्गः सोदरेण भ्रात्रापि विसृष्टः कां वा गतिं गतः, यस्य नामापि लोके विनष्टमिव--

"शिवशिरसि शिरांशि यानि रेजुः, शिव शिव तानि लुठन्ति गृध्रपादैः।" रामस्तु न्याय्यं पन्थानमनुसरन् वनेचरोऽपि त्यक्तसर्वपरिच्छदोऽपि ऋक्षवानरैरेव सर्वथा परकीयैः कृतसाहाय्यो विजयी बभूव, तस्माद् रामादिवत्प्रवर्तितव्यं श्रेयाभिलाषिणा जनेन, न रावणदिवदिति । हुंङ्कारप्रकम्पितत्रिलोकीमण्डलो, असुरप्रतापस्य प्रथमः प्रतिष्ठापयिता हिरण्यकशिपुरीश्वरमनभ्युपगच्छन् धर्मांश्च विप्लावयन् सहसैव विनाशमाप्तः, प्रह्लादस्तु धर्ममभिरक्षन् स्तुवंश्च जगदीश्वरं तस्मादेव रक्षणमाप इति नाभिमानपरैर्धर्ममर्यादा पातयितव्या, कष्टं सोढ्वापि तु आस्तिक्यरक्षणं कर्तव्यमिति उपदेशानेवं विधान् प्रतिपदं पुराणेतिहासा अस्मभ्यं ददति । उपदेशार्थमेव भारतीयसंस्कृतौ तद्विधासु इतिहासस्यादरः न तु वर्षदिनादिगणनार्थमितिभाव्यमेतद् भावुकैः । तदित्थमितरशास्त्रनिरपेक्षः सुमहान् पुराणानां भारतीयसंस्कृति रक्षायामुपयोग इति प्रदर्शितं मनाक् ।

पुराणलक्षणसमीक्षणम्

अथ कानि तानि पुराणानि, यान्येवं स्तूयन्ते, तेषां चोपयोगः सर्वत्र विस्तरेण प्रदर्शित इति जिज्ञासामुपशमयितुं पुराणस्वरूपं विचार्यते। पुराणशब्दस्य हि व्युत्पाद्यमानस्य व्याकरणरीत्या 'पुरा भवम्' इत्यर्थः स्फुटति, अतिप्राचीनार्थकात् पुरेत्यव्ययात् भवार्थे ट्युप्रत्यये निपातनात्तुडभावे च पुराणशब्दसिद्धेः । तेनातिप्राक्तने काले यज्जातं तत् पुराणशब्दवाच्यमिति फलति । निरुक्तकृद् भगवान् यास्कस्तु पुराणं पुरा नवं भवति'इति व्युत्पादयन् पुरेत्यव्ययपूर्वकाद् नुधातोस्तस्य सिद्धिं मन्यते— पुरा अतिप्राचीने काले यन्नवमासीत्' इत्युक्त्या पुराभवत्वमेवार्थः प्रतिफलति। क्वचित्तु 'पुरा अणति इदं सर्वं यत्, तत् पुराणमिति'

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

शब्दार्थकादण्धातोः पुराणशब्दव्युत्पत्तिः प्रदर्शिता, यथा ब्रह्माण्डपुराणे (उ० भा० ३५० पा० ४।५४)—

यस्मात् पुरा ह्यणन्तीदं पुराणं तेन उच्यते ।

पुरा अतिपूर्वकाले इदं जगद् अणन्ति भणन्तीत्यर्थः। यथाकथंचिदप्यस्तु, अतिपुरातनं यद् वस्तु तत् पुराणशब्दवाच्यमित्यत्र न कस्यापि विवादः। कोशकारोऽमरसिंहोऽप्याह—

"पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरन्तनाः"

अतिप्राचीनार्थक एवायं पुराणशब्दो विशेषणतया तत्र तत्र व्यवह्रियते, पुराणः कूपः, पुराणं नगरम्, पुराणं काव्यम्, पुराणः पन्थाः, पुराणी राजधानीत्यादौ। इह तु विद्याप्रकरणे प्रयुज्यमानोऽयं शब्दोऽति पुरातनीं विद्यामभिदधाति। सर्वतः प्राचीना विद्या पुराणविद्येति।

पुराणानां सर्वविद्यासु प्राथम्यम्

अत एव भगवता याज्ञवल्क्येन विद्यागणनाप्रसङ्गे सर्वतः प्रथममित्थमुदीर्यते—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

(याज्ञव० स्मृ० अ० १ श्लो० ३)

पुराणेषु च स्पष्टमुक्तम्—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

(वायु० पु० १ ख० ११५४) (ब्रह्माण्डपु० ५० मा ११४१)
(मत्स्यपु० अ० ५२।३) (शिवपुराणं वायवीयसहितायां १-३१-३२)
(स्कन्दपु० प्रभाखण्डे २-१८)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ।।

(श्रीभागवते ३ स्क० १२।३८)

पुराणमेकमेवासीत् सर्वकल्पेषु मानव ।
चतुर्वर्गस्य बीजं च शतकोटिप्रविस्तरम् ।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणादभवत्ततः ।।

(बृहन्ना० पू० ख० ९२-२१, २२)

एवमन्यत्रान्यत्रापि । तेन सर्वविद्यासु प्राथम्यमुपगतेयं पुराणविद्येति प्रस्फुटीभवति—

पुराणप्राथम्यस्य युक्त्या समर्थनम्

युक्तिसिद्धमप्येतत् । बाल्ये सर्वमिदं विलोकितवतो मनुजस्य मनः शक्तिप्रसरे यदा विचारशक्तिरुद्भवति, तदा यदिदं सर्वं दृश्यते, तत् कुतः कदा केन वा प्रादुर्भावितम् इत्येव जिज्ञासा प्रथममुदेति, तस्या उपशमायोपयुक्ता विद्या च प्रथममेवापेक्ष्यते । किं च यज्ञविद्यया सर्वत्र भूतेषु भौतिकेषु वा यथेच्छं परिवर्तनं शक्यं कर्तुमित्युपदिशन्ति—

"यस्त्वेवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन् वशे (यजुः सं० ३१।२१) इति सर्वभूलभूतानां देवानां वशीकारे सर्वस्यापि यथेच्छं विनियोक्तुं शक्यत्वात् । परं प्रकृत्या कथं भूतानि भौतिकानि वा व्यवस्थापितानि इत्यविज्ञाय कथं तत्र परिवर्तनं स्वानुकूलं शक्यं विधातुम् ? तस्माद्यथेच्छं स्वानुकूलं विनियोगं विधातुं यत्परिवर्तनं यज्ञवेदैः कर्त्तव्यम् तत्पूर्वं तत्तदुत्पत्तिक्रमं विज्ञायैवेति प्रकृतिचरितविज्ञानरूपस्य पुराणाख्यवेदस्य यज्ञवेदात्पूर्वत्वमेव प्रसिद्ध्यति । अनादिभूता विद्या वेद इति परिभाषायां पुराणमपि वेदः, यज्ञप्रक्रियाबोधका मन्त्रब्राह्मणा वेद इति व्यवहारे तद्भेदज्ञानाय 'पुराणवेदः' 'यज्ञवेदः' इति संज्ञाद्वयं प्रवृत्तम्, तत्र यज्ञवेदापेक्षया पुराणवेदस्य प्राथम्यमुक्तयुक्त्या समर्थितम् । यदि तु

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यज्ञवेद एव वेदशब्देन परिभाष्यते, तर्हि पुराणस्य वेदात्प्राथम्यं पुराणेषूद्-घुष्टं, तयैव युक्त्या समर्थनीयम्। पूर्वं प्रकृतिकृतिविज्ञानं, तदनु तत्र स्वानुकूलपरिवर्तनाय विचेष्टनमिति क्रमोऽयं सर्वथाप्यक्षुण्णः।

आधुनिका अपि साइन्सपदाभिधेये पदार्थविज्ञाने एवमेव भेदद्वयं व्याचक्षते। फिजिक्स् (फिजिकल साइन्स) इति कैमिस्ट्री (कैमिकल साइन्स) इति पदाभ्यां च तद् भेदद्वयं परिच्चिन्वन्ति। तत्र यद्यद् भूतं भौतिकं वा यथोत्पद्यते, तत्परिज्ञानं फिजिक्स्विद्यया संपाद्यते, तत्र परिवर्तनविधानं तु कैमिस्ट्रीविद्यया। तत्रापि केमिस्ट्रीपरिज्ञानापेक्षया फिजिक्स्परिज्ञानं पूर्वमावश्यकं भवति, यथासिद्धं वस्तुस्वरूपमविज्ञाय परिवर्तन-प्रयोगस्याशक्यत्वात्। आयुर्वेदेऽपि निदानं चिकित्सेत्यनयोरस्ति क्रम एतद्युक्तिसिद्ध एव। स्थितस्य व्याधेः पूर्वं हेत्वादिपरिचयो निदानम्, तदनु तदपनयोपायप्रयोगश्चिकित्सा। न हि निदानेन विना सम्यक् चिकित्सा सिद्ध्यतीति तत्रापि निदानमेव पूर्वमध्य:प्यते, तदनु चिकित्सा। ज्योतिषेऽपि कीदृशो ग्रहः कथंविधेन सम्बन्धेन कीदृक् फलं दातुं सन्नद्ध इति प्रकृतिसिद्धां घटनां विज्ञायैव स्वानुकूल्य संपादनाय ते त उपायाः प्रयुज्यन्ते इति सर्वत्रैवमेवोहनीयम्। तस्मात् प्रकृतिचरितविज्ञानात्मिका पुराणविद्येयं सर्वाभ्योऽपि विद्याभ्यः पुरातनीति पुराणशब्देनैवाभिलप्यते। एवं वेदापेक्षयापि पुराणानां प्राचीनत्वसमर्थनेन अनादित्वं वेदानां भज्येतेति महाननर्थसंपात इति तु नाशङ्कनीयम्, वेदस्य पुराणस्य चोभयो-रप्यनादित्वमुररीकृत्य लोके तत्प्रादुर्भावक्रमस्यैवात्र चिन्तनीयत्वात्। अत एव ब्रह्मणा प्रथमं पुराणं स्मृतम्, अनन्तरं तस्य वक्त्रेभ्यो वेदा विनिर्गता इत्येव पुराणेषूक्तम्, न तु पूर्वमनन्तरं वा उत्पन्ना इति। अनादिभूतासु विद्यासु यद्विषयिणी जिज्ञासा पूर्वमुत्तिष्ठते, या वान्यासामुपजीव्या भवति, तस्याः प्रथमं प्रादुर्भाव इत्येव युक्त्या प्रासीसधाम। तस्मात्प्रादुर्भावक्रमो वा अध्ययनक्रमो वात्रानुसन्धेय इति नानादित्वभङ्गशङ्काकलङ्कं कथम-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्यापतेत्। वस्तुतस्तु पुराणमपि वेद एवेति पूर्वं प्रत्यपीपदाम,

प्रतिपादयिष्यामश्चाग्रेऽपि कालनिरूपणप्रसङ्गे इति न कोऽपि विरोधोद्भावनप्रसङ्गोऽपि ।

तदित्थं यज्ञवेदापेक्षयापि प्रादुर्भावे परिज्ञाने वा यदा पुराणविद्यायाः पूर्वत्वमुच्यते, युज्यते च, तदा कैव कथान्यासां विद्यानाम् । विधिप्रतिषेधात्मकं धर्मशास्त्रं सर्वथैव पुराणविद्यामुपजीवति, तेषु तेषु पदार्थेषु सात्त्विकत्वपरिचये स्वात्मानुकूल्यपरिचये वा संग्रहस्य, तामसत्वपरिचये स्वात्मप्रातिकूल्यपरिचये वा परिवर्जनस्य धर्मशास्त्रैः प्रतिपादनात् । नहि तत्तत्पदार्थगुणधर्मपरिचयमन्तरेण विधिप्रतिषेधाभ्यां संग्रहपरिवर्जने यथेच्छं शक्येते समुपदेष्टुम्, उन्मत्तप्रलपितत्वापत्तेः। गुणधर्मपरिचयश्चायं नोत्पत्तिविज्ञानमन्तरेण शक्यसंपादः, उत्पत्तिविज्ञानमेव च पुराणविद्येति धर्मशास्त्रे पुराणानामुपजीव्यत्वं स्पष्टं सिद्धम् । आन्वीक्षिकी तर्कविद्याद्यपरपर्याया न्यायविद्या, वाक्यार्थविचारात्मिका मीमांसा च मननोपयोगिन्यो, मननं च श्रवणानन्तरभावीति श्रवणविषयपुराणविद्याया उपजीव्यत्वं तत्र निर्विवादमेव ।

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः ।
मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः ।।

इत्यभियुक्तोक्तेः श्रुतिपुराणवाक्येभ्यः श्रवणस्य मनने उपजीव्यतायाः स्फुटत्वात् । अत एव न्यायभाष्यकृता भगवता वात्स्यायनेन स्पष्टमुक्तम्— "प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्य अनु ईक्षणम् 'अन्वीक्षा' तया प्रवर्तत इत्यान्वीक्षिकी न्यायविद्या, यत्पुनरनुमानं प्रत्यक्षागमविरुद्धं न्यायाभासः सः" इति। अङ्गानान्तु अङ्गापेक्षत्वं वा, अप्रथमभावो वेति न तदपेक्षया पूर्वापरीभावो विचारमर्हति ।

ततश्च सर्वासु विद्यासु पुरातनत्वात् सर्वोपजीव्यत्वाच्च विद्येयं पुराणशब्देनाख्यातेति सम्यगनुसन्धेयम् ।

अत्रेदमप्यवधातव्यम्— महर्षियाज्ञवल्क्यादिभिश्चतुर्दशसु विद्यासु परिगणनात् पुराणमिति विद्याया एव नाम भवति । ततश्च यथा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

व्याकरणमित्येका विद्या, तत्प्रतिपादका: पाणिन्यष्टाध्यायीप्रभृतयो महाभाष्यप्रभृतय:, काशिकासिद्धान्तकौमुदीप्रभृतय:, आधुनिका मार्गोपदेशिकाप्रभृतयश्च ग्रन्था व्याकरणेऽन्तर्भवन्ति, व्याकरणशब्देनैव चोच्यन्ते, तथैव धर्मशास्त्रमित्येका विद्या, तत्प्रतिपादकाश्च मनुस्मृतिप्रभृतयो गौतमधर्मसूत्रप्रभृतयस्तद् व्यवस्थापका वा चतुर्वर्गचिन्तामणिमिताक्षराप्रभृतय: सर्वेऽपि ग्रन्था धर्मशास्त्रपदेनाभिलप्यन्ते। तेषां ग्रन्थानां परस्परं भेदव्यवहारसिद्धये च मन्वादिनामभिस्ते विशेष्यन्ते, एवमेव पुराणमप्येका विद्या तत्प्रतिपादकाश्च ग्रन्था अपि पुराणशब्देनैवाभिलप्यन्ते, तेषां परस्परं भेदसिद्धये च 'ब्रह्मपुराणम्' 'मार्कण्डेयपुराणम्' 'स्कन्दपुराणम्' इत्यादि तत्तत्प्रतिपाद्यनाम्ना तत्तदुपदेष्टृनाम्ना वा तानि विशेष्यन्ते–इत्यवगन्तव्यम्। तस्मात् 'पुराणम्' इति कस्यचिद् ग्रन्थस्य मुख्यं नामेति भ्रान्तिर्न कार्या, पुराणविद्याप्रतिपादका: सर्वेऽपि ग्रन्था: पुराणपदाभिलप्या भवन्ति। एतावांस्तु भवत्येव विशेषो यद् व्याकरणन्यायादिविद्यासु अद्याप्यभिनवा ग्रन्था निर्मातुं शक्यन्ते, निर्मीयन्ते च, तासां विद्यानां लौकिकत्वात्। धर्मशास्त्रपुराणादिविद्यासु तु अलौकिकत्वान्नार्वाग्दृशां प्रवेश: संभवतीति तन्मूलग्रन्थनिर्मातृत्वं पराशरव्यासप्रभृतिषु मुनिष्वेव प्रतिष्ठितम्। अद्यत्वे केवलं तद्बोधोपयोगिनस्तद्व्यवस्थोपयोगिनश्च टीकानुवादादिग्रन्था एवाभिनवा: निर्मातुं शक्यन्ते, न तु मूलग्रन्था:। असाक्षात्कृतधर्मणामर्वागदृशां तादृशपरोक्षविद्यास्वप्रवेशेनानधिकारात् साक्षात्कृतधर्माण ऋषय:, तत उपात्ततादृशज्ञानाश्च तपस्विनो मुनय: करतलामलकीकृततद्विद्या अभिनवग्रन्थनिर्माणेऽपि प्राभवन्नेव।

तत एव "पुरा पुराणं शतकोटिप्रविस्तरमासीत्, इदानीन्तु लक्षचतुष्टय एव संक्षिप्तम्" इत्याद्या पुराणोक्ता एव परम्परा: स्फुटमुपपद्यन्ते। प्रतिकलियुगं विभिन्ना व्यासाश्च पुराणनिर्मातार इत्यपि पुराणोक्तं तत एवोपपद्यते। यदि तु पुराणमिति कस्यचिद् ग्रन्थविशेषस्यैव नाम स्यात्, तर्हि शतकोटिप्रविस्तरेषु चतुर्लक्षसंक्षिप्तेषु विभिन्नव्यासरचितेषु च विभिन्नेषु ग्रन्थेषु निर्विशेषं पुराणशब्दप्रवृत्तिर्नोपपद्येत। तस्मात् पुराण-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मिति विद्याया एव मुख्यं नाम, तद्विद्याप्रतिपादकाश्च ग्रन्थास्तत्तद्विशेषणं संयोज्य पुराणनाम्ना व्यवह्रियन्त इत्येव युक्त्युपेतम्।

पुराणलक्षणानि

अथास्यां पुराणविद्यायां प्राधान्येन के के विषया अन्तर्भवन्ति, के वा तत्राप्राधान्येन संगृह्यन्त इत्यादि पुराणाधारेणैव निरूपणीयम्। तत्र प्रायेण सर्वेषु पुराणेषु पञ्च लक्षणानि पुराणस्य व्याख्यातानि, पञ्च विषयाः प्राधान्येन पुराणविद्यायामन्तर्भवन्तीति तत्तात्पर्यम्। तैरेव विद्येयं लक्ष्यते विज्ञायते इति तानि लक्षणानि। तानि च विद्यास्वरूपान्तर्गतानीति स्वरूपलक्षणानि वोद्धव्यानि।

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥"

लक्षणमिदं किञ्चित्पाठभेदेन ऐकरूप्येण वा विष्णुपुराणे (३ अंशे ६ अ० श्लो० २४) मार्कण्डेयपुराणे (अ० १३४ श्लो० १३) अग्निपुराणे (अ० १ श्लो० १४) भविष्यपुराणे (अ० २ श्लो० ५) ब्रह्मवैवर्तपुराणे (अ० १३३ श्लो० ६) वराहपुराणे (अ० २ श्लो० ४) स्कन्दपुराणे (प्रभासखण्डे अ० २ श्लो० ८४) कूर्मपुराणे (पूर्व० अ० १ श्लो० १२) मत्स्यपुराणे (अ० ५३ श्लो० ६४) गरुडपुराणे (आचारकाण्डे अ० २ श्लो० २८) ब्रह्माण्डपुराणे (पूर्वभागे अ० १ श्लो० ३८) शिवपुराणे (वायवीयसं० हि० अ० १ श्लो० ४१) देवीभागवते (अ० १ श्लो० १८) अन्यत्रान्यत्रापि च लभ्यते। सर्गो नाम सृष्टिः, जगत उत्पत्तिः, प्रतिसर्गो नाम दृश्यमानस्यास्य सर्वस्य समये समये प्रलयः। वंशः, उपादानभूतानां तत्त्वानाम्, देवादीनाम्, मनुष्याणां च उत्पत्तिपरम्परा, वंश्यानुचरितम्, तत्तद्वंशभवानां तत्तेषां विषये यद्विशिष्य वक्तव्यम्-तद्विवरणम् (अत्रैव तत्तत्मनुष्यवंशप्रसूतानां महर्षीणां राज्ञां च चरितान्यपि समाविष्टानि), मन्वन्तरम्, सृष्ट्यादीनां कालव्यवस्थापनम् इति सामान्येन शब्दानामेषां विवरणमपि तत्र तत्र प्राप्यते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

क्वचित् प्रतिसर्गपदेन आदिसृष्टेरनन्तरं जायमाना अवान्तरसृष्टिरपि व्याख्यायते। प्रलयस्तु सृष्टिप्रातिलोम्येन व्यवस्थापनीय इति तदाशयः। अत्रार्थे प्रतिसर्गपदस्थाने विसर्गपदं केचिन्निवेशयन्ति। वंश्यानुचरितस्थाने वंशानुचरितमिति बहुत्र पाठः। तत्र वंशभवानामनुचरितमिति मध्यमपदलोपी समास आश्रयणीयः, वंशे भवानां चरितं वंशे एव समारोप्य वा व्याख्येयम्।

अत्र लक्षणे कुत्र कुत्र कस्य कस्य विषयस्य समावेश इत्यपि तत्र तत्र विवृतम्। यथा विष्णुपुराणे आरम्भ एव प्रश्नमुखेन विवरणम् (विष्णुपुराण १ अं० १ अ० ४-१० श्लो०)

सोऽहमिच्छामि धर्मज्ञ, श्रोतुं त्वत्तो यथा जगत्।
बभूव भूयश्च यथा महाभाग! भविष्यति॥
यन्मयं च जगद् ब्रह्मन् यतश्चैतच्चराचरम्।
लीनमासीद्यथा यत्र लयमेष्यति यत्र च॥
यत्प्रमाणानि भूतानि देवादीनां च सम्भवम्।
समुद्रपर्वतानां च संस्थानं च यथा भुवः॥
सूर्यादीनां च संस्थानं प्रमाणं मुनिसत्तम॥
देवादीनां तथा वंशान्मनून् मन्वतराणि च।
कल्पान् कल्पविभागांश्च चातुर्युगविकल्पितान्।
कल्पान्तस्य स्वरूपं च युगधर्मांश्च कृत्स्नशः॥
देवर्षिपार्थिवानां च चरितं यन्महामुने।
वेदशाखाप्रणयनं यथावद् व्यासकर्तृकम्॥
धर्मांश्च ब्राह्मणादीनां तथा चाश्रमवासिनाम्।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं त्वत्तो वासिष्ठनन्दन।

अत्र यत्प्रमाणानि भूतानि, देवादीनां सम्भवः, समुद्रपर्वतानां भुवश्च संस्थानम्, सूर्यादीनां संस्थानमिति सर्वं सर्गेऽन्तर्भवति, देवादीनां वंशाः, वंशे, कल्पान्, कल्पविभागानित्यादि सर्वं युगधर्मांश्च मन्वन्तरप्रकरणे,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

देवर्षिपार्थिवादीनां चरितं वंश्यानुचरिते, वेदशाखाविभागकरणाद्यपि च तत्रैवान्तर्भाव्यम् । वायुपुराणेचापि (अ० १-१५, १६)

पुराणवेदो ह्यखिलस्तस्मिन् सम्यक् प्रतिष्ठितः ।
भारती चैकविपुला महाभारतवर्धिनी ॥

धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन् प्रतिष्ठिताः ।
सूक्ताः सुपरिभाषाश्च भूमावौषधयो यथा ॥

एवमादिविस्ताररूपेणैवोक्तम् । श्रीमद्भागवते ब्रह्मवैवर्ते च पुराणानां दशलक्षणानि वर्ण्यन्ते । तत्र श्रीमद्भागवते [द्वितीयस्कन्धे १० अ० १७ श्लोकेषु] यथा—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥

दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥

भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः ।
ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥

स्थितिर्वैकुण्ठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ।
मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥

अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ।
पुंसामीशकथा प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ।
मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥

आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते ।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीमद्भागवत एव द्वादशे स्कन्धे सप्तमे ऽध्याये अष्टमं श्लोकमारभ्य किंचिद्भेदेन दश लक्षणानि परिगण्यन्ते ।—

पुराणलक्षणं ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ।
शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च ।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥

दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ।
केचित्पंचविधं ब्रह्मन् ! महदल्पव्यवस्थया ॥

अव्याकृतगुणक्षोभान् महतस्त्रिवृतोऽहमः ।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥

वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ।
कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ॥

रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानुयुगे युगे ।
तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयो द्विषः ॥

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वर ।
ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ।
वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः ।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः ॥

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ।
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA
यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥
एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ।
मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ॥

ब्रह्मवैवर्तेऽप्येतानि दशलक्षणानि शब्दान्तरैरुच्यन्ते (कृष्णखण्डे १२ अ० ६-११ श्लो० १)

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं विप्र ! पुराणं पंचलक्षणम् ॥
एतदुपपुराणानां लक्षणं च विदुर्बुधाः ।
महतां च पुराणानां लक्षणं कथयामि ते ॥
सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषां च पालनम् ।
कर्मणां वासना वार्ता मनूनां चाक्रमेण च ॥
वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम् ।
तत्कीर्तनं हरेरेव वेदानां च पृथक् पृथक् ।
दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम् ॥

तत्रैतस्मिन् विचार्यमाणे त्रिषु स्थानेषु दशानां लक्षणानामुक्तौ शब्दभेद एव, नाभिप्रायभेदः । श्रीमद्भागवते द्वादशे स्कन्धे, सर्गः १, विसर्गः २, वृत्तिः ३, रक्षा ४, अन्तराणि ५, वंशः ६, वंशानुचरितम् ७, संस्था ८, हेतुः ९, अपाश्रयः १०, इति लक्षणान्युक्तानि । द्वितीये स्कन्धे तु सर्गः, विसर्गः, इति द्वौ समानौ शब्दौ, अन्तराणीत्यस्य स्थाने स्पष्टीकृत्य 'मन्वन्तर' इति पदं निवेशितम्, अपाश्रयस्थाने च आश्रय एवोक्तः, हेतुः— जीवस्य संसारप्राप्तिहेतुः अविद्याकर्मादिकं यत् तत्स्थाने तत्र इतिपदं निवेशितम्, 'ऊतयः कर्मवासनाः' इति स्पष्टीकृतमेव । एवं पञ्चानां साम्यम् । अनन्तरं वंश-वंशानुचरिते ईशानुकथापदेन गृहीते । हरेः अस्यानुवर्तिनां च कथा ।"—इति ऋषिराजादिचरितानामपि संग्रहस्य तत्र स्पष्ट -

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मुक्तत्वात्, वंशमन्तरेण वंशानुचरितकथनस्यासामञ्जस्येन वंशस्य वंशानुचरित एवान्तर्भावः। संस्थापदेन चतुर्विधः प्रलयो द्वादशे स्कन्धे संगृहीतः, तत्र वैलक्षण्यं बोधयितुमात्यन्तिकलयरूपा मुक्तिर्द्वितये पृथगुपाया, निरोधश्च नैमित्तिकप्रकृतिकप्रलयरूपः पृथग् बोधितः। द्वादश रक्षापदेन अवतारकथाबोधकेन अनुग्रहरूपं पोषणमपि संगृहीतमासीत्। द्वितीये तु ईशानुकथा, पोषणं चेति पृथक्कृत्योक्तम्। एवं द्वयस्यान्तर्भावः, द्वयस्य पृथक्करणमिति नव लक्षणानि सम्पन्नानि। द्वादशे च वृत्तिशब्देन भूतानां परस्परोपमर्देन जीवनरूपा या स्थितिरुक्ता, सा द्वितीये स्थानपदेन समुपात्ता। स्थानं स्थितिः, 'वैकुण्ठविजय' इति यदुक्तम् तस्यायमेवाशयो यत्पालकस्य विष्णोर्वैकुण्ठपदाभिधेयस्यायमेव विजयः— स्वकार्यसाधकता, यद भूतानि परस्परमन्नान्नादभावेन जीवन्तीति। एवं भागवतोक्तानां दशानां लक्षणानां सामञ्जस्यम्। ब्रह्मवैवर्तेऽपि सृष्टिः 1. विसृष्टिः 2, स्थितिः 3, कर्मणां वासनाः 4, मनूनां वार्त्ताः 5, प्रलयानां वर्णनम् 6, मोक्षनिरूपणम् 7, इति सप्त लक्षणानि समान्येव। हरेः कीर्तनम् इति आश्रयः, पोषणं च तत्रैव संगृहीतम्। वेदानां च पृथक् पृथगिति ईशानुकथा बोधिता क्रमेण—अक्रमेण वा वार्तेति वंशानुचरितं पृथक्कृत्योक्तमिति शब्दान्तरेण तान्येव दशलक्षणान्युपात्तानि।

वस्तुतस्तु इमानि दश पंचानामेव विस्तारमात्रम्। सर्गः, प्रतिसर्गः (प्रलयः-संस्था) वंशः, वंशानुचरितम्, मन्वन्तराणीति पंच लक्षणानि श्रीमद्भागवतस्य द्वादशे स्कन्धे स्वशब्दैरेवोपात्तानि। अन्यत्र यथा संगृह्यन्ते तथोक्तान्येव। अवशिष्टेषु पञ्चसु विसर्गः खलु सर्गस्यैवावान्तरो भेदः आश्रयशब्देनोपात्तः, ईश्वरश्च सर्गकर्तृत्वेन, हेतुरित्यूतिरिति वा समाख्याता। कर्मवासना च सर्गहेतुत्वेन सर्ग एवान्तर्भावमर्हतः। वृत्तिरिति स्थानमिति वाभिसंहितः परस्परमुपमर्द्योपमर्दकभावः वंशानुचरिते स्फुटमन्तर्भवत्येव। ईशानुकथा, पोषणं, रक्षा वापि वंशानुचरित एवान्तर्भवन्ति, अवताराणां क्वचिद्वंश एव प्रादुर्भावात्, वंशानुचरितपदेन अवतारचरितानामपि संगृहीतत्वात्। तस्मात् पञ्चानां प्रपंच एव दशलक्षणानीति नात्र परस्परं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

कोऽपि विरोधः । केवलमीश्वरसततप्राधान्यबोधनाय पृथक्कृत्य भागवतादौ तानि प्रोक्तानि ।

प्रत्येकं हि शास्त्राणां मुख्यप्रतिपाद्याः प्रातिस्विका विषयाः पृथक् पृथग् भवन्ति, वहुवस्तु प्रासंगिका अन्यदीया विषया अपि तत्रापतन्ति । यथा धर्मशास्त्रे मनुस्मृत्यादावपि सृष्टिप्रक्रिया, आध्यात्मिका दार्शनिकाश्चापि विषयाः प्रसङ्गेन सन्ति निरूपिताः, दर्शनेष्वपि चास्ति धर्मविषयः प्रासंगिकः । तत्तच्छास्त्रलक्षणे क्रियमाणे तु यस्तस्य प्रातिस्विको विषयः स एव लक्षणत्वेन निरूपणीयो भवति । सर्गादयः पञ्चैव च पुराणानां प्रातिस्विका विषयाः । एषामन्यत्र स्पष्टमनुपलम्भादित्यनुपदमेव स्फुटीकरिष्यामः । कर्म, वासना, ईश्वरः इत्यादयस्तु विषया न पुराणानां प्रातिस्विकाः तेषां वेदेषु, दर्शनेषु, उपासनाग्रन्थेषु, धर्मशास्त्रेष्वपि च विस्तरेण प्रतिपादनात् । एवन्तु नास्ति विद्यासु स कोऽपि विषयः, यः पुराणेषु न संगृहीतो भवेत्. परं सर्वेऽपि ते विषयाः पुराणानां लक्षणानि न भवन्ति । प्रातिस्विका एव तु सृष्ट्याद्या विषया लक्षणत्वेन निरूपयितुमुचिता इति त एव सर्वत्र पुराणलक्षणत्वेन निरूप्यन्ते । श्रीमद्भागवतस्य तु प्रादुर्भाव एव भागवतान् धर्मान् व्याख्यातुमिति तदुपक्रम एव स्पष्टम् । तस्माज्जगदीश्वरो भगवानेव तत्र मुख्यप्रतिपाद्यः, अन्येषां निरूपणं तु केवलमीश्वरस्वरूपपरिज्ञानायेति—

"दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्"

इति तत्र स्पष्टमुक्तम् । मुक्तिरेव तत्र मुख्यतया साध्या, सा च जगदीश्वरानुग्रहमन्तरेण नावाप्येति मुक्तिपोषणादीनामपि मुख्यतया कथनं तत्र युज्यत एव । न तु सर्वेषु पुराणेष्वेषां मुख्यता, तथा सति—

"त्वया भागवता धर्मा प्रायेण न निरूपिताः"

इति नारदस्य व्यासं प्रति कथनमसमञ्जसं स्यात् । यद्यपि ईश्वरस्य ईश्वरभक्त्यादेश्च निरूपणमन्यत्रापि पुराणेषु सुविशदं प्राप्यत एव,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विशिष्य च महाभारते, तथापि पुराणान्तरेषु मुख्यप्रतिपाद्यं सृष्ट्यादिकमेव, महाभारते च भारतवंश्यानामितिहास एव मुख्यः प्रतिपाद्य इतीश्वरस्य तद्भक्तेस्तद्धर्माणां च निरूपणं तत्र तत्राप्राधान्येन, भागवते तु प्राधान्येनेति भागवतं स्फुटमभिमन्यते। तत एव तत्रेश्वरप्रधानानां दशानां लक्षणानां विवरणं कृतम्।

दशलक्षणरहस्यम्

तत्रापि दशलक्षणकथने रहस्यमिदं प्रतीयते— 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यादिना जगतो जन्मस्थितिसंहारकर्तृत्वमीश्वरलक्षणमभिहितम्। आम्नातं च तदेव श्रुतिषु—

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, यत्र जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति" इति।

आगमिके प्रत्यभिज्ञादर्शने तु परमशिवपदाभिधेयस्य परमेश्वरस्य पञ्चकृत्यकारित्वं प्रतिपादितम्, तानि च पञ्चकृत्यानि, सृष्टिः, स्थितिः, संहारः, विलयनम् (निग्रहः), अनुग्रह इति। अत्र त्रीणि कृत्यानि पूर्वोक्तानि श्रौतान्येव जीवस्य बन्धप्रापणम्, अनुग्रहेण मोचनं चेति द्वयमधिकमुक्तम्। तान्येतानि पञ्च भगवतः कृत्यानि लक्षणरूपेण श्रीमद्भागवते द्वितीये स्कन्धे सर्वत्र स्थानम्, निरोधः, विसर्गः, पोषणम्-इतिशब्दैरभिहितानि विसर्गपदेन पौरुषसर्गस्योक्ततया निग्रहेण जीवभावप्रापणस्यैवाभिसंहितत्वात्। पोषणपदेनानुग्रहस्तु स्पष्टं तत्रोक्त एव। आद्यस्य पंचकृत्यकारिणः परमेश्वरस्य द्वे रूपे तत्र उपास्यमनुग्राहकं रूपम् आश्रयपदेन,जगत्परिचालकं तु कालरूपम् मन्वन्तरपदेन संगृहीतम्। तदित्थमीश्वरसम्बन्धे सप्त लक्षणानि व्याख्यातानि। निगृहीतस्य जीवभावं गमितस्य तु सम्बन्धेन संसार-गर्तपातिका ऊतिः (कर्मवासनाः) विमोचनसाधिका ईशानुकथा, पोषणफलभूता मुक्तिश्चेति त्रीणि लक्षणान्युक्तानीति दश तानि जीवेश्वरसम्बन्धेनैव पर्यवस्यन्ति। तान्येतानि प्राधान्येन भगवन्तमीश्वरम् तदाराधनाधिकारिणं जीवं च प्रकृत्य तन्निरूपणप्रवृत्तस्य श्रीभागवतस्यैव लक्षणानि भवितुमर्हन्ति, न तु पुराणसामान्यलक्षणानि। तत एव भागवत

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एवैतानि निरूपितानि, न पुराणान्तरेषु । यत्तु द्वादशे स्कन्धे अष्टादशानां महतां पुराणानामिमानि लक्षणानीत्युक्तम् तत्प्रसङ्गेन कथंचित् सर्वत्रैव तन्निरूपणमभिप्रेत्य, पञ्चानामेव विवृतिरूपाणि दशेत्यभिप्रेत्य वेति सम्यगवधार्यम् । ब्रह्मवैवर्तेऽप्येकत्र पंचलक्षणान्युक्त्वा परमेश्वरस्य भागवतानुसारित्वमभिव्यक्तुं दशलक्षणान्यपि तदनुसारीण्युपात्तानि इति कृतं विस्तरेण । एवं देवीभागवतेऽपि पुराणानां पंचलक्षणान्युक्त्वा सर्गप्रतिसर्गयोः किञ्चिद्वैलक्षण्येन विवरणं कृतम्—

तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा ।
महालक्ष्मीः सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः ।।२०।।
तासां तिसृणां शक्तीनां देहाङ्गीकारलक्षणः ।
सृष्ट्यर्थं च समाख्यातः सर्गः शास्त्रविशारदैः ।।२१।।
हरिद्रुहिणरुद्राणां समुत्पत्तिस्ततः स्मृता ।
पालनोत्पत्तिनाशार्थं प्रतिसर्गः स्मृतो हि सः ।।२२।।
सोमसूर्योद्भवानां च राज्ञां वंशप्रकीर्तनम् ।
हिरण्यकशिप्वादीनां वंशास्ते परिकीर्तिताः ।।२३।।
स्वायम्भुवमुखानां च मनूनां परिवर्णनम् ।
कालसंख्या यथा तेषां तत्तन्मन्वतराणि च ।।२४।।
तेषां वंशानुकथनं वंशानुचरितं स्मृतम् ।
पंचलक्षणयुक्तानि भवन्ति मुनिसत्तमाः ।।२५।।
(1 स्कन्ध 1-10)

अत्र प्रधानरूपा शिवरूपैव या चिच्छक्तिः, तस्या अंशानां महालक्ष्म्यादीनामाविर्भावः सर्गपदेन, ताभिः शक्तिभिः शक्तिमतां ब्रह्मविष्णुरुद्र.णामाविर्भावनं च प्रतिसर्गपदेनोक्तम् । तदपि तस्य प्रातिस्विकमेव लक्षणं विज्ञेयम् । सर्वेषु पुराणेषु तस्याः प्रक्रियाया अनुपलम्भादिति । तथैव

ब्रह्मविष्णवर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च ।
संहारश्च प्रदृश्येत पुराणं पंचलक्षणम् ।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

स्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे 2।94।95 मत्स्ये च 53।64,65 यदन्था विवरणं दृश्यते तदप्येकदेशिभूतम् । एषामपि पंचानां पूर्वोक्तेषु पंचसु समावेश इति बोधनपरं वा । पूर्वं सर्गादीनि पंचलक्षणान्युक्त्वाऽनन्तरमेव कथनादिति ।

तदित्थं पुराणसामान्यलक्षणानि सर्गादीनि पञ्चेति स्फुटीकृतम् । तत्रापि च सर्ग एव मुख्यः, अन्यानि तु तत्स्वरूपप्रतिपादकानि तच्छेषभूतानि मन्तव्यानि । तत एव बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्ये पुराणपदं व्याचक्षाणैः श्रीशङ्करभगवत्पादैः पुराणमसद्वा इदमग्र आसीदित्यादि (द्वितीय अ० 4-ब्रा० 10 क) इति सर्ग एव पुराणानां मुख्यं लक्षणमुक्तम्, वेदभाष्यकृद्भिः श्रीमाधवाचार्यप्रभृतिश्चोपोद्घाते तदेवानुसृतम् ।

पुराणेष्वतिरिक्ताश्चत्वारो विषयाः

अथ लोकोपयोगितया चत्वारो विषयाः पुराणेषु प्रसङ्गाद् विशिष्य-सङ्गृहीता इत्यपि पुराणेष्वेव प्रतिपाद्यते ।

"आख्यानैश्चाप्युपाख्यानै-
र्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः
पुराणसंहितां चक्रे
पुराणार्थविशारदः

(वि. पु. अंश ३। अ. ६।१५। ब्रह्माण्ड पु.पू.भा. ३४।२१ अ०)

एतच्च विवृतं विष्णुपुराणस्य श्रीधरीयटीकायाम्—

स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः ।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते ।।

वंशानुक्रमेण यानि चरिताम्याख्यायन्ते तानि वंशानुचरिताभिधे मुख्यलक्षणे गृह्यन्ते, यानि तु तत्र तत्रोपदेशाद्यर्थं वंशक्रमननपेक्ष्यैव दृष्टान्त-रूपेण पूर्वचरितानि संगृह्यन्ते तानि आख्यानोपाख्यान शब्दाभ्यामत्र

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

संगृहीतानि, यथा महाभारते नलोपाख्यानम्, सावित्र्युपाख्यानम्, मार्कण्डेये मदालसोपाख्यानम्, इत्यादीनि बहूनि तत्र तत्र द्रष्टव्यानि। तत्रापि वक्त्रा यत्स्वयं दृष्टम्-तदाख्यानशब्देन, यत्तुपरम्परया श्रुतम्-तदुपाख्यान शब्देन ग्राह्यमित्युक्तं श्लोके। केचितु वेदोक्तानामाख्यायिकानामनुवादरूपाणि आख्यानानि, स्वसंकलितानि नलादीनां राज्ञां चरितानि तु उपाख्यानानि इत्याहुः। अथापरे एवमाहुः—वंशो वंशानुचरितञ्चेति पुराण लक्षणं-सर्ववस्तुवृत्तापेक्षया वैज्ञानिकमेव बोद्धव्यम्। मनुष्यविशेषाणां राज्ञां चरितानि तु आख्यानान्येव, प्रसङ्गात् संगृहीतानि चोपाख्यानानीति। गाथास्त्विमा अति प्राक्तन्यः। वेदस्य ब्राह्मणभागेऽपि बह्वचः समुपलभ्यन्ते गाथाः,। प्रथमप्रकरणोक्तासु पुराणप्रतिपादिकासु श्रुतिषु च गाथाः अपि पृथगुक्ता एव। येन केनचिन्महामहिमभाजा आद्ययुगजातेन युगान्तरे वा स्वानुभवो यादृशैः शब्दैरुपनिबध्यते, शिष्टैश्च परमुपगृह्यते, ता एव भवन्ति गाथाः।[1]

उपदेशार्थमत्युपयोगिन्य इमा गाथाः— इति पुराणेषु स्थाने स्थाने संग्रह एतासाम्। एतासां संगृह्य पृथक् संकलनम् प्रकाशनं चात्युपयोगि भवेल्लोकानाम्। कल्पशुद्धिःकल्पानां परिगणनादिति केचित्। वयं तु ब्रूमो यत्सा कल्पशुद्धिर्मुख्यलक्षणे मन्वन्तर एवान्तर्भूता।

---

१. यथा पारस्करः गृह्यसूत्रे विवाहप्रकरणे वरो वदति—

सरस्वति प्रदे भव सुभगे वाजिनीवति।
मां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः॥

यस्यां भूतं समभवत् यस्यां विश्वमिदं जगत्।
तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥

यथा वा महाभारते पुत्रस्य यौवनं गृहीत्वाप्यतृप्तेन ययातिना स्वानुभवः प्रदर्शितः—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

संस्कार निरूपणम्

इह तु कल्पशुद्धिः धर्मशास्त्रप्रकरणम्, तदपि पुराणेषु बहुतरं संगृहीतम्। यस्यैव प्रसादः पूर्वप्रकरणे उपदर्शितो यच्छास्त्रानभिज्ञा अपि केवलं पुराणं श्रुत्वैव स्वधर्मं सम्यक् परिचिन्वन्ति। कलियुगस्य दुरवस्थां योगबलेनानुध्यायैव भगवता व्यासेन पुराणसंकलनं कृतम्। तत्र चावश्य-कतम एवाभूद्धर्मविषयसंग्रहोऽपि। मा भूवन् धर्मज्ञानवञ्चिता अल्पप्रज्ञा अशिक्षिता अपि च लोका इति। तत्र कल्पो नाम वेदाङ्गेषु परिगणितः कर्मकाण्डप्रतिपादकः श्रौतगृह्य - सामयाचारिकसूत्रसमुच्चयः, तदुक्ता अष्टचत्वारिंशत् संस्काराः, शिष्टपरिगृहीताः सदाचाराश्चात्रकल्पशब्देन गृह्यन्ते। तदुक्तं स्मृतिकृता गौतमेन— गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जातकर्मनामकरणान्नप्राशने चौलोपनयने, चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानम्, एतेषां चाष्टका-पार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्राश्वयुजीति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः अग्न्याधेयमाग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासं चातुर्मास्यान्त्योग्रापरतेष्टिर्निरूढपशुबन्धः सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः, अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थःषोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्याम् इति सप्त सोमयज्ञसंस्थाः इत्येते चत्वारिंशत् संस्काराः, अथाष्टावात्मगुणाः दया सर्वभूतेषु, क्षान्तिरनसूया शौचमना-यासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति। एते श्रौताः स्मार्ताः सामान्यधर्मरूपाश्च सर्वेऽपि संस्काराः पुराणेषु प्रसंगेन तत्र तत्र प्रतिपाद्यन्ते - एतदुपयुक्ताश्च शिष्टपरिगृहीताः सदाचाराः। संस्कारो नाम त्रिविधः स्मर्यते शास्त्रेषु-दोषमार्जनम्-अतिशयाधानम्-हीनाङ्गपूर्तिश्चेति। द्विविधाःखलु दृश्यन्ते पदार्था जगति-प्रकृताः-संस्कृताश्च। ये प्रकृत्योत्पादितास्तस्मिन्नेव रूपे स्थिताः शिलोच्चय-नदी-महीरुहादयस्ते प्राकृताः। ये तु मनुष्यैः संस्कृत्य स्वोपयोगाय धृताः, ते भवन्ति संस्कृताः। प्राकृताः पदार्थाः स्वस्वरूपे स्थिताः संस्काराननवाप्य प्रायेण मनुष्योपयोगिनो नैव भवन्ति, अल्पमेव वोपयोगं साधन्ति। तस्मान्मनुष्यास्तान् संस्कृत्य स्वयमुपयुञ्जते। यथान्नं वस्त्रं वा यथा प्रकृतिरुत्पादियति, नतत्तथास्मदुपयोगि भवति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकृत्योत्पादितं शालिगोधूमादिकं स्वोपयोगाय वयं संस्कुर्महे। तत्र प्रथमं तत्सहचरमस्मदनुपयोगि तृणतुषापकरादिकमपनयामः, धूली वहुलेक्षेत्रे समुत्पन्नस्य निसर्गसहचरीं धूलीं च दूरीकुर्मः – तदेतद्दोषमार्जनम्। अथ स्वच्छीकृतं पेषण्या निष्पिष्टं वह्निना परिपक्वं कुर्मस्तदेतदतिशयाधानम्। रुच्युत्पादनाय लवणशाकादिभिश्चसंयोजयामः सेयं हीनाङ्गपूर्तिः। तथैव यथाविधं वस्त्रं परिदध्मस्तथा प्रकृत्या नोत्पादितमिती जानन्ति सर्वेऽपि। प्रकृत्या कार्पास उत्पादितः। दोषमार्जनेन संस्कारेण तदन्तः स्थानि बीजानि विशोध्य धूलीकणांश्च दूरीकृत्य अतिशयाधानात्मकेन च संस्काररेण तूलं तन्तुरूपतां वयनेन वसनरूपतां सीवनेन परिधानीय-रूपतां च प्राप्य हीनाङ्गपूर्तये विधायकवर्तना (वटन) दिभिः संयोज्य तस्योपयोगो मनुष्यसमाजेन क्रियते। एवमेव लोह-पित्तल-सुवर्णादिषु धातुषु गृहनिर्माणादिष्वपि च संस्कारमनुसन्धेयम्। जड़वस्तुषु संस्कारानेतान् सर्वेऽपि मानवाः परिचिन्वन्ति, तत्र कौशलमुपदर्शयन्तश्च महद्यशो धनराशिं चार्जयन्ति। परं चेतनानां मानवानामप्येवं भवन्ति संस्काराः, तेऽपि च तैः संस्कारैः कमप्युत्कर्षं जगदुपयोगितां चावहन्तीति विशिष्य भारतीयैर्महर्षिभिरेव विज्ञातम्। यथाभिलषितं वयं वसनं निर्मिमीमहे लोहस्यानुपमान् संस्कारान् कृत्वा विविधानि शस्त्राणि अद्भुतप्रभावाणि वयं सम्पादयामःइति गर्वेण गर्जन्तु नाम वैदेशिकाः, परं मनुष्यमपि वयं यथाभिलषितं निर्मातुं प्रभवामः– इति तु भारतीया महर्षय एव प्रभवन्ति प्रतिज्ञातुम्। एतैरेव मनुष्याणां त्रिविधाः संस्कारा आविष्कृताः। त एवेमे अष्टाचत्वारिंशमनुष्यसंस्काराः प्रागुपदर्शिता। यथा हि मृदादिषूत्पद्यमानानि अन्नवस्त्रलोहसुवर्णादानि स्वयोनिगतं किट्टादिदोषमुद्वहन्ति - तत्संस्काराय क्रियन्ते प्रयत्नाः, तथैव मनुष्या अप्यतिमलिनबीजरेतः समुद्भवाः पुरीषमूत्रादि सहचारिणः, कृतगर्भवासाः, योनिगतान्यतुलानि दूषणान्युद्वहन्तीति तन्मार्जनाय पूर्वं गर्भाधान - पुंसवन - सीमन्तोन्नयन - जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणा-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

न्नप्राशन-कर्णवेध-चूड़ाकरणाद्याः संस्काराः दोषमार्जनात्मका विधीयन्ते। तदुक्तं भगवता मनुना—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौड़मौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

(अ० २ श्लोक २७)

उपनयन संस्कारस्तूभयरूपः— दोषमार्जनात्मकश्च—अतिशयाधानरूपश्च। कामचार-कामवाद-कामभक्षरूपा इहस्था दोषाबीजादिगताश्च दोषा अपि तेन मृज्यन्ते, वैदिके विज्ञाने प्रवेशाय समुचितो बुद्ध्यतिशयश्चाप्याधीयत इति। गुरुर्हि शिष्यमुपनयमानः शिष्यस्य शारीराग्निं संस्कारप्रक्रियया समिन्धन् स्वमनसा तन्मनो योजयंश्च स्वीयं बौद्धमतिशयं तत्र देव साक्षि-कमादधाति। तेनातिशयेन शिष्यस्यापि वेदाध्ययनयोग्यता, वैदिकरहस्या-धिगमयोग्यतारूपा समुत्पद्यते। सदेवैकमद्वितीयं पूर्वम्, तदनु स तेजो बन्नानि त्रीणि उत्पादयति, तेषु पृथक् पृथक् कार्यासमर्थेषु त्रिवृतं त्रिवृत-मेकैकं करोति। स्वयं च तत्रानुप्रविशतीति वैदिकरहस्यचित्रपटभूतं त्रिवृत्कृतं त्रिभिः सूत्रैः संदृब्धं ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितं च सूत्रं सततमनुध्यानाय तत् कण्ठेऽर्पयति। पलाशशाखासेवनादिभिर्मेधां च तस्य समेधयतीति तदिदं सर्वमतिशयाधानरूपम्। येन विना सुनिपुणं परिश्राम्यतामपि असंस्कृतानां वैदिकं रहस्यं न स्फुरत्येवेति सम्यगालोच्यम्। उपनयनव्रतानि च महाना-म्न्यादीनि अतिशयाधानरूपाण्येव।

विवाहसंस्कार-रहस्यम्

विवाहश्चातिशयाधानरूपोऽपि हीनाङ्गपूर्ति रूपोऽपि चानुसन्धेयः। भार्यात्वं तेन अन्यायामुत्पाद्यत इत्यतिशयाधानरूपः। पुरुषं विना स्त्रियाम् स्त्रियं विना पुरुषे च या हीनता,सापि पूर्णीक्रियत इति हीनाङ्गपूर्ति रूपोऽपि। तदेतदुक्तमुपनिषत्सु — "तस्मादिदमर्द्धवृगलमिव स्व इति स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव" (बृह० उ० अ० १, ४ ब्रा०, ३ क०) इदमत्र रहस्यम्—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥
(यू० ३१।१९)

इति श्रुत्युक्तः प्रजापतिः प्राणः, सर्वासां प्रजानामुत्पादकः, सर्वपदार्थजनक इति यावत् । स च इन्द्रप्राण-मुख्यप्राण-प्रजापत्यादिशब्दैः श्रुतिषूच्यमानः, गर्भे-अन्तः केन्द्रस्थान विन्दौ, चरति-कुर्वद्रुपस्तिष्ठति, सर्वेषामधिष्ठाताऽपि स न कूटस्थः । अपितु क्रियाशील इत्यभिप्रायः । सोऽयं स्वयमजायमानो-नित्योऽपि बहुधा विजायते-बहुभीरूपैः प्रसवं करोति । तस्य च योनिम्-स्थानम्, धीराः- विद्वांस एव परिपश्यन्ति । न हि सर्वेऽपि साधारणजनाः केन्द्रविन्दुं विज्ञातुं प्रभवन्ति । वृत्ताकारे पदार्थे विचारेण तज्ज्ञानसंभवेऽपि चिपिटे प्रलम्वे वा वस्तुनि केन्द्रविन्दुर्दुर्ज्ञेय एव । गणितस्योत्कृष्टतमज्ञानेन शक्यते विज्ञातुम् । तस्मिन्-तदाधारेणैव सर्वाणि भुवनानि तस्थुरिति मंत्रार्थः । यदि कस्यचिन्महागुरुभूतस्यापि पदार्थस्य केन्द्रविन्दुर्निश्चीयेत, तर्हि तत्र बिन्दावङ्गुलिमात्रनिक्षेपेण बालेनापि महान् प्रस्तरादिः शक्येत धर्तुमित्याधुनिकविज्ञानमप्यनुवदति । तस्मादेतस्मात्प्रजापतेरिन्द्रप्राणादभितः प्रसरन्तः प्राणा वर्तुलाकारा एव प्रसरन्ति, त एव चाग्रे भूतान्युत्पादयन्तीति सूर्य-चन्द्र-पृथ्वीतारादीनि सर्वाण्यपि पूर्णप्राणात्मकानि वस्तूनि वर्तुलान्येवोत्पद्यन्ते । अनन्तरं सर्वासु दिक्षु समं प्रसरतस्तस्मादिन्द्रप्राणादेकैकस्यां दिश्युत्पद्यमानाः प्राणास्तु अपूर्णत्वान्न वर्तुलाकारा भवन्ति, त एते मनुप्राणाः, पशुप्राणाश्च श्रुतिषु परिभाष्यन्ते। ते चाग्नीषोममया इत्यग्नेः सोमस्य वा क्वचित्कस्यचित्प्राधान्येन द्वैविध्यमासादयन्ति, आग्नेयाः प्राणाः पुरुषा इति, सौम्याश्च प्राणाःस्त्रिय इति । तैश्चापूर्णैः प्राणैरुत्पादिताः पुरुषा अपि न पूर्णाः, स्त्रियश्चापि न पूर्णा । तत एव नैते प्राणिनः केऽपि वृत्ताकारा उत्पद्यन्ते । अपितु एकदिक्काः प्रलम्बाद्याकारा एव भवन्ति । न चैकक एषु कश्चिदपि सर्गे समर्थः । न चैककः कश्चिद्यज्ञेऽधिकृतः । यज्ञेनोत्पाद्यमानस्य पूर्णप्राणमयस्य दैवात्मनोऽर्द्धेन धर्तुमशक्यत्वात् । सैव स्त्रियः पुरुषस्य चोभयोरपि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

हीनाङ्गता विवाहेन द्वावपि संयोज्य, पूर्णप्राणरूपतां प्रापय्य प्रपूर्य्यते, इति विवाह संस्कारो हीनाङ्गपूर्तिरूपः, पुरुषे पतित्वम्, स्त्रियां भार्यात्व-मुत्पादयंश्चातिशयाधानरूपोऽपीति सुस्पष्टम्।[1]

तदेतत्प्राणिनामुत्पत्तिरहस्यं श्रुत्युक्तमतिसंक्षेपात्प्रसक्तानुप्रसक्त्या प्रदर्शितम्। विस्तरं जिज्ञासमानैस्तु श्रीगुरुचरणानां "महर्षिकुलवैभव" नामा निबन्ध आलोच्य इति।

तदेतदेव पूर्वोक्तयोपनिषच्छ्रुत्या सूचितम् पूर्णेन प्राणेन प्रजापतिना स्वात्मानं विभज्य पुरुषप्राणः स्त्रीप्राणश्चोत्पादितः, तस्माद्द्वयमप्येतद-पूर्णमर्द्धवृगलमिव एकस्य चणकस्यार्धभूता दालीव। सोयं पुरुषस्यावकाशः एकतो हीनता स्त्रिया प्रपूर्यते। उपलक्षणमेतत्, स्त्रिया अवकाशः पुरुषेण प्रपूर्यते। इदमप्यत्रालोच्यम्। आर्यजातीयानां - विवाहसंस्कारोऽयं न पश्वादीनामिव, जात्यन्तरगत एव। मनुष्याणामिव च स्थूलशरीर सम्बन्धमात्रप्रयोजकः अपितु सूक्ष्मशरीरभूतानां प्राणानामपि परस्परं संयोजकः।

तदेतद्विवाहसंस्कारे प्रयुज्यमानैर्मन्त्रैरेव ध्वन्यते। तत्र वरो हि वदति—

मम व्रते ते हृदयं दधामि मच्चित्तमनु चित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

---

१. तदेतन्मनुनाप्युक्तम्—

द्विधा कृतात्मनो देहमर्धेन पुरुषो भवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥३२॥मन०अ०॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यत्तु स स्वयं पुरुषो विराट्।
तं मांवित्तास्य सर्वस्य सृष्टारं मुनिसत्तमाः॥मनु० अ० श्लो० ३३)

अत्र द्वयतो गताभ्यां प्राणाभ्यामुत्पादिताद्विराज उत्पन्नो मनुप्राण उक्तः, क्वचित्तु अर्द्धभूतस्य प्राणस्यैव मनुत्वमुक्तमिति तदिदमुक्तिवैचित्र्यमात्रम्। न वस्तुभेदः कार्य-कारणयोः सर्वत्रैवाभेदाध्यवसायादिति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्राणैस्ते प्राणान् संदधामि। अस्थिभिरस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा त्वचम्। [पा० गृ० काण्ड २२ कण्डिका, ५ सूत्र]

किं च—

देवदत्तां द्विजो भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः
इति स्मृत्या सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददग्नये
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमाथो इमाम्।

इति श्रुत्या च देवानां दातृत्वं विवाहे स्फुटीभवति। देवाश्चेमे प्राणविशेषा इत्यग्रे सृष्टिप्रकरणे प्रतिपाद्यम्। तेन विवाहे प्राणानां संबन्धः स्फुटं व्यज्यते। विवाहेतिकर्तव्यतायां जलस्याग्नेश्चोपयोगविशेषः प्राणानां सम्बन्धायैव वरवध्वोर्हस्तौ संनियोज्य तदुपरि जलधारादानेन तद्गतप्राणयोरैक्यं संपाद्यते, वह्निना च तद् द्रढीक्रियते इत्यलमप्रकृत-विस्तरेण। तत एवावैदिकनां लौकिको दाम्पत्यसम्बन्धः स्थूलशरीरवियोग एव परिसमाप्यते। वैदिकविवाहसंस्कारप्रयोज्यस्तु सम्बन्धः प्राणेष्वनु-स्यूतत्वादेकतरस्थूलशरीरवियोगेऽपि न नश्यति।

'सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवांतरेष्वपि।'

इति महाकविमाघोक्तिदिशा जननान्तरेप्यनुवर्तते इति भाव्यम्। एते गृह्योक्ताः संस्काराः अद्यापि षोडशसंस्कारसमाख्यया प्रचलन्ति। षोडशत्वपूर्तये व्यासस्मृत्युक्ताः केचन कर्णवेधाद्या अप्यत्र संगृह्यन्ते।

पञ्चमहायज्ञविवरणम्

एतदनन्तरं गौतमोक्ताः प्रात्यहिकाः पञ्चमहायज्ञा दोषमार्जनात्मका एव स्मृतिषु व्याख्याताः।[1]

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्। (मनु०अ०३, श्लो०६८)

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥

पञ्चसु स्थानेषु हिंसादिना यत्पापं प्रत्यहं संचीयते त्स्ये, तन्निवृत्तये पञ्चा-यज्ञाऽनुष्ठानमिति तदाशयः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

केचित्त्वेवं समाचक्षते—

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः

(भगवद्गीता अ० ३)

इति भगवद्गीतोक्तदिशा यत्प्रसादाद्यल्लब्धं तत्तस्मै समुपहरणीय-मिति कृतज्ञताप्रकाशनाय कृतघ्नतारूपं महापापं परिहर्तुं पञ्च महायज्ञा अनुष्ठीयन्ते इति। तथाहि यास्माभिः लौकिकी पारलौकिकी वा विद्या समुपार्ज्यते, सा ऋषि परम्परयैव प्राप्नोति, ऋषिप्रसादः। तं प्रतिकर्तुं सा विद्या अविस्मरणाय प्रत्यहमस्माभिरभ्यसनीया, अधिकारिभिश्चाधि-कारिभ्योऽध्यापनीयेति ब्रह्मयज्ञः। अन्नादिकं च देवपितृप्रसादाद्यदस्मा-भिरुपलभ्यते, पितृणां देवानां चान्नरसादिजनकत्वादिति तदुद्देश्येने हवनं देवयज्ञः, दर्शपूर्णमास-नित्यश्राद्ध-स्वधाकारादिकं पितृयज्ञः। यदेतदन्नादिकम स्माभिरुपयुज्यते, तदेतत्सर्वभूतोद्देश्येन देवैः - प्रकृत्या परमात्मना वोत्पादितम्। यदि नास्माभिस्तदुपायोक्ष्यत, अन्येषां भूतानां तर्हि पोषणे तदुपयुक्तमभविष्यदिति सूक्ष्मदृष्ट्याऽन्येषां भूतानां परम्परया भागोस्माभिरपहृतः, तद्दोषनिर्यातनाय सर्वेभ्यो भूतेभ्यो बलिरुपहर्तव्य इति सोऽयं भूतयज्ञः। मनुष्याणां च यो भागोपहृतः, तन्निर्यातनाय अतिथिभ्यो सुलभान्नेभ्यः प्रदेय इत्यतिथियज्ञो मनुष्ययज्ञो वा। नित्यम-समर्थं दुष्करं कर्मकुर्वद्भ्यश्चाण्डालादिभ्योऽप्यत्र दीयते, भृत्यादिभ्यश्च भोजनं गृहपतिभोजनात्प्रागेव दीयते, इति सर्वेयं महती कृतज्ञता। तथाऽ-नयापि दृष्ट्या कृतघ्नतादोषपरिहार एवोद्देश्यमिति दोषमार्जकतैव संस्कारणामेषां सिद्ध्यति।

यज्ञ—परिचयः

अनन्तरोक्ताः सप्त पाकयज्ञसंस्था स्मार्तयज्ञ - पदाभिलप्या अप्य नयैव रीत्या दोषमार्जनात्मिकाः, काश्चिदतिशयाधानरूपाश्चानुसन्धेयाः दैवं पित्र्यं चेति त्रिधा भिद्यन्ते। हविर्द्रव्येण देवाः श्राद्धकर्मभिः पितर-श्चाप्यायन्ते। तेषामध्यात्मं परिपुष्टौ सत्यां स्थूलसूक्ष्मशरीरयोः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

परिपुष्टिर्भवति, तत्रस्था दोषाश्च निवर्तन्ते इत्युभयविधत्वमेषामनुसंधेयम्। तेषामकरणे च प्रत्यवाय इति उत्पत्स्यमानदोषनिवारकत्वेन दोषमार्जकतापि व्याख्यायते। तदिदं सर्वमग्रेसृष्टिनिरूपणे, देवपित्रादिस्वरूनिर्वचने विस्तरेण व्याख्यातव्यम्। अथ सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः, सप्त सोमसंस्थाश्च श्रौत्यो दैवाः संस्काराः, ते चातिशयाधानरूपा हीनाङ्गपूर्तिरूपाश्च दृष्टिभेदेन व्याख्यातुं शक्यन्ते। यज्ञैरनुष्ठीयमानैरधिकारिषु दैव आत्माऽभिनव उत्पाद्यते, माक्सिद्धो दुर्बलः पोष्यते वा, यस्य देवैः स्वाभाविकः सम्वन्धः स एवैताननुष्ठातृन् देवलोकं प्रापयति। तत्साहचर्येणैव भूतात्मापि देवलोकं प्रयाति ये यज्ञप्रक्रियां न जानन्ति, न तेषां दैव आत्मा समुत्पद्यते। सर्वत्रापि दैवात्मा अस्त्येवेतिमते तु स दुर्बलत्वात्कार्यकरणासमर्थो न परिपोषमासादयति इति न ते देवलोकं गन्तुं प्रभवन्ति। तत्राभिनवात्मोत्पादनपरो हीनाङ्गपूर्तिरूपो यज्ञाख्यः संस्कारः, पोषणपरस्तु अतिशयाधानरूप इति। अयमेव दैव आत्मा अपूर्वपदेन पूर्वमीमांसकैरभिलप्यत इति शब्दमात्रभेदे न विरोधः शङ्कनीयः। त एते चत्वारिंशत् संस्कारास्त्रैविध्येनाख्याताः। एषु ये दोषमार्जनात्मकास्ते नित्याः। तेषामकरणे दोषवशादात्मा पतितः स्यात्, अनुष्ठाने तु दोषापनयातिरिक्तं न किमपि विशिष्य फलम्। नित्यत्वाच्च ते सर्वेषामधिकारिणामवश्यानुष्ठेयाः। अतिशयाधानरूपाः, हीनाङ्गपूर्तिरूपाश्च यादृच्छिकाः, तेषामकरणे वर्तमानस्वरूपे न काऽपि हानिः। करणे तु महानभ्युदय इत्यभ्युदयाकाङ्क्षिभिरनुष्ठेयाः। फलमनभिसन्धायात्मशुद्ध्यर्थं लोकसंग्रहार्थं वा मुमुक्षुभिरनुष्ठेयाः

दयादिधर्मसमर्थनम्

इतोऽनन्तरमष्टावात्मगुणा ये गौतमेन संस्कारेष्वेव परिगणिताः, त आत्मनः स्वरूपरक्षकाः पातित्यनिवारका इति सर्वैरनुष्ठेया एव। इमे सामान्यधर्मेषु प्रायेण परिगण्यन्तेऽन्यत्र धर्मशास्त्रेषु। धर्मशब्दार्थश्च धरतीति धर्मः इति व्युत्पत्त्या आत्मस्वरूपसंरक्षणमेव। योह्यात्मनः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

स्वरूपसंरक्षकः, स्वरूपे प्रतिष्ठापकः स उच्यते धर्मः । तद्वैपरीत्येन स्वरूपप्रच्युतिहेतुरुच्यते पातकमिति । एतदेव—

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा ।

(श्रुतिः)

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।

(महाभारते)

इति श्रुतिस्मृतिभ्यां व्यक्तीकृतम् । अभ्युन्नतिरूपस्यार्थस्य, इन्द्रियसुखोपयोगरूपस्य कामस्य वऽपेक्षया स्वरूपरक्षा सर्वेषामेव दृष्टौ भवति प्रधानमिति तत एव धर्मस्य त्रिवर्गे प्राधान्यमपि मन्यन्ते आर्य-जातीयाः । इदमेव स्वरूपरक्षकत्वं धर्मस्य मुख्यं स्वरूपलक्षणं नाम । इममेव व्यापकमर्थमुपादाय जडचेतनसाधारण्येन धर्म शब्दः प्रवर्तते । अग्नेर्धर्म औष्ण्यम्, जलस्य धर्म आप्यायकत्वम्, पाषाणस्य धर्मः काठिन्यम्, मनुष्यस्य धर्मो दया, ब्राह्मणस्य धर्मो याजनमित्यादि ।

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिःस धर्मः

(वैशे० सू०)

चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः

(मीमां० सू०)

इत्यादीनि तु मनुष्यधर्ममभिलक्ष्यैव प्रवृत्तानि तटस्थलक्षणानि । तस्य वस्तुधर्मस्यापगमे च तद्वस्तुस्वरूपमेव नश्यति इति स्फुटोऽनुभवोऽग्नि जलादिषु । भवतु नाम, अनयैव रीत्या आत्मस्वरूपं यैर्धृयते अनावृतं तिष्ठति, नत्वावरणेन कदर्थीक्रियते · त एते आत्मधर्मा आत्मगुणा वा उच्यन्ते । अत्र प्रकरणे आत्मशब्दो व्यावहारिकः विशिष्टात्मबोधक इति प्रागेवोक्तं न विस्मर्तव्यम् । मुख्यस्यात्मनो हि स्वरूपमेकमद्वितीयम् विभुत्वादि च । तदेव धारीकृत्य व्यावहारिकोऽप्ययमात्मा स्थितिं लभते । तच्चात्मस्वरूपं दयादिभिरेभिर्गौतमोक्तैर्गुणैरनावृतं तिष्ठतीति स्पष्टं भासते । निरुपाधिपरदुःखप्रहाणेच्छा हि दया व्याख्यायते । यथा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रातिस्विकं तत्तच्छरीरावच्छेदेनानुभूयमानं दुःखमापामरं सर्वेषां प्रतिकूलं भवति तथैव यद्यन्यशरीरावच्छेदेन ज्ञायमानमपि दुःख प्रतिकूलं मन्येत, तदैव दयावृत्तिरियमुदेति । तयानया आत्मनो विभुत्वमेकात्मवादश्चेत्यादि स्पष्टमभिव्यज्यते । यदा हि एक एवात्मा सर्वत्र व्याप्त इत्यस्माभिर्ज्ञातम् तदा एकशरीरावच्छेदेनैव वयं दुःख प्रतिकूलं मन्येमहि मान्यशरीरावच्छेदेनेति कथं स्यात् ? सर्वत्रैकात्मसद्भावमवेक्षमाणानां सर्वत्रैव दुःखप्रहाणेच्छा जागृयादेवेति स्वभावत उदेति दयावृत्तिः । एवं आत्मस्वरूपमभिमन्यमानानां शिविदधीचिप्रभृतीनां कपोतरक्षार्थं स्वशरीरमांसदानम् सर्वस्य जगतो भद्रमनुध्याय च स्वशरीरास्थिसमर्पणमित्यादि सर्वमुपपद्यते । येषां तु पाश्चात्यप्रभृतीनां नास्त्येकात्मवादः, तेष्वेवं विधा आदर्शा दुर्लभा एव । न च ते दयादिवृत्तीनां स्फुटामुपपत्तिं समर्थयितुं भवन्ति प्रगल्भाः । सेयं प्राणिनां स्वाभाविकी वृत्तिः,यत्पररक्षार्थं क्लेशस्याङ्गीकारः, स्वापत्यरक्षायामियं वृत्तिर्व्याघ्रादिष्वप्यनुभूयते इत्येव ते वदन्ति, कुतास्त्वियं स्वाभाविकीवृत्तिरुदितेति न मूलकारणमन्वेष्टुं भवन्ति समर्थाः । ऐकात्म्यवादिनां भारतीयानामेव दर्शने निहितमेवंविधानां गुणानां मूलमिति । अन्येतु तदुपदेशेनैव गुणानिमान् रक्षितवन्त इति सुसूक्ष्मं विचारयद्भिरकामैरप्यभ्युपगन्तव्यं स्यात् । आस्ताम्, एतयैव वृत्या अहिंसावृत्तिरपि व्याख्याता । यस्य हि निरुपाधिपरदुःखप्रहाणेच्छा जायते स कथं पीडयितुं स्वयं प्रवर्तेत ? गौतमसूत्रे मङ्गलम् पदेन अहिंसा बोधिता तस्या रहस्यं दयोक्तरीत्यैव ग्राह्यम्, आत्मानुकूलताऽपि च तयैव रीत्या । अथ क्षमा (क्षान्तिः) पर्यालोच्या । क्रोधो हि नाम परमो दोषः । स आत्मनः स्वरूपस्यैव विक्षोभजनकः । शान्तमात्मस्वरूपम् । विक्षोभेन तत्स्वरूपमेव च्यवते तत एव सर्वेऽपि शास्त्रकाराः क्रोधं सर्वाधिक्येन निन्दन्ति ।

> अपकारिणि चेत् क्रोधः क्रोधः क्रोधे कथं न ते ।
> धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्यादीनि वचनानि पर्यालोच्यानि । इह हि क्रोधस्य सर्वाधिकापकार-कत्वमुक्तम् आयुर्वेदस्य परमाचार्यैः श्रीचरकप्रभृतिभिश्च —

"न वेगान् धारयेद् धीमान्"

इत्युपदिशद्भिः क्रोधवेगस्य वारणमेव श्रेयस्करमुक्तम् । नीतौ धर्मे सर्वत्रैव क्रोधः परिपन्थी । तस्याभावः क्षमा आत्मस्वरूप रक्षिका इत्यत्र न स्यात्कस्यापि विवादः । तथाविध एवायमसूयाख्योऽपि दोषः । परस्य-गुणेष्वपि दोषदृष्टिर्नामियमत्यर्थमात्मानं मलिनयति । दोषभावनैव पातित्यकरी, किं पुनर्गुणेष्वपि दोष भावना नाम । तस्मात्तदभावोऽनसूया आत्मस्वरूपपरिरक्षिका । सत्यमस्तेयं च समान्यधर्मेषु सर्वत्र परिगण्येते । तदुभयमपि गौतमेन अनुसूयायां शौचे च परिगृहीतम् । कस्यापि गुणेषु दोषदृष्टिर्नकर्तव्येत्युक्तौ यथार्थदृष्टिरेव फलति । तेनांशतः सत्यं संगृह्यत एव । शौचं चात्मनः अस्तेयेन सत्येनैव च संवदते । "योऽर्थेशुचिः स हि शुचिः" "मनः सत्येन शुद्ध्यति", इत्यादिभिर्वचनजातैः स्पष्टमेवेदं प्रतीयते । स्तेयेन - परद्रव्येच्छया गृद्धिर्नामात्ममालिन्यं दोष उत्पद्यते । तदभावोऽस्तेयम्, आत्मरक्षासंपादको मन्तव्य एव । ननु अद्वैतमेकमात्मतत्वं प्राग्व्याख्यातम्, अस्तेये तु स्वपर-बुद्धिरुदेतीति स्वरूपव्याघातायैवाऽस्तेयं सम्पद्यतेति चेन्नैतत् साधु दृष्टम् । अद्वैत आत्मतत्वे ज्ञाते गृद्धिसामान्य-स्यैवाभावो जायेत, यत्र सर्वमात्मैवाभूत् - तत्र कः किमिच्छेत् । तदा का नाम कथा परद्रव्येच्छायाः । तस्मादस्तेयं न कदाप्यात्मस्वरूपव्याघातकम् । यदि तादृश एकात्मभावो न दृढतां गतः, गृद्धिश्च न सर्वात्मना निवृत्ता, तदापि परकीयत्वेन व्यवह्रियमाणे तु न कदापि गृद्धिः कर्तव्येत्यगृद्धेरभ्यास एव असत्ये च मनोवाक्कर्मणां विसूत्रतया त्रयस्य सामञ्जस्यं नश्यति, सामञ्जस्यञ्चेदमात्मरूपप्रकाशकमिति सत्यपदाभिलप्यस्य तस्यावश्यकता न कस्यापि तिरोहिता । अनायास षदेन शरीरेन्द्रियादीनामुच्छृङ्खला-प्रवृत्तिर्वार्यते । मङ्गलपदेन स्वरूपपरस्य वा दुःखभारनिपतनं निपातनं वा वार्यते । आनन्द एवात्मस्वरूपम् । तस्मादिदमात्मस्वरूपं संरक्ष्यम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अकार्पण्यमदीनता, दानं वा, अस्पृहा च दम इति व्याख्यातप्रायमिदम् । त एतेष्टाचत्वरिंशत्संस्कारा धर्मशास्त्रेषु विवृताः, पुराणेष्वपि विस्तर-एषां बहुतरं प्राप्यते ।

षड्विधशुद्धि—रहस्यम्

अथ "कल्पशुद्धिभिः" इत्यत्र शुद्धिपदेन गृहीतं धर्मशास्त्रस्य द्वितीय-शुद्धिप्रकरणम् । सा च शुद्धिः षोढा व्याख्यायते । मलशुद्धिः स्पर्शशुद्धिः द्रव्यशुद्धिः अपशुद्धिः, एनः शुद्धिः, मनः शुद्धिश्चेति । आत्मनः प्रतिकूलं यदागन्तुकमापतति तद्दोषशब्देन अशुद्धिशब्देन च व्यवह्रियते । तदपनय एव दोषमार्जन शब्देनशुद्धिशब्देन चाख्यायते । तत्र स्वरूपसंसक्ताः, स्वरूपे संसर्गमाप्तुमुपक्रान्ताः, ये दोषाः, तेषामपनयो दोषमार्जनसंस्काररूपेण प्राग् व्याख्यातः । ये तु आगन्तुका दोषाः स्वरूपे अप्रविष्टा अपि संसर्गमात्रेण परम्परया वा स्वरूपं दूषयितुमुपक्राम्यन्ति, अनपनीतानां कालक्रमेण स्वरूपेऽनुप्रवेशश्च येषां सम्भाव्यते, तदपनयोऽत्र शुद्धिप्रकरणेऽधिक्रियते । यद्यपि सांख्यवेदान्तयोर्यादृशमात्मस्वरूपं विवृतम्, तत्र न कापि दोष-संसर्गसंभावना, तथापि व्यवहारिक आत्मा कर्त्ता भोक्ता चात्रात्मपदेन विवक्षितो द्रष्टव्य इति प्रकरणान्तरे स्फुटीकरिष्यते । सोऽयं व्यावहारिक आत्मा सत्वप्रधान इति सत्वगुणविरोधिनस्तम उद्वेजयन्तो भावा अशुद्धि-पदेन सर्वत्र निर्दिश्यन्ते । ते च येन येन मार्गेणात्मना संबध्यात्मानं दूषयितुं सन्नह्यन्ति, तेन तेन तेषामपनयः स्मृतिषु व्याख्यातः, पुराणेषु च संगृहीतः । तत्र प्रथमं मलशुद्धिः सर्वत्र धर्मग्रन्थेषु सपरिकरं व्याख्यायते । आत्मपरिगृहीते शरीरे भोजनादिना ये बाह्याः पदार्थास्तद्रक्षार्थमनु-प्रवेश्यन्ते, तानपि वैश्वानरोग्निः प्राणिनां जठरे स्थितो विभजते । तत्र यावान् प्रतिकूलोऽनुपयुक्तो वांशस्तं स वहिर्विक्षिपति, स एवांशो नासाक्षिकर्णदन्तजिह्वामलादिरूपेण स्वेदादिरूपेण मूत्रपुरीषादिरूपेण शरीरान्निष्क्राम्यति । शरीराग्निना परित्यक्तत्वादेव तानि मलान्यशुद्धानि भवन्ति । अतिपावनो हि शरीराग्निः, स सर्वं शोधयति, तत्परित्यक्तास्तु

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भावाः शोधनविरहादशुद्धिमेवाधिकाधिकामापद्यन्ते। तत एव शरीराग्नि परित्यक्ताः केशनखा अप्यशुद्धा एव गण्यन्ते, यावद्धिशरीरागृहीतैः शरीरावयवैस्तेषां सम्बन्धो भवति तावत्तेषु कथंचिच्छुध्यभिमानः। अवयवेभ्यः पृथग्भूतास्तु ते सर्वथा अस्पृश्या एवाभिमन्यन्ते। मलानि तु-शरीरावयवानामपि प्रतिकूलानि इति सर्वथा प्रतिकूलत्वादवश्यं परित्याज्यानि भवन्ति। तेषां च यावद्भिरवयवैः सम्बन्धः कथंचिज्जा-तस्ततोऽपि स समूलकाषं कषणीय इतीयमेव मलशुद्धिः। सा सामान्येन अद्भिः शुद्ध्यति इति जलप्रक्षालनमात्रसंपाद्या, यानि तु मलानि चिक्कणानि पूतिगन्धीनि च, शरीरावयवेषु दुष्टं गन्ध दुष्टां स्निग्धतां-वाऽनुषञ्जन्ति, तेषामपनयनाय मृदादिरप्यपेक्ष्यते। तदुक्तं भगवता याज्ञवल्क्येन—

गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः (याज्ञवल्क्यस्मृतौ, ब्रह्मचारि-प्रकरणे) मृदेव हि तादृशं गन्धलेपसम्बन्धं समूलमुन्मूलयति, आधुनिकैर्व्यवह्रियमाणा वस्त्रादिमलापहरणबटिका (सावुन) तु गन्धादिकमभिभवति केवलम्, न तु समूलकाषं कषति। ततो मृदेव तत्र वैज्ञानिकपरीक्षयापि समुपयुक्ततरा। सेयं शरीरान्निसृतानां मलानां शुद्धिः प्रथमा। एतां यथावदननुतिष्ठतः सर्वेष्वन्येषु धर्मकार्येष्वनधिकार आख्यातः स्मृतिषु।

अथ संक्रान्तमलानां तमोबहुलानां मांसास्थ्यादीनां जड़द्रव्याणां तादृशां प्राणिनां च स्पर्शे सति दोषसंक्रमणमनुमाय स्नानादिना शुद्धिः संपाद्यते, सा स्पर्शशुद्धिः। इयमपि धर्मग्रन्थेषु पुराणेष्वपि च बहुलं प्रपञ्चिता। वैज्ञानिकी चेयम्। प्राणिनां परस्परस्पर्शे एकस्य शारीरिकी विद्युदपरत्र संक्राम्यतीति आधुनिका वैज्ञानिका अप्यभिमन्वते, तत एव संक्रामकरोगग्रस्तानां स्पर्शादिपरिहारं ते सडिण्डिममुद्घोषयन्ति। स्मृतिषु हि यद्विधः संसर्गः स्वापेक्षयावरकक्ष्याणां परिहरणीयत्वेनोक्त एकशय्यासनं पाङ्क्तसमर्पणद्पक्वयन्नमिश्रणम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

नवधा सङ्करः प्रोक्तो न कर्तव्योऽधमैः सह ।
याजनाध्यापने योनिस्तथा च सहभोजनम् ॥

एतं सर्वविधमेव संसर्गं वैज्ञानिकंमन्या विदेशीयाश्चिकित्सका अपि रोगिणां परिहार्यं मन्यन्ते । तस्मात्सति स्पर्शादौ संसर्गे दोषसंक्रमणन्तु विज्ञानसिद्धम् । इयमपरा कथा यद् दृष्टवादिन आधुनिकाः केवलं रोगोत्पदकानां कीटाणूनां विकृतविद्युदादेरेव वा संक्रमणं मन्यन्ते, सूक्ष्मतरविज्ञानपारङ्गता आर्यास्तु तमोगुणादीनामपि संक्रमणं विजज्ञुः । तेन रोगिणामिव तमोबहुलानामपि संस्पर्शादिकं ते परिहृतवन्तः, सति च संस्पर्शे तत्प्रभावनिवर्तनाय स्नानादिशुद्धिरिति । ये ये शास्त्रेष्वस्पृश्यत्वेनाभिमताः, ते तमोबहुलाः, कश्च तेषां जात्यैव दोष इत्येतत्सर्वमप्रकृतमिति विस्तरभियाऽत्र समुपेक्ष्यते, धर्मनिबन्धेषु सर्वमेतद्विस्तरेण स्पष्टीकृतम् । सेयं द्वितीया स्पर्शशुद्धिः ।

एवमात्मनः शरीरशुद्धौ प्रयतमानानामपि उपयुज्यमानानि अन्नपानवस्त्रपात्रादीनि यद्यशुद्धानि स्युः, तर्हि तदुपयोगादशुद्धिसंक्रमणं पुनर्दुर्निवारमिति द्रव्यशुद्धिप्रकरणं तृतीयं धर्मशास्त्रेषु पुराणादिषु च विव्रियते । तत्र वस्त्रपात्रादीनां यावद्दोषोपसंक्रमः, तदपनयनाय तावत्येवशुद्धिस्तत्र निरूपिता, येषु तु मृत्पात्रादिषु नास्ति शोधनसंभवस्तेषां परित्याग उपदिष्टः । भोज्यस्याऽपि तमोबहुलस्य मद्यमांसलशुनपलाण्डुकलञ्जप्रभृतेः परिवर्जनमुपदिष्टम्, तमोवहुलानां प्राणिनां वचनस्पर्शादिकं च तद्दोषसंक्रान्तिभयेन परिवर्जितम् । यद् द्रव्यं यत्स्वामिकं भवति, तस्य स्वामिन आत्मना परिगृहीतं तदपि तस्य गुणदोषैर्लिप्यते । कारणम्, सूक्ष्मम् स्थूलमिति शरीरत्रयम्, प्रजा, वित्तं वेति पञ्चकला अध्यात्मं क्षरपुरुषस्य श्रुतिष्वाख्याताः, तेन तत्प्रसरः सिद्ध्यति । तथा च दुर्वृत्तस्य दुराचारस्य तमोबहुलस्यान्नमपि दूषितं भवतीति तादृशस्वामिकमन्नमपि निषिद्धेषु परिगणितम् । सेयं भक्ष्याभक्ष्यविवेक-वस्त्र-पात्रादिशोधनरूपा सर्वाऽपि द्रव्यशुद्धिः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चतुर्थी अघशुद्धिः आशौचप्रकरणे सूतकप्रकारणे वाऽख्यायते। इयमार्यजातिव्यतिरिक्तेषु न क्वापि प्रचलिता, तादृशविज्ञानविरहात्। आर्यास्तु श्रुतिसाहाय्येन विज्ञानपारंगता सूक्ष्मेक्षिकया संक्रम्यन्तमिममघमपि दृष्टवन्तः। तच्छुद्धिमपि चोपदिदिशुः। कुले कस्मिंश्चिन्मृते जाते वा यदाशौचम्, सूतकं वा तत्कुलजनेष्वभ्यापतति, तदेवाघमित्युच्यतेऽत्र। इयमशुद्धिः कथमापतति - कश्च तच्छोधनप्रकार इति श्रीगुरुचरणानां विद्यावाचस्पतिश्रीमधुसूदनशर्ममैथिलानामाशौच - पञ्जिकाख्ये धर्मनिबन्धे सुस्पष्टं विवृतम्।

"आशौचरहस्यम्"

तस्यायं संक्षेपः—मरणाशौचे तावत् मृतं शरीरं शरीराग्निना (सत्वप्रधानान्तःकरणेन) परित्यत्यागानन्तर। मपवित्रतमं भवति, कञ्चित्कालमपि स्थितां विकृततां पूतिगन्धितामुच्छूनतां च यदापद्यते, तत्तस्या अपवित्रतायाः स्फुटं प्रत्यक्षम्। तस्मिन्शरीरे समुत्पन्नेयमपवित्रता संबन्धसूत्रादन्येष्वप्युपसंक्राम्यति। संबन्धसूत्रं चेदं चतुर्विधम् - योनिसंबन्धः विद्यासंबन्धः, यज्ञसंबन्धः, स्पर्शादिसंसर्गजनितः संबन्धश्च। चतुर्विधं सूत्रमिदं द्वारीकृत्याशौचं धर्मग्रन्थेषु व्यवस्थाप्यते। तत्र योनिसंबन्धो मुख्यः। तत्रापि च स्वस्मात् सप्तमपुरुषपर्यन्तं येषां संबन्धसूत्रम् ते सपिण्डाः अधिकाऽशौचभाजः। अन्ये तु दशमं पुरुषं यावत् संबद्धाः सकुल्याः, चतुर्दशं पुरुषं यावत् संबद्धाः सोदकाः, एकविंशं पुरुषं यावत्संबद्धा जन्मनामवेदने - संनिहिताः सगोत्रा इत्येते क्रमेण अल्पाल्पाशुचित्वभाज उक्ताः।

सपिण्डशब्दे पिण्डशब्दोऽयं शरीरावयवानामेव बोधक इति मिताक्षराकृद्भिर्व्याख्यातम्। एकशरीरावयवेषु साक्षात्परंपरया वा यच्छरीरावयवानामन्वयो भवति ते परस्परं सपिण्डा उच्यन्ते। पितुर्मातुश्च शुक्राच्छोणिताच्च पुत्रशरीरमुत्पद्यते इति सर्वजनवेद्येऽस्मिन् विषये

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

न कस्यापि विवादः स्यात्। श्रुतिरप्युपदिशति - "षाट्कौशिकं शरीरम्," त्रीणि पितृतः, त्रीणि मातृतः, अस्थिस्नायुमज्जाः पितृतः, त्वङ्मांसरुधिराणि मातृतः" इत्यादि च। प्रत्यक्षम् - यद्यावन्तोऽवयवाः पितृमातृशरीरादागच्छन्ति, तावद्भिरेव शरीरं न ध्रियते अपित्वन्नपानादिभिः परिपोषमासादयन्तस्तेऽवयवा वृद्धिमाप्नुवन्ति, आधारभूताः पुनः पितृमातृपरिप्राप्ता एवावयवाः।

ननु च भोः "प्रतिक्षणपरिणामिनः सर्वेऽपि भावा ऋते चितिशक्तेः" इति दर्शनानां सिद्धान्तः, आधुनिका वैज्ञानिका अपि च परीक्ष्य संसाधयन्ति यत्परिगणितकालानन्तरं शरीरस्य कोऽप्यवयवः प्राक्तनो न तिष्ठति। अन्नं रसरूपेण, रसोऽसृग्रूपेण, असृङ्मांसरूपेण, मांसं मेदोरूपेण, मेदोऽस्थिरूपेण, अस्थिमज्जारूपेण, मज्जा च शुक्ररूपेण प्रतिक्षणं परिणमति। शुक्रं तु ऊर्ध्वस्रोतसामोजोरूपेण, तिर्यक्स्रोतसां परिश्रमेण बलापचयरूपेण, अधःस्रोतसां तु सन्तानोत्पादनक्रमेण निष्क्राम्यति। ऊर्ध्वस्रोतसां मनोऽपि बहिर्निर्गच्छच्चन्द्रमण्डलादिषु यातीति श्रौता मन्यन्ते। तैश्च कस्तावत्पितृमातृभ्यां प्राप्तानामवयवानामाधारतयावस्थानप्रसङ्ग इति चेन्न, तेऽवयवास्तथैव तिष्ठन्तीति सत्यम्, परं तत् स्थान आगन्तुका अन्येऽवयवास्संस्कारभाजो भवन्तीति नापलपितुं शक्यते। अतएव दुष्टरुधिरमांसादिस्थाने समुत्पद्यमानं रुधिरमांसादिकमपि तद्दोषभागिति कुष्ठिप्रभृतिषु स्पष्टमनुमीयते। नास्माकं दर्शनेषु निरन्वयो विनाशः कस्यापि वस्तुनोऽभ्युपगम्यते, अपितु परिणामः। परिणामे च संस्कारा अनुवर्तन्त एव। निरन्वयविनाशवादिनो बौद्धा अपि वासनासंक्रमं मन्यन्ते, किं पुनः परिणामवादिनः। तस्मान्मातृपितृशोणितशुक्रायाता अवयवा, अद्यापि मातृपितृजा एव शक्यन्ते व्यपदेष्टुम्।

यथाह्येकः समत्यको भूषापदवाच्यः (सांचां इति लोकभाषाव्याख्यातः) पूर्वं निर्मीयते, तास्ताः प्रतिकृतयश्च तत्र निषिक्तास्तदाकृतिभाजो भवन्ति, तथा मातापितृजा अवयवा मूषा बोद्धव्याः, निषिक्ता

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

आगन्तुका अवयवा अपि तद्धर्मभाजो भवन्तीति । तदित्थं पुत्रशरीरे द्विविधा धातवः सिद्धाः - मातापितृक्रमागताः, अन्नपानादिना स्वयमुपार्जिताश्च । अथायं स्वसंतत्यर्थं तत्तदवयवसूक्ष्मांशघटितशुक्रं निर्वपन् मातृपितृक्रमायातानंशानपि निर्वपति, स्वोपार्जितानंशांश्चापि । ततश्च पौत्रशरीरेऽपि पितामहाङ्गानामन्वय उपपद्यते, सोऽपि प्रपौत्रशरीरे, सोऽपि च तत्पुत्रशरीरे इति सप्तमपुरुषपर्यन्तमयं मूलपुरुषशरीरावयवक्रमः परिव्याप्नोति । कन्यायां तु पितृशरीरावयवा अल्पा इति पञ्चमपुरुषपर्यंन्तमेतद् व्याप्तिः, अनन्तरं तु न तेऽवयवाः पिण्डरूपेण (घनरूपेण) गच्छन्ति । क्रमेणाल्पीभावादिति तदुत्तरमनुशयमात्रेण सकुल्यत्वादिव्यवहारः । यदैकस्य पुरुषस्य द्वौ पुत्रौ, तदा उभयत्राऽपि तदवयवाः संक्रान्ताः, तयोरुभयोरप्येकस्मिन् पितृशरीरेऽवयवान्वयः, एवं तयोरनेकेषां पुत्राणां पितृद्वारा तस्य मूलपुरुषस्य शरीरावयवान्वय इतीदमेव सपिण्डव्यवहारप्रयोजनम्, सा चावयवानां पिण्डभूतानां गणना गुरुचरणैर्निर्दिष्टा "चेतनाधातुषष्ठाः पञ्चभूतविकाराः, शुक्रम्, प्रकारान्तरेण चेतनाधिष्ठितं तेजोऽबन्नमयं शुक्रम् । तत्र यावती पृथिवी, यावानग्निस्तदन्नम् । (अग्निमयः पृथिवीपिण्ड इती श्रौतः सिद्धान्तः, तथैवाग्रेऽपि) यावज्जलं यावान् वायुस्ता आपः । (अप्पदेनोभयं गृह्यत इति) यावानाकाशस्तत्तेजः स सोमः । सोऽयं सोमपिण्डश्चतुरशीति (८४) कलो भाव्यः, तत्र संतानोत्पादनकाले अष्टाविंशतिःकलावापस्य शरीरे तिष्ठन्ति, निश्शेनिवापासंभवात्, षट्पञ्चाशत्तु कलानिरूप्यन्ते, ताभिः पुत्रशरीरं संपद्यते, सोऽयं पुत्रोऽपि क्रमेणान्नपानादिनाष्टाविंशतिः कलाः स्वयमुपार्जिताः संकलय्य चतुरशीतिकलः संपद्यते, सोऽयमपि स्वसन्तानार्थं षट्पञ्चाशन्मिताः कलाः निर्वपति, तत्र स्वोपार्जिताभ्योऽष्टाविंशतिकलाभ्य एकविंशतिमिताः कलाः पितुर्लब्ध्या पञ्चत्रिंशन्मिताः कला निरुप्ता भवन्ति । तदित्थं पौत्रशरीरे एकविंशतिः पितुः कलाः, पञ्चत्रिंशच्च पूर्वपुरुषागताः स्थिताः, अष्टाविंशतिश्च स्वयमुपार्जिता इति चतुरशीतिकल; सोऽपि संपन्नः । अथ तेन स्वसन्तानार्थं निरुप्तासु

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

षट्पञ्चाशन्मितासु कलासु स्वीया एकविंशतिः, पितुर्लब्धाभ्य एकविंशतिकलाभ्यः पञ्चदश, पितामहाल्लब्धाभ्यः पञ्चत्रिंशन्मिताभ्यश्च विंशतिरिति चतुर्थे पुरुषे प्रपौत्रे कलास्थितिः। एवमेव पञ्चमे पितुरेकविंशतिः, पितामहस्य एकविंशतिः, पञ्चदश प्रपितामहस्य, पञ्चदशभ्यो दश, वृद्धप्रपितामहाल्लब्धाभ्यश्च विंशतेर्दशेति षट्पञ्चाशत्कलास्थितिः। षष्ठे च सन्ताने पितुरेकविंशतिः, पितामहस्य चैकविंशतिमध्यात्पञ्चदश, प्रपितामहस्य पञ्चदशमध्याद्दश, वृद्धप्रपितामहस्य दशभ्यः षट्, अति वृद्धप्रपितामहाल्लब्धाभ्यो दशभ्यश्चतस्र इति कलास्थितिः। सप्तमे तु पितुरेकविंशतिः, पितामहस्य पञ्चदश, प्रपितामहस्य दश, वृद्धप्रपितामहस्य षट्, अतिवृद्धप्रपितामहस्य तिस्रः, परमातिवृद्धप्रपितामहस्य मूलपुरुषस्य त्वेकेति षट्पञ्चाशन्मिताः। ततः परमष्टमे मूलपुरुषस्यैकस्याः कलाया निर्वापो न भवत्येवेति साप्तपौरुषसापिण्ड्यं व्याख्यायते। एवं च प्रतिपुरुषं स्थितासु चतुरशीतिकलासु स्वार्जिताः २८, पितुर्लब्धाः २१, पितामहाल्लब्धाः १५, प्रपितामहाल्लब्धाः १०, वृद्धप्रपितामहाल्लब्धाः ६, अतिवृद्धप्रपितामहाल्लब्धाः ३, परमातिवृद्धप्रपितामहाल्लब्धाः १, इति सप्तकोशात्मकः पिण्डो भवति। तदेतदेव संबन्धसूत्रम्। एतदेव संबन्धसूत्रं विवाहेऽपि त्याज्यं भवति, असपिण्डैव कन्या विवाह्यत्वेनानुमन्यत इति। श्राद्धे सपिण्डीकरणस्याऽपीदमेव रहस्यम्, दशकला यावत्तिष्ठन्ति तावत्सपिण्ड उच्यते, इति प्रपितामहपर्यन्तं पिण्डभाजः, ततः पिण्डो विच्छिद्यते, ततः परं त्रयस्तु लेपभाजः ततोऽष्टमस्य न पितृलोके ध्रियते, सप्तमात्पुरुषाद्यदा कलां लब्ध्वा परिपूर्णस्तदा पृथिव्यां तस्य न कोऽपि संबन्ध इति परिपूर्णः स पृथिव्या मुक्तः, इत्युच्यते तदेतदुक्तम्—

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागितः।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अप्रकृतत्वादतिसंक्षेपेण तदिदं रहस्यं निर्दशितम्, विस्तरं जिज्ञासमानैस्तु आशौचपञ्चिकैव द्रष्टव्येति। तेनानेन संबन्धसूत्रेण यत्र यत्र मृतशरीरावयवान्वयस्तत्र सर्वत्राशौचमुपसंक्राम्यति। मृतस्य पुत्रादिषु तदवयवाः संक्रान्ताः, पित्रादिभ्यश्च तस्मिन् शरीरेऽवयवाऽगता इत्युभयत्र संबन्धसूत्रानुवर्तनादाशौचमनुवर्तते, पितृव्यादीनां तत्पुत्राणां चापि यस्मिन् मूलपुरुषशरीरेऽवयवानामन्वयः, तस्य मूलपुरुषस्यावयवानां मृतशरीरेऽप्यन्वय इति तत्राप्यनुवर्तते परम्परया संबन्धसूत्रम्। एवं मृतस्य भार्या विवाहसंस्कारेण तेनैक्यं गता पुत्रशरीरे तेन सह शरीरावयवान्वययोगिनी भ्रातृ-पितृव्य-तत्पुत्रादिभार्याश्चाऽपि तैरैक्यं प्राप्ताः, तैः सह स्व स्वपुत्रादिशरीरेष्ववयवयोगिन्यश्चेति तत्र सर्वत्र संबन्धसूत्रानुवृत्तिर्भाव्येति मिताक्षरादिषु स्पष्टम्। सप्तमपुरुषादनन्तरमपि कथञ्चिदनुशयमात्रानुवृत्तिरिति तत्रात्यल्पमाशौचमनुवर्तते। एवं विद्यासंबन्धे यज्ञसंबन्धे चापि आत्मनां सुदृढः संबन्धः संपाद्यत इति तत्राप्याशौचानुवृत्तिः, परं न सपिण्डवत् किन्त्वल्पेति।

अथ जननाशौचं विचार्यते, तत्र हि शुक्रशोणितसंबन्धादुत्पन्नो गर्भः स्त्रियाः शारीरेणाग्निना संबद्ध एव तिष्ठति, तत्र च क्रमेण चैतन्य। संबन्धे मातुः पुत्रस्य च चैतन्यमाप्रसवात् सुसंबद्धमेव तिष्ठति। मातुराहारपानादिनैव पोष्यमाणं पुत्रशरीरम्, तद्गतं सत्वम्, उभयोः शारीराग्निश्च सुसंबद्धान्येव भवन्ति। प्रसवकाले तु चैतन्यादीनां परस्परं संबन्धो विच्छिद्यते, नाडीच्छेदाच्च शिशुर्मातुः शरीराग्निर्विच्छिन्नो भवति माताऽपि च तच्छारीराग्नेः पृथक् भवति, अस्मात्पार्थक्यादेव बालशरीरं तन्मातुः शरीरं चापवित्रं भवति, तद्गताऽशुद्धिश्च संबन्धसूत्रेण सपिण्डेषु संक्राम्यति। परमियमशुद्धिर्मातृशरीर एव बहुला, तया सा स्पर्शेऽप्यशुचिर्भवति, पित्रादिसपिण्डेषु तत्संक्रान्तिर्नतादृशीति तेषां कर्मानधिकारमात्रं जायते, न तु स्पर्शदोषोऽपीति। गर्भदशायामेव बालस्य मरणे गर्भपाते गर्भस्रावे वा प्राणनिष्क्रमणाद्बालशरीरेऽपि विशेषेण - अपवित्रता भवति,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सा च मृताशौचवत् संदन्धसूत्रेण संक्राम्यति। सेयं सर्वाप्यपवित्रता कालेन, स्नानादिना, अपवित्रद्रव्यत्यागादिना चापनीयते। मानवशरीरस्थः शरीराग्निः क्रमेण सर्वामपवित्रतामपनेतुं जागर्तीत्येव कालेनाशौचापगमे हेतुः। नखाः केशाश्च शारीराग्निना परित्यक्ताः, तेषां शोधनं न संभवतीति तेषां वापनमेवोपदिष्टं शास्त्रेण।

रजस्वलाशुद्धिरप्यघशुद्धावेवान्तर्भवति। रुधिरमलरूपम्, मृतभ्रूणसमाकुलं विकृतं दूषितं रज एव तत्राघरूपम्। अस्य दूषितत्वं च वैज्ञानिकपरीक्षयापि सम्यक्सिद्ध्यति, सुकुमाराणि कुसुमानि दूरस्थितान्यपि दूषितरजः संपर्कान् म्लायन्त इति वैज्ञानिकैः परीक्ष्य साधितम्। तदपि कालेन निष्क्रान्तं भवतीति कालस्नानाद्यपनोद्येयमशुद्धिः।

अथ पञ्चमी एनः शुद्धिः, या प्रयश्चित्तपदेन धर्मग्रन्थेपूच्यते। अनिच्छतोऽनवधानात् इच्छतोऽपि वा प्रमादाद्यैः प्रतिकूलाचरणजन्य आत्मप्रतिकूलः संस्कार आत्मनि प्रविष्टः, तस्यापनोदार्थं यद् व्रत - तीर्थ - दानयागादिरूपकर्मानुष्ठानं तत्प्रायश्चित्तपदेनाभिलप्यते। एतैर्हि विहितैः प्रायश्चित्तकर्मभिराधीयमानाः शुभसंस्काराः दूषितान् संस्कारानपनयन्ति क्षारादिसंयोग इव वस्त्रगतं मलविशेषम्। तदेतदाम्नातं श्रुत्या "धर्मेण पापमपनुदति" इति।

व्रतेषु चान्तर्जलादिपरिवर्जनात्संधुक्षितः शारीरो वैश्वानरोऽग्निः शारीरान् धातून् भक्षयन् तदुपसंक्रान्तं मलमपि भक्षयति—

"अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः"
(छान्दो० उ०)

इति श्रुत्युपदेशान्मनः प्राणाश्चाऽपि अन्नजलादिविरहे कार्श्यमापद्यन्त इति तत्संसक्तं मलमपि दह्यते। तीर्थान्यपि च शारीरं मलमिव सूक्ष्मशरीरगलमप्यपनेतुं समर्थानि भवन्ति। व्रतादिविस्तरोऽपि पुराणेपु इहैव शद्धौ कल्पे वान्तर्भवति। दानं च नाम आत्मना परिगृहीतां पूर्वोक्तरीत्या

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रजा - वित्तपर्यन्तं पञ्चकलात्मनोऽवयवभूतानां संपदामात्मनः सकाशादवदानम् - पृथक्करणम् - विच्छेद इति तप एव गण्यते । तदप्यात्मसंसक्तं मलं शोधयितुमलम् । यज्ञश्च यजमानात्मनो देवैः संबन्धसंपादको देवात्माविर्भावप्रयोजक इति देव संबन्धाद्दोषापहरणे सुतरां समर्थो भवति । सैवमैनः शुद्धिः । यत्र तु प्रबलतरमेन आत्मानमत्यर्थमाक्रम्य स्थितम् तत्तस्माद्दूरीकर्तुमशक्यमेवेत्यार्षेण चक्षुषा विज्ञाय तत्र "निष्कृतिर्न विधीयते" इति शास्त्रैरुपदिष्टम् यथा हि धूमादिमलानां स्तरैरत्यर्थमाकीर्णं कान्दविकादिवस्त्रं स्वरूपनाशमन्तरेण मलाद्वियोजयितुमशक्यमेव भवति, यथावा लोहपित्तलादिधातुषु दृढबद्धमूलं किट्टादि भूयो मार्जनेनापि न शक्यमपनेतुम् तथैवाशक्यनोदनान्यपि पातकानि भवन्तीति सर्वत्र शुद्धिः सुशकेति न भ्रमितव्यम् । शास्त्रमेवाऽत्र प्रमाणम्-शुभादृष्टानां, दुरदृष्टानां वा मानुषेण चक्षुषा विज्ञातुमशक्यत्वात् । यावद्धि शक्यं शोधयितुम् तस्य शुद्धिः कारुणाप्लुतैः शास्त्रकृद्भिरुपदिष्टा । अशोध्यमानं तु तदस्मिन् जन्मान्तरे वा कुत्सितं फलं दत्वैव निवर्त्स्यतीति ।

तदनु षष्ठी मनः शुद्धिः । तदर्थं सर्वाः शुद्धयः सर्वे वा संस्काराः समुपादीयन्ते । तस्य साक्षाच्छोधनं नाम रजस्तमसी मलरूपे अभिभूय विशुद्धस्य सत्वस्यावस्थापनम् । तदर्थमेव योगाभ्यासः, तपांसि, जपाः, उपासनाश्च विधीयन्ते, विव्रियन्ते च श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु सर्वत्र । तदेतत्सर्वं तत्तदवसरे विशिष्य प्रतिपादनीयमेव । ये त्वाधुनिकाः "मनः शुद्ध्यैव वयं कृतार्थाः, किमन्याभिः शुद्धिभिः" इति साटोपं वदन्ति, तत्तेषां मनः शक्तिस्वरूपाज्ञानविजृम्भितं सहसमात्रम् । सर्वथा मनः शुद्धेर्महर्ष्यादिभिरपि दुष्करत्वात् । भोजनशरीरादिशुद्धिविरहे मनः शुद्धेः सर्वथैवाशक्यत्वाच्चेत्यलमप्रकृतविस्तरेण । त एते सर्वेऽपि संस्काराः शुद्धयश्च धर्मशास्त्रविषया अपि पुराणेषु सविस्तारं संगृहीताः । तेषु मा भूत्स्वरूपाज्ञान कृतोप्र माण्यसंशय इति तत्स्वरूपमपीह मनाग् विवृतम्, अत्रैव शुद्धौ, कथंचित्संस्कारेष्वपि वा तीर्थानि व्रतान्यपि चान्तर्गता भवन्ति, येषां श्रुतिस्मृत्यादिषु संक्षेपेण संकेतमात्रम् - पुराणोपज्ञं तु तद्विस्तरः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तीर्थयात्रोपपत्तिः

तत्र तीर्थशब्दोऽयमनेकार्थक आख्यातः कोशेषु—

तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्याय मन्त्रिषु।
अवतारर्षिजुष्टाम्भः स्त्रीरजःसु प्रकीर्तितम्॥ इत्यादिना।

एष्वनेकेर्था यत्र समवयन्ति, तान्यस्मद्देशेतीर्थस्थानानीति प्रसिद्ध्यन्ति। तथा हि (१)शास्त्राणि तीर्थान्युक्तानि, तेषामध्ययनाध्यायनादिकं तेषां नवनिर्माण जार्णोद्धारादिकं च प्राचीनात्काला यत्र प्राधान्येन प्रचलतिस्म तानि तीर्थस्थनानीति प्रसिद्धि गतानि। अद्यापि काश्यादिषु संस्कृताध्ययनाध्यापनकेन्द्रता दृष्टिगोचरी भवति। (२) अध्वरमिति च यज्ञनाम, यासु भूमिषु - येषुप्रदेशेषु यज्ञवाहुल्यं प्राग् बभूव, ता भूमयस्ते प्रदेशाश्च तीर्थपदेन प्रसिद्धि गताः। प्रसिद्ध्यति हि प्रयाग काशीप्रभृतिषु प्रसिद्धेषु तीर्थेषु यज्ञबाहुत्यम् - प्रयाग - दशाश्वमेचप्रभृतिमिर्नामभिरेव च तत्प्रस्फुटी भवति, पुराणेष्वपि च तत्र तत्र यज्ञादिकथा समुपलभ्यते। (३) क्षेत्रमिति च पवित्रोभूप्रदेश आख्यातः, त्रिगुणात्मके हि जगति यत्र यत्र सत्वगुणाधिक्यम तत्पवित्रमिति मन्यते, सत्वस्यैव सर्वपावकत्वात्। भूमिरुदकं तेजोवायुरिति सर्वामिदं त्रिगुणम् - तेषु यत्र यत्र सत्वप्राधान्यम् तानि पवित्राणी त्याख्यायन्ते। अस्मच्छरीरेष्वपित्रिगुणेषु सत्वबाहुल्यम् यत्र, तत्रैव पवित्रता मन्यते, तमो बहुले चापवित्रता। प्रकाशो लाघवं च तत्स्वरूपमिति प्रकाशप्रधाने सर्वेन्द्रियाधिष्ठाऽने शिरसि सर्वापेक्षया पवित्रता मन्यते, मलबहुलेषु चापवित्रता। तत एव मलवहुलाक्यव संपर्कात् शिरः सर्वथा रक्ष्यते, अपवित्रस्थान मंबन्धे च करावपि प्रक्षाल्येते। तथैव भू प्रदेशेषु जलादिष्वपि च क्वचिद्विशेषेण पवित्रतां परीक्षन्ते स्म धर्मपरायणा वैज्ञानिका महर्षयः। यथा हि सर्वस्मिन् शरीरे व्याप्त मपिचैतन्यं चक्षुषि अन्येषु गर्भप्रदेशेषु वा विशेपेणाभिव्यक्तं भवति, तत एव चक्षुषि कणमात्रस्यापि स्पर्शः स्फुटमनुभूयते - पीड़ाकरश्चापि भवति, तथैव

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पृथिव्यादौ सर्वत्रव्याप्तेश्वरसत्ताक्वचित्प्रदेशेषु विशेषेणाभिव्यक्तिं गच्छति, तान्येव क्षेत्राणि तीर्थानि चोच्यन्ते ।

तदेतदुक्तं स्कान्दे काशीखण्डे –

यथा शरीरस्योद्देशाः, केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः ।
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचिन् पुण्यतमाः स्मृताः ।
(स्क० पु० काशी० ६ अ० ४३१ श्लोक)

प्रत्यक्षं चैतदनुभूयतेऽनुभवरसिकैः - यत् कतिमंश्चिद् भूखण्डे स्थित्या मनसि धार्मिका उच्चविचाराः प्रादुर्भवन्ति, कस्मिंश्चिच्च प्रदेशे धार्मिकाणामपि विदुषां मलिन विचारोदयो जोयत इति । तदेतद्गुणवैषम्यकृतं यत्र पवित्रत्वम्, तानि तीर्थस्थानानीत्याख्यान्ते (४) धार्मिकोन्नतः जगन्मलादुद्धारप्रप्तेश्चोपाया यत्र चिन्त्यन्तेस्म (५) उपाध्यायपदवाच्याः शास्त्राध्यापका यत्र बाहुल्येन निवसन्ति स्म, एवं मन्त्रप्रधानाणापकादयो यत्र तिष्ठन्ति स्म (६) ईश्वरदेवताऽवतारयौन् प्रदेशान् जन्मना लीलया निवासादिना वानुगृह्णान्ति स्म (७) ऋषयश्च वीतरागा निरस्तकल्मषा यत्र निवसन्ति स्म (८) ते प्रदेशास्तीर्थस्थानानीति प्रसिद्ध्यन्तत्र देशे । अन्य देशीया अपि विवेचका एवं विधानां स्व स्व देशे स्थानानां महत्वमभिमन्यन्ते - आदरं च कुर्वन्ति, परं प्राक् तथा विधाविज्ञानविरहात् तथाविधा प्रतिष्ठा तैस्तत्तत् स्थानानां नकृता, तत्र यात्रादिकं धर्माङ्गतया न परिगृहीतम् चिराद्विज्ञानपारेगतैर्भारतीयैः वैज्ञानिकपद्धत्या सत्वादिगुणानामपि परीक्षणे दक्षा अभवन्, कियांश्च भूम्युदकादीनां भवत्यन्तः करणे प्रभाव इत्यपि च व्याजनन् तस्मादेतैस्तथाविध स्थानानां महती प्रतिष्ठा समुद् युष्टा, तत्र यात्रादिकं निवासादिकमपि च धर्माङ्गतया विहितम् । तथैव गङ्गायमुनादि नदीनामुदकेष्वपि वैज्ञानिकंपरीक्षणेन उदकान्तरवैलक्षण्यमतिमहत्वं चैभिर्महर्षिभिरुपलब्धमिति तत्र स्नानाय तदुदकपानाय च महानाग्रहः कृतः । सोऽयं गङ्गायमुनाद्युदकोत्कर्षो विशेषेण प्रपञ्चयिष्यते । सत्वादिगुणा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

हि स्वसजातीयसंबन्धमासाद्योपचयं, विपरीतगुणसंबन्धेऽपचयं भजन्तीति सत्वबहुलभूम्युदकादिसेवने स्वान्तः स्थं सत्वंवर्द्धते तमश्चीपचायत इति मलं विनश्यति । तस्माद् यस्य कस्याचिदुपनतः कथंचित् पातकसंबन्धः, स तन्मलापनयनाय प्रायश्चित्तरूपशुद्ध्यर्थं तेषु प्रदेशेषुगन्तुमादिश्यत इति शुद्ध्यन्तुर्भायस्तीर्थयात्रायाः । अनुपनतपाप्रकसंबन्धोऽपि च अग्नसि सत्वोत्कर्षरूपातिशयाधानाय तत्र गच्छतीति संस्काररूपतापि तीर्थयात्रायाः। सेयं भूम्युदकादीनां पापापहारकता कल्याणजनकता च श्रुतिष्वपि श्रूयते—

वृद्धमापः प्रवहृन यत् किञ्च दुरितं मयि । यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वाशेप उतानृतम् । (य०६।१०) शन्नो देवीरभीष्ट्य आपो भवन्तु पीतयेशंरयोस्रवन्तु नः (य० ३६।१२) इत्यादिषु मन्त्रेषु । स्मृतिकृन्मूर्धन्यो भगभान् मनुरप्याह—

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदिस्थितः ।
ततो वेद–विवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून्गमः ।

(मनु० ८ अ० ९२ श्लोक)

एतावता अन्तरात्मना विवादे असत्यभाषणादिप्रवृत्तौ गङ्गाकुरुक्षेत्रादितीर्थगमनमुचितं भवतीति स्पष्टं सूचितम्। अन्तरात्मना अविवादे मनोवाक्-कर्मणामैक्ये गङ्गाकुरुक्षेत्रगमनं विनापि न किमपि हीयते अन्तरात्मनः पवित्र त्वादित्यत्रोक्तम् । अनुमतिमात्रमिदम्-अधिकोत्कर्षाय तत्र गमनं तु न निवार्यत एवेति स्फुटं मीमांसापरिशीलिनाम्। आस्ताम्-एवं सूक्ष्मरूपेण श्रुतिस्मृतिभ्यां संकेतिता तीर्थयात्रा । कानि कानि तीर्थानि ? कुत्र कुत्र तानि सन्ति ? कथं च तेषु यात्रा विधेयेति विस्तारेण तु पुराणेष्वेव प्रतिपादिता। इयमेव चाद्यत्वे भारतीयानां धर्मरक्षिका, संस्कृतिरक्षिका, ऐक्यजीवातुभूताचेति प्रागेव पुराणोपयोग प्रकरण आख्यातमस्माभिः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

व्रतोपवासाद्युपपत्तिः

एवं व्रतोपवासादिकमप्यन्तर्मलशोधकं सत्वविशेषोत्कर्षकं चेति शुद्ध्यर्थं संस्कारार्थं चाप्युपादीयते।[1] भुज्यमानस्य हि अन्नोदकादेर्वैश्वानरेणाग्निना त्रयो विभागा निष्पाद्यन्ते - तत्र स्थवीयान् भागो मलरूपेण शरीरच्छिद्रेभ्यो निष्काम्यति, तस्य शरीरान्तः स्थितिः स्थूलसूक्ष्मशरीर विरुद्धा स्यादिति तद्बहिष्करणव्यवस्थैव शारीराग्निना क्रियते। अथ मध्यमो भागो (नातिस्थूलो नातिसूक्ष्मश्च) रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्ररूपतां क्रमेण प्राप्य शरीरपोषणादि प्रयोजनं संपाद्य कालेन बहिर्भवति, अन्तिमः परिणामः सप्तमो धातुः शुक्रं हि ऊर्ध्वस्रोतसामोजोरूपेण, तिर्यक्स्रोतसां परिश्रमोत्पादकबलरूपेण, अधःस्रोतसां च सन्तानरूपेण परिणति सुप्रसिद्धमायुर्वेदादिषु। सूक्ष्मतमस्तु अन्नभागो मनोरूपेण जलभागस्तु प्राणरूपेण परिणतो मनसः प्राणस्य चाप्यायनाय भवतीति श्रुत्या बोधितम्। तत एव मनःशुद्धिमभिलषद्भिरन्नशुद्धौ विशेषेणावधातव्यमित्यार्याणामस्त्यभिनिवेशः अत्रैव च च्छान्दोग्योपनिषदि मनसोमयत्व परीक्षादार्ढ्यार्थं श्वेतकेतोः षोडशदिनान्युपवासस्तत्पित्रा महर्षिणोद्दालकेन कारितः, षोडशे च दिवसे श्वेतकेतोर्मनागप्यधीतमन्त्रादिस्मृतिबर्नभूव। अनन्तरं पितुणाज्ञयतन्न दुग्धाद्यभ्यवहरणे पुनर्मन्त्रादिस्मृतिः संजातेत्यपि निरूपितम्। तेन महर्षिणोद्दालकेन स्पष्टमेतद्बोधितम् - यद्यन्नस्य स्थूल शरीरपोषणमात्रमेव प्रयोजनम् - तर्हि अन्नमनश्नतो मनोदौर्बल्यं स्मरणाद्यभावप्रयोजकं कुतो भवति ? स्मृतिर्हि मनसो धर्मः, मनो यदि दुर्बलं स्यात्, तर्हि स्मृतिरपि कुतो नोदियात् ? तस्मादन्नाशनाभावे मनोपि दुर्बलं भवतीति स्पष्टं जातम्, तेन मनसोऽप्यन्नमयता सुसिद्धा। मनश्चातिचञ्चलमिति सर्वाणि शास्त्राण्यचक्षते, सर्वेषां चानुभवगोचरोऽयमर्थः। न च मनः स्थैर्येण बिना भगवदुपासनादिकं संभवतीति तदर्थं सुप्रयतन्ते धार्मिकाः। तदर्थमेवाय-

---

१. अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः, तेजोमयी वाग् (छान्दो० उप०) इति सुप्रसिद्धः श्रुतेर्घण्टाघोषः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मुपायो यदनशनेन दुर्बलतामापद्यमानं मनः शक्यते वशीकर्तुमिति। यथा हि प्रबलो गजोऽनशनेनदुर्बलतामापाद्य गृह्यते महापात्रैः, तथैव दुर्बलतामापाद्य मनोगृह्यते - वशीक्रियते स्थिरीक्रियत इति यावत्। यथा च सत्वप्रधानानां प्रदेशानां पवित्रता तीर्थप्रकरणेऽनुपदं व्याख्याता, तथैव त्रिगुणात्मके कालेऽपि क्वचित्सत्वोत्कर्ष इति तेषु वा विशेषेण भगवदुपासनादिकं विहितम्, तस्मिन् काले कालप्रभावेण विशुद्धं मन उपासनायामभिमुखं स्यादिति। तत्रैव चौपासनाङ्गत्वे नप्रायेणानशन रूपा उपवासा विहिताः तदुक्तम् —

उपावृत्तस्य पापेभ्यो वासो यस्तु गुणैः सह। इत्यादि

त इमे पूजाद्यङ्गभूता व्रतोपवसाः। स्मृतिषु तु पापापनोदाय प्रायश्चित्तरूपा उपवासा विशेषेण विहिताः। स्वतः शरीरादिद्वारकं वा यन्मलं मनसि संक्रान्तम्, अनशनेन दुर्बलीभवतो मनसस्तत्प्रच्युतं स्यादिति। प्रतिरक्षणं हि सर्वेष्वेव पदार्थेषु यातायातापराभिधाना उपजनापायप्रक्रिया यज्ञरूपा प्रवर्ततइत्युक्तं प्राक्। उक्तं हि योगभाष्ये "प्रतिक्षणं परिणामिनो हि सर्वेपि भावा ऋते चितिशक्तेः" इति। चैतन्य-रूप आत्मा केवलमेकरूपः, तद्भिना अन्ये सर्वेऽपि भावाः प्रतिक्षणं परिणाम-मामपद्यन्ते, केचिदवयवास्ततो विनिष्काम्यन्ति, केचिच्च तत्राभिनवा निविशन्त इति। तद्येगामाध्यात्मिकानां भावानां रक्षास्माकमतितमा-ऽभिमता, तेषामधिकः क्षयो माभूदिति तदर्थमस्माभिः प्रयत्नः सतत-मनुष्ठीयते। तेन प्रयत्नेन भवति तेषां परिपोषः। मनसः परिपोषार्थमन्न भोजनमेवाभ्युपाय इत्यावेदितं प्राक्। ततश्च यदान्न न भुज्येत, तदा मनसो मलीमसा अवयवाः प्राकृतिकेन नियमेन क्षयं गच्छेयुरिति तैः सह मलस्याप्यपगमः सुसिद्ध एवेति प्रवर्तते, सर्वस्याः कृतेः पूर्वं च कर्म-संकल्पयति, तदेवमानसं व्यापारमस्य विज्ञाय देवा अस्य संनिधावा-गच्छन्ति। अयमपि च भावयति - देवाः पितरश्चापि मत्सन्निधाने समागता इति। तेभ्य आहुत्यादिप्रदानन्तु प्रतिपदि विहितमिति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्णायाममायां वा विधिव्यतिक्रमभयान्नानुष्ठातुं शक्यते, परं गृहागतं मनुष्यमप्यतिथिमुपेक्ष्य स्वयं भोजनं यदा सर्वथानर्हम्, लोकविरुद्धं च, तदा एवं विधान् पूज्यतमान् देवान् पितृन् वा समुपेक्ष्य भोजनं कथनुचितं स्यादिति तेभ्यः प्रदानात् पूर्वं तस्मिन् दिने यजमानेनाप्यन्नं नाभ्यवहरणीयम्। यद्यभ्यवहरणमावश्यकमेव, तर्हि यद् द्रव्यं देवाः पितरो वा नाश्नन्ति - तदभ्यवहरणीयम्। यो हि स्वयं यन्नाश्नाति, तस्य पदार्थस्य तत्सन्निधावभ्यवहरणेऽपि तस्यावज्ञा न भवतीति लोकेऽपि दृश्यते। देवाः पितरश्च सोमप्रधानमेवान्नदुग्धादि भुञ्जत इति आग्नेयतत्वप्रधाना-अल्पसोमाः आरण्यका अकृष्टपच्याः श्यामाककोद्रवादयः, आग्नेय-तत्वप्रधानानि फलानि वा तदभ्यवहरणायोपयोगीनि भवितुमर्हन्तीति। एतदेव उपवासशब्द प्रवृत्तिनिमित्तांमश्रुत्याख्यापितम् देवाः पितरश्च तदा उप - समीपे वसन्ति इति हेतोर्यत् क्रियते - तदिदमुपवासनिमित्त-कत्वादुपवास शब्देनैवाभिधीयत।

इमां याज्ञिकीं श्रुतिप्रक्रियामेवाधारीकृत्य लोकेऽपि उपवासफलाहारादिप्रथा प्रवृतेत्यपि शक्यत्तेऽनुमातुम्। जन्माष्टमीशिवरात्रिप्रभृतिषु यदा विहिते तस्मिस्तस्मिन् काले पूजादिकं धामिकः संकल्पयति, तदैवपूज्य देवता सन्निधानं तद् भावना चास्यजायत इति पूज्यानुपेक्ष्य स्वयभभ्यवहरणमस्य देवपूजाद्यङ्गभूताः श्राद्धाङ्गभूताश्च व्रतोपवासाद्या अनया प्रक्रिययापि समाहिता भवन्ति। तत्तद्ग्रहदेवतादिप्रसादनार्थमपि तत्तद्वारेषु तिथिषु वा व्रतान्युपवासा वा विशिष्ट पुराणेषु विधीयन्ते। तत्राप्यय-मेवाशयो यत्तत्तद्देवतासु तिथिषु तत्तद्दैवतेषु वारेषु वा तत्तद्देवतासान्निध्यं भवतीति तत्पूजादिना तस्मिन् दिने विशेषेणेष्टप्राप्तिसंभावना, पूजाद्यङ्गभूतं च व्रतोपासादिकमपि प्रागुक्तया प्रक्रियया तत्रोक्तमिति भाव्यम्। देवादीनामुप - समीपे वासमभिलक्ष्य तत्प्रसादनार्थमिदं क्रियत इति उपवासशब्दोपपत्तिः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तदित्थं व्रतोपवासाद्या अपि शुद्धिरूपाः संस्काररूपाश्च । आगन्तुकमल निवर्त्तकाः प्रायश्चित्तरूपाः शुद्धौ, जन्मसिद्धमलनिवर्त्तका अतिशायाद्दायकाश्च संस्कारे शक्यन्तेऽन्तर्भावयितुम् ।

तेषामेषां व्रतोपवासादीनामपि मूलमात्रं श्रुतिस्मृत्योरित्युपदर्शितं प्राक् । विस्तरस्त्वेषां पुराणेष्वेव दृश्यते । इमानि तीर्थव्रतादीनि कालेऽस्मिन् धार्मिकाणां प्राधान्येनानुष्ठेयानि - संस्कृतिरक्षकाणि चेति पुराणोपज्ञतैषां पुराणानां संस्कृति रक्षकत्वं पुष्णाति । एवमुपासनाविषयोऽपि पुराणेष्वतिविस्तृतः । पूजाविधिप्रकारादिकम् - तदीयं विज्ञानमपि च तत्र तत्र विवृतम् ।

त इमे विषयाः "कल्पशुद्धि" पदेनैव संग्राह्या इति संक्षेपः ।

पञ्चसु लक्षणेषु-प्रत्येकं पञ्च-विधाः

अथ गुरुप्रवरविद्यावाचस्पतिश्रीमधुसूदनझामहाभागचरणैस्तु पुराणोत्पत्तिप्रसंगगामके निबन्धे पुराणलक्षणेषु पञ्चसु प्रत्येकं पञ्चविधत्वमाख्यातम् । तथा हि-

सृष्टिक्रमो भिन्नमतान्यवतारो यथायतिः ।
ब्रह्माण्डमिति सृष्ट्यंशे पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।

१-सृष्टिः प्रथमा षट्पर्वा, २-सृष्टिर्मध्यमा चतुर्विधा, ३-सृष्टिरुत्तरा षड्विधा, ४-संपरायसृष्टिः, ५- सृष्टीनामायतनमितिपञ्चविधा सृष्टिः । एतच्च पुराणक्रमनिरूपणे स्फुटं स्यात् ।

शास्त्रावतरणं कल्पशुद्धिः सृष्ट्युपसंहृतिः ।
ज्योतिश्चक्रं भुवः कोशः पञ्चैताः प्रतिसृष्टयः ।।

अत्र अनुसृष्टिः, प्रलयः (सृष्ट्युपसंहृतिः) इति द्वयमपि प्रतिसृष्टि-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पदेन गृहीतम् । अनुसृष्टेश्च विस्तारश्चतुर्धाऽधिकृतः ।[1] तत्राख्यागाथा-कल्पशुद्धिरपि च तस्मिन्नेव लक्षणे संगृहीतानि ।

तदेवं ज्योतिश्चक्रम्, भुवनकोशः, शास्त्रानुव्यूहः (शास्त्रभेद-विवरणम्) कल्पशुद्धिः, सृष्ट्युपसंहारश्चेति, पञ्चपर्वा प्रतिसृष्टिः, तत्र दर्शनभेदा उपासनाभेदाश्च पुराणेषु लभ्यमानास्तत्रैवोपनिवेशिताः ।

अथ वंशवंशानुचरिते अपि पञ्चविधे उक्ते[2] –

ऋषिचरितम्, देवयोनिचरितम्, सूर्यवंशचरितम्, चन्द्रवंशचरितम्, अग्निवंशचरितम्, इति पञ्चधा वंशानुचरितम् । देवचरितम्-असुरचरितं च देवयोनिचरित एव समावेश्यमित्येवम्—

युगं दिव्ययुगं नित्यकल्पः कल्पाश्च सप्त ये ।
त्रिंशत् कल्पाश्च कल्पन्ते मन्वन्तरनिरूपणे ॥

इति पुराणेषु लभ्यमानाः कल्पभेदाद्या मन्वन्तरप्रकरणे संगृहीताः । तदित्थं पुराणोक्ता विषयाः पञ्चसु लक्षणेष्वेव संगृहीताः, विस्तारश्च

तच्चैतदग्रे तैरेव विवृतम्—

१. त्रैलोक्यविश्वविद्या ज्योतिश्चक्रं च भुवनकोशश्च ।
प्रासङ्गिकं च वंशावली पुराणं तु पञ्चविधम् ॥
आख्यानोपाख्याने गाथा अथ कल्पशुद्धिश्च ।
प्रासङ्गिकं चतुर्धा प्रश्नसमाधिप्रसंगतोऽधीतम् ॥

श्रौतः स्मार्तः समयश्चाचारो धर्मभेदास्ते ।
नानोपासनभेदा दर्शनभेदाश्च कल्पशुद्धिरिह ॥

२. ऋषिवंशः पितृवंशः सूर्यचन्द्राग्निवंशकाः ।
इत्थं वंशऽविभागेऽपि पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥
ऋषीणां देवयोनीनां राज्ञां सूर्यादिवंशिनाम् ।
देवासुराणामन्येषां चेहाऽनुचरितं स्तुतम् ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणविद्याया इह प्रदर्शितः। तदेतदग्रे तत्तत्प्रकरणे यथासंभवं स्फुटीकर्तुं प्रयत्येत।

४ "पुराणसंख्या"

तानीमानि पुराणान्यष्टादशेति सर्वेषु पुराणेषु स्मर्यंते, तेषां प्रत्येकं संख्याक्रमश्चापि प्रायेण सर्वत्रैव स्मर्यंते।[1]

---

१ - विष्णुपुराणे तृतीयेंशे षष्ठेऽध्याये—

आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते।
अष्टादशपुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥२१॥
आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यं नवमं स्मृतम्।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम्॥२२॥
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं स्मृतम्॥२३॥
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्।
महापुराणन्येतानि ह्यष्टादश महामुने॥२४॥
तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च।

पद्मपुराण आदिखण्डे ६२ अध्याये च एषु भगवदङ्गत्वकल्पनाऽपि दृश्यते—

ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पाद्मसंज्ञितम्॥२॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामं महेशितुः।
ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥३॥
मार्कण्डेयञ्च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते।
भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥६॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामं जानुरुदाहृतम्ः।
लैङ्गं च गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥७॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्।
कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥८॥
मज्जातु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अयमेव क्रमः श्री भागवते (१२ स्क० १३ अ० ४-९ श्लो०), मार्कण्डेयपुराणे (१३४ अ० ६-११ श्लो६), भविष्यपुराणे (ब्रां प० १ अ० ६१-६४ श्लौ०), ब्रह्मवैवर्ते (कृष्णखण्डे अ० १३३ श्लो० ११-२१), वाराह (११२ अ० ७४-७७ श्लो०) च लभ्यते। नारदपुराणे (पू०ख० ९२ अ. २५-२८ श्लो.), अग्निपुराणे (अ. २७२ श्लो. १-२३), मात्स्ये च (अ. ५३ श्लो. १२-५५) चतुर्थस्य शिवपुराणस्य स्थाने वायुपुराणमित्युक्तम्। तदेतदग्रिमे प्रकरणे विवेचयिष्यते, -- अन्यत्सर्वं समानम्। लिङ्गपुराणे [३९ अ. श्लो. ६१-६४), शिवपुराणे वायवीयसंहितायाम् (१ अ. ४२-४५ श्लो.), कूर्मपुराणे (पूर्वा अ. १ श्लो. १३-१५), पाद्मे पातालखण्डे (१११ अ. ९०-९८ श्लो.), भविष्यपुराणं षष्ठे स्थान उक्तम्, सप्तदशे च स्थाने लैङ्गम् (अ. ३९ श्लो. ६१-६३), पाद्मे उत्तरखण्डे (२६४ अ ७७-८४ श्लो.), च स्कान्दम्, कौर्मे च वायवीयमुक्तम्। शिवपुराणे च (उमा. सं. ४४ अ. १२०-१२२ श्लो.) षष्ठं भविष्यम्, षोडषं गारुडं सप्तदशं च स्कान्दमन्यत् समानम्। शिवपुराणे रेवाखण्डे च शिवपुराणवायुपुराणयोरैक्यं पञ्चमे स्थाने भविष्यं षष्ठे मार्कण्डेयम् सप्तमे आग्नेयमष्टमे नारदीयं नवमे च भागवतमुक्तम्। शिष्टं समानम्। पाद्मे पातालखण्डेऽपि वामनवाराहमात्स्यकौर्माणां क्रमभङ्गः, पाद्मउत्तरखण्डेऽपि (२६४ अ. ७७-८४ श्लो.) स्कान्दं सप्तदशत्वेनोक्तमित्येतावान् क्रमभङ्गः, तदेतत्प्रायेण लेखकप्रमादादिनैवोपनतं भवेत्, हेतुरपि कथंचिदत्र क्वचिदंशे संभवतीति अग्रे विचार्येत। अन्यत्सर्वं समानमेव।

तदित्थमल्पां विप्रतिपत्तिमुपेक्ष्य द्वादशानां पुराणामस्मिन् क्रमे लभ्यत ऐकमत्यम्। वृहन्नारदीयेऽपि च यत्र सर्वेषां पुराणानां विषयतालिका तत्राप्ययमेव क्रम आदृतः[1] तथा च वहुसंमतो वक्ष्यमाणरीत्या वैज्ञानिकश्चायमेव क्रमो मुख्य इतिप्रमाणपरतन्त्रैरन्वेषकैरभ्युपगन्तव्यं भवति। ये तु स्वतन्त्राः प्रमाणबाहुल्यमुपेक्ष्य क्रममिममविशिष्टमन्यं च विशिष्टं मन्यन्ते, तत्रापि च

---

१. वृ० ना० पू० खं० अ० ९२ श्लो० २५-२८।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

कपोलकल्पितां वैज्ञानिकप्रक्रियामघटमानामपि कथंचिद् योजयन्ति, ते प्रमाणपरतन्त्राणामुपेक्ष्या एवेत्यलं परविवादेन। अथ श्रीभागवते विभिन्नः क्रमो वक्ष्यते—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम्।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम्॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्॥
(भागवत १२।७।२३-२४)

अयं क्रमः एवं रूपो विकलः क्वाप्यन्यत्र पुराणे न लब्धोऽस्माभिः। यत्रापि क्वचिदंशेनास्य क्रमस्य संवादो लभ्यते, तत्रापि प्रकरणान्तरे प्रागुक्तो मुख्यक्रम एवादृतो दृश्यते। श्रीभागवते चाप्यन्यत्र संख्यया सहान्यः क्रम उक्त एवेति तथा चासावत्र क्रमो न विवक्षितः, केवलं पुराणनामान्येव संकलितानि-इत्येवमन्तव्यं स्यात्। यथा च प्रथमं द्वितीयमित्यादि क्रम-विवक्षासूचिका प्रक्रिया पूर्वोक्ते क्रमे तत्र तत्र पुराणेषु समुपलभ्यते, नैवमत्र क्रमविवक्षासूचकं किमप्युपलभ्यते। स्कन्दपुराणे चापि विभिन्नेषु स्थानेषु विभिन्नक्रमेण पुराणनामानि दृश्यन्ते, क्वचिच्च तत्र द्वितीयं, तृतीय-मित्यादि संकेतोऽपि दृष्टः। परं बहूनां पुराणानां वैमत्यात्तत्रैकैकस्मिन्नपि विभिन्नतादर्शनाच्च क्रमविवक्षा न शक्यते तत्रापि वक्तुम्। एवं पाद्मे पातालखण्डे[1]ऽपि क्रमाविवक्षया लेखकप्रमादादिना वा व्युत्क्रम इत्यादि समाधेयम्। अन्यत्र पद्मपुराणे मुख्यक्रमस्य स्पष्टमुल्लेखात्-भगवदङ्गत्व-कल्पनाच्च।

तथैव देवीभागवते च—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापकूस्कलिंगानि पुराणानि विदुर्बुधाः॥
(१।२।३)

---

१. १११ अ. ६०-६८ श्लो.।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्युक्तम्, तत्रापि क्रमो न विवक्षितः आद्याक्षराणि निर्दिष्य कथंचित् सर्वपुराणनामानि संगृहीतानीतिस्फुटमेव। एवं च विष्णुपुराणोक्त एव मुख्यः पुराणानां क्रमः।

अष्टादशसंख्योपपत्तिः

एवमष्टादशपुराणान्युक्तानि, अथात्रोपपत्तिः प्रदर्श्यंते। चत्वारो वेदाः चत्वार उपवेदाः, वेदाङ्गानि षट्, पुराणं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्र-मिति विद्या अष्टादश। पुराणान्यष्टादश, उपपुराणान्यष्टादश, सर्वमान्यतया परिगणिताः स्मृतयोष्टादश, महाभारतस्य पर्वाण्यष्टादश, सर्वमान्यायाः श्रीमद्भागवद्गीताया अध्याया अष्टादश, शिरोमणिभूतस्य भागवतस्य संख्याप्यष्टादशसहस्राणीत्यष्टादशसंख्याया अनवरतमाम्रेडनात् किमपि रहस्यमस्यां संख्यायां प्रतीयते। नेदमाम्रेडनं यादृच्छिकं भवितुमर्हतीति तदेव तावद व्याख्यास्यामः।

१. तत्र प्राचीना विद्वांस उपदेशका एवमुपपादयन्ति स्म,-पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चभूतानि, मनो बुद्धिरहङ्कार-श्चेत्यष्टादशमानवादिशरीरेषु कर्तृतया करणतया वा कर्मणि व्यासक्तानि। शुद्ध आत्मा तु एतत्संबन्धेनैव व्यासक्तः, न तु स्वा-तन्त्र्येण। कर्माणि च शुक्लकृष्णभेदेन द्विविधानि पुण्यपापपदाभि-धेयानि। तत्र पापसंबन्धादष्टादशस्वपि स्थानेषु मलापरपर्याया अशुद्धिः प्रसक्तेति तच्छोधनायोपाया अप्यष्टादशधा समपेक्ष्यन्ते-तत एव मलापकर्षकेषु शोधकेषु शास्त्रेष्वष्टादशेति संख्या विशेषेण पूर्वाचार्यैराद्दता। एकैकस्योपायभूतस्य शोधकस्यैकैक मलापकर्षणे विनियोगो यथेच्छमाकलनीय इत्यष्टादशत्वं युक्तिमदिति प्रथमा प्रतिपत्तिः।

२. तदित्थमाश्रयभेदात् कर्मणामष्टादशविधत्वं प्रथमप्रत्तिपत्ता-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्तम् । केचित्तु स्वरूपेणापि कर्मणामष्टादशविधत्वं व्याचक्षते ।[1]

तत्र शुभप्रवृत्तौ वाचा सत्यं हितं प्रियमित्येका प्रवृत्तिः। नतु पृथक्-पृथक्—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्"

"प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः", ।

"सत्यं हि सद् भूत हितंयदेव" ।

इत्याद्युक्तेः । तस्मात् सत्यं हितं प्रियमित्येका शुभा वाक्प्रवृत्तिः । स्वाध्यायमिति च द्वितीया, इत्थमष्टविधानि शुभानि कर्माणि । दशविधानि च पापानीति कायिकवाचिकमानसभेदेन संभूयाष्टादशकर्माणि । अयं शुभाशुभविभागः प्रवृत्तिदृष्ट्या, निवृत्तिदृष्ट्या तु सर्वाण्यप्यशुभान्येव बन्धकत्वादिति हेयान्येव । तेषामेषामष्टादशानां स्वरूपपरिचयाय हानोपादानप्रतिपत्तये निवृत्तिपक्षे हानमात्रार्थं वा तन्निरूपकशास्त्राणामष्टादशत्वं युक्तियुक्तमिति द्वितीया प्रत्तिपत्तिः ।

३-यद्वाऽन्यथापि कर्मणामष्टादशत्वं समर्थनीयम्-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥

इति हि भगवता याज्ञवल्क्येन नवविधाः साधारणा धर्मा उक्ताः । एवं देशकालपात्रावच्छिन्नाः अणुव्रतानीत्युच्यन्ते । तीर्थभूते तत्र तत्र पवित्रस्थाने मया हिंसाऽनृतं स्तेयं वा वर्जनीयानीति देशपरिच्छेदः ।

---

१. दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति वाचाऽनृतपरुषवचनादीनि, मनसा परद्रोहं परद्रव्येच्छां नास्तिक्यञ्चेति । सेयं पापात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय । अथ शुभा, शरीरेण दानं, परित्राणं, परिचरणं, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायञ्चेति, मनसा दयामस्पृहां श्रद्धां चेति सेयं धर्माय । (न्यायदर्शन)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्युक्तम्, तत्रापि क्रमो न विवक्षितः आद्याक्षराणि निर्दिष्य कथंचित् सर्वपुराणनामानि संगृहीतानीतिस्फुटमेव। एवं च विष्णुपुराणोक्त एव मुख्यः पुराणानां क्रमः।

अष्टादशसंख्योपपत्तिः

एवमष्टादशपुराणान्युक्तानि, अथात्रोपपत्तिः प्रदर्श्यते। चत्वारो वेदाः चत्वार उपवेदाः, वेदाङ्गानि षट्, पुराणं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्र-मिति विद्या अष्टादश। पुराणान्यष्टादश, उपपुराणान्यष्टादश, सर्वमान्यतया परिगणिताः स्मृतयोष्टादश, महाभारतस्य पर्वाण्यष्टादश, सर्वमान्यायाः श्रीमद्भागवद्गीताया अध्याया अष्टादश, शिरोमणिभूतस्य भागवतस्य संख्याप्यष्टादशसहस्राणीत्यष्टादशसंख्याया अनवरतमाम्रेडनात् किमपि रहस्यमस्यां संख्यायां प्रतीयते। नेदमाम्रेडनं यादृच्छिकं भवितुमर्हतीति तदेव तावद व्याख्यास्यामः।

१. तत्र प्राचीना विद्वांस उपदेशका एवमुपपादयन्ति स्म,-पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चभूतानि, मनो बुद्धिरहङ्कार-श्चेत्यष्टादशमानवादिशरीरेषु कर्तृतया करणतया वा कर्मणि व्यासक्तानि। शुद्ध आत्मा तु एतत्संबन्धेनैव व्यासक्तः, न तु स्वा-तन्त्र्येण। कर्माणि च शुक्लकृष्णभेदेन द्विविधानि पुण्यपापपदाभि-धेयानि। तत्र पापसंबन्धादष्टादशस्वपि स्थानेषु मलापरपर्याया अशुद्धिः प्रसक्तेति तच्छोधनायोपाया अप्यष्टादशधा समपेक्ष्यन्ते-तत एव मलापकर्षकेषु शोधकेषु शास्त्रेष्वष्टादशेति संख्या विशेषेण पूर्वाचार्यैरादृता। एकैकस्योपायभूतस्य शोधकस्यैकैक मलापकर्षणे विनियोगो यथेच्छमाकलनीय इत्यष्टादशत्वं युक्तिमदिति प्रथमा प्रतिपत्तिः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

२. तदित्थमाश्रयभेदात् कर्मणामष्टादशविधत्वं प्रथमप्रतिपत्ता-

वृत्तम् । केचित्तु स्वरूपेणापि कर्मणामष्टादशविधत्त्वं व्याचक्षते ।[1]

तत्र शुभप्रवृत्तौ वाचा सत्यं हितं प्रियमित्येका प्रवृत्तिः। नतु पृथक्-पृथक्—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्"

"प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः", ।

"सत्यं हि सद् भूत हितंयदेव" ।

इत्याद्युक्तेः । तस्मात् सत्यं हितं प्रियमित्येका शुभा वाक्प्रवृत्तिः। स्वाध्यायमिति च द्वितीया, इत्थमष्टविधानि शुभानि कर्माणि । दशविधानि च पापानीति कायिकवाचिकमानसभेदेन संभूयाष्टादशकर्माणि । अयं शुभाशुभविभागः प्रवृत्तिदृष्ट्या, निवृत्तिदृष्ट्या तु सर्वाण्यप्यशुभान्येव बन्धकत्वादिति हेयान्येव । तेषामेषामष्टादशानां स्वरूपपरिचयाय हानोपादानप्रतिपत्तये निवृत्तिपक्षे हानमात्रार्थं वा तन्निरूपकशास्त्राणामष्टादशत्वं युक्तियुक्तमिति द्वितीया प्रत्तिपत्तिः ।

३-यद्वाऽन्यथापि कर्मणामष्टादशत्वं समर्थनीयम्-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ।।

इति हि भगवता याज्ञवल्क्येन नवविधाः साधारणा धर्मा उक्ताः। एवं देशकालपात्रावच्छिन्नाः अणुव्रतानीत्युच्यन्ते । तीर्थभूते तत्र तत्र पवित्रस्थाने मया हिंसाऽनृतं स्तेयं वा वर्जनीयानीति देशपरिच्छेदः ।

---

१. दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति वाचाऽनृतपरुषवचनादीनि, मनसा परद्रोहं परद्रव्येच्छां नास्तिक्यञ्चेति । सेयं पापात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय । अथ शुभा, शरीरेण दानं, परित्राणं, परिचरणं, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायञ्चेति, मनसा दयामस्पृहां श्रद्धां चेति सेयं धर्माय । (न्यायदर्शन)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अमायां पूर्णिमायामेकादश्यां वा वर्जनीयानीति कालपरिच्छेदः । गौर्नहिंस्या, महतामग्रेऽनृतं न भाषणीयम्, गुरुद्रव्यस्तेयं न कार्यमित्यादि पात्रपरिच्छेदः । तान्येतान्यणुव्रतान्यभ्यासार्थमादावुपयुज्यन्ते । दिग्देशकालपात्रानवच्छिन्नास्तु सर्वदा सर्वत्र परित्याज्यतया संकल्पिता महाव्रतानि भवन्ति । तदित्थमष्टादशशुभकर्माणि, तत्स्वरूपे परित्याज्यतया प्रविष्टान्यष्टादश तु अशुभकर्माणीति तन्निरूपकशास्त्राणामष्टादशविधत्वं युक्तमिति तृतीया प्रतिपत्तिः ।

४. यद्वा सर्वेषु कर्मस्वनुस्यूतं यज्ञरूपं कर्मैवार्यशास्त्राणां प्रधानं प्रतिपाद्यम् । "यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म" इत्याह भगवती श्रुतिः । तस्य चास्य । यज्ञस्याष्टादशत्वं मुण्डकोपनिषदि प्रतिपादितम् ।

प्लवाह्येते अदृढा यज्ञरूपाः, अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥
[१ मु. २ ख, ७ म.]

तत्राष्टादशत्वं भाष्यकृद्भिः श्रीशङ्कराचार्यैः "षोडष ऋत्विजः, यजमानस्तत्पत्नीति" अष्टादश पुरुषसाध्यत्वात् समर्थितम् ।

इत्थं च यज्ञप्रतिपादनपराणां यज्ञं मुख्यतयाऽभिमन्यमानानां वा शास्त्राणामष्टादशत्वं तत्र दृष्टिनिक्षेपायैवेति चतुर्थी प्रतिपत्तिः ।

तदित्थं कर्मस्वरूपपरिचयाय तद्विधायकानां वा प्रवृत्तिपराणां कर्मशास्त्राणाम् हेयतया बोधनाय निवृत्तिपराणमात्मशास्त्राणां वा अष्टादशत्वं चतुर्धा समर्थितम् । अथ केचिद्विद्वांसस्तु पुराणानामष्टादशत्वमन्यथापि बहुधा समर्थयन्ते ।

५. पुराणेषु हि मुख्यतया प्रतिपाद्या सृष्टिरेवेति निरूपितं पूर्वप्रकरणे । सृष्टेश्चाष्टादशसंख्यया बहुधा संबन्धः सिद्ध्यतीति तन्निरूपणपराणां पुराणानामष्टादशत्वं युक्तमत्र व्याख्यायते ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तथा हि पुरुषः प्रकृतिः महान् - अहङ्कारः - पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि-पञ्चकर्मेन्द्रियाणि एकादशं मनः-शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्याः पञ्चतन्मात्राः-आकाशः, वायुः, तेजः, जलम्, पृथिवीति पञ्चमहाभूतानि, इति पञ्च-विंशतितत्वानि सांख्यदर्शने व्याख्यायन्ते । तत्र पुरुषः प्रकृतिश्चेति द्वे नित्यतत्वे । पञ्चानां तन्मात्राणामेव च घनीभावः पञ्चमहाभूतानीति-तत्र नाममात्रेण पार्थक्यम् । अवशिष्टान्यष्टादश सृज्यमानानि तत्वानि । सृष्ट्यैव च पुराणानां सम्बन्ध इति सृज्यमानानि तत्वानि स्मारयितु-मष्टादशसंख्या तत्र समादृतेति पञ्चमी प्रतिपत्तिः ।

६. यद्वा सृज्यमानेषु सर्वेषु पदार्थेषु त्रैविध्यं व्याख्यायते । पार्थिवाः आन्तरिक्षाः, दिव्याश्चेति त्रिविधाः पदार्था इति । एषु च प्रत्येकं षड्भावविकारा यास्केन व्याख्याताः । जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यतीति । त्रिविधानां च पदार्थानां प्रत्येकं षड्भावविकारगणने अष्टादश सम्पद्यन्ते । त्रिविधानामपि च षड्विधा भावविकाराः पुराणेषु व्याख्यायन्ते इति निरूपणीय-भेदादपि अष्टादशत्वं युक्तिमदिति षष्ठी प्रतिपत्तिः ।

७. पञ्चमहाभूतानि, षष्ठश्च तत्संपृक्तश्चैतन्यरूप आत्मा इति षट्कं प्रत्येकं प्राणिषु विज्ञायते । अतएव चेतनाषष्ठा धातव इति आयुर्वेदविदोऽभिमन्यन्ते । तत्संघातरूपाश्च प्राणिनः दिवि भुव्यन्त-रिक्षे च सन्तीत्यष्टादशविधत्वं सम्यक् समर्थयितुं शक्यते । सर्वेषां चैषां पुराणेषु निरूपणमिति तेषामप्यष्टादशत्वम् । सेयं सप्तमी प्रतिपत्तिः ।

८. यद्वा मन्त्रशास्त्रे हृदयम्, शिरः, शिखा, कवचम्, नेत्रमस्त्रमिति षडङ्गानि मन्यन्ते । यत्र मन्त्रावयवानां न्यासो भवति । तानि च भुविदिव्यन्तरिक्षे त्रिविधानीत्यपि अष्टादशत्वमङ्गानां शक्य-समर्थनमित्यष्टमी प्रतिपत्तिः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

९. अथ च ऋषयः, पितरः, देवाः, असुराः, मनुष्याः, तिर्यञ्च, इति प्राणिनां षड्विधत्वमग्रे सृष्टिप्रकरणे व्याख्यास्यते। ते चाध्यात्म-मधिभूतमधिदैवं च त्रिविधा इत्यष्टादशानां निरूपणपराणि पुराणान्यष्टादशैवेति नवमी प्रतिपत्तिः।

१०. सर्वस्या अपि सृष्टेर्मूलतत्वमग्निरादित्यश्चेति बहुधा श्रुतिषु पुराणेषु च गीयते। "यत्किंचिद्दार्ष्टिविषयकम् - अग्निकर्मैव तत्" "यत्किंचित् तिरोहितमिरंत आदित्यकर्मैव तत्" इत्यादि निरुक्तं चाप्यत्रानुसंधेयम्। तत्र गायत्रमग्नेश्छन्दः, विराट् चांदित्यस्य। अष्टाक्षरा गायत्री, दशाक्षरा च विराडिति संभूयाष्टादशाक्षरा द्वयोः सम्पद्यते। ताभ्यामेताभ्यां छन्दोभ्यामग्निरादित्यश्चोपलक्षितौ। तौ च सर्गस्य मूलभूते, इति तत्रापि दृष्टिमाकृष्टुमष्टादशसंख्या पुराणेषु स्थापितेति दशमी प्रतिपत्तिः।

११. छन्दोभ्य एव सर्वा सृष्टिर्जायत इत्यप्यस्ति श्रुतिषु बहुधा गीयमानम्। छन्दस्सु च गायत्र्या विराजश्च सर्गे प्राधान्यमित्यपि श्रुतिषु गायते। गायत्री पृथिवीस्थानीया विराट् च द्युस्थानीया। ते इमे द्यावा-पृथिव्यौ पितृत्वेन मातृत्वेन, "द्यौः पितः, पृथिवीमातः" इत्याद्यासु श्रुतिषु। पूर्वोक्तरीत्या चोभयोश्छन्दसोरष्टादशाक्षराणि भवन्तीति तत्रापि दृष्टिरष्टादशसंख्ययाऽकृष्यते इति एकादशी प्रतिपत्तिः।

१२. अथ पूर्वोक्तरीत्या चत्वारो वेदाः, आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्ववेदः शिल्पवेदश्चेति चत्वार उपवेदाः, षड्वेदाङ्गानि, पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रं चेति चत्वायुर्पाङ्गानीति अष्टादशविद्याः स्मर्यन्ते। तासां च सर्वाङ्गामेव विवरणं पुराणग्रन्थेषु प्राप्यत इति अष्टा-दशविधविद्यानिरूपणाय प्रवृत्तानि पुराणानि तत्साजात्यादष्टादशैव भवेयुरिति युक्तिमत्। सेयं द्वादशी प्रतिपत्तिः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

१३. प्रकारान्तरेणापि विद्यानामष्टादशत्वं शक्यं व्याख्यातुम्।

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।।

इति चतुर्दश धर्मप्रधानाः ब्राह्मणैरध्येया विद्या उक्ताः। प्रकारान्तरेण तु–"आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिति तिस्रोऽर्थप्रधानाः क्षत्रियाध्येया विद्याःपरिगण्यन्ते । उभयसंकलनेऽष्टादशत्वं सिद्ध्यत्येव । यद्यपि चतुर्दशस्वपि वेदाः परिगणिताः, चतसृष्वपि च त्रयीति वेदा एव गण्यन्त इति पुनरुक्तिर्भासते । तथाऽपि धर्मप्राधान्यार्थप्राधान्यविवक्षया अध्ययनाधिकारिभेदेन च विद्याभेदोऽपि शक्यते व्यवहर्तुमिति कवि शिरोमणिना श्रीहर्षेणऽतु—

"त्रयीऽव नीताङ्गगुणेन विस्तरम्" इति प्रकारान्तरेणाऽपि विच्छित्याऽष्टादशत्वं समर्थितम् । वेदाङ्गानि हि षट् स्मर्यन्ते, त्रयश्च अङ्गविशिष्टा वेदा इति सर्वेषामङ्गानामष्टादशत्वं सङ्कलनया सिद्ध्यति। अङ्गसमष्टिरेव चाङ्गीति तस्य पृथक् परिगणनं नापेक्ष्यते । सर्वाश्चैता विद्याःपुराणेषु लभ्यन्त इति प्रतिपाद्यविषयसमसंख्यया पुराणानामष्टादशत्वं युक्तिमद्भवतीति त्रयोदशी प्रत्तिपत्तिः ।

१४. पुराणेषु अष्टादशद्वीपानि भूखण्डे आख्यायन्ते । जम्बूद्वीपमेकम्, तस्योपद्वीपान्यष्टौ-स्वर्णप्रस्थश्चन्द्र शुक्लः आवर्तनः नारमणकः मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलःलङ्का चेति संख्यायन्ते । श्री भागवते (५ स्क० १९ अ०) ब्राह्मे सप्तदशेऽध्याये, मार्कण्डेये पञ्चाशेऽध्याये, मात्स्ये चतुर्दशाधिकशततमेऽध्याये च भारतवर्षस्य नवोपद्वीपान्युक्तानि, १– इन्द्रद्वीपं, २– नागद्वीपं, ३– सौम्यः, ४– गान्धर्वः, ५ - वारुणः, ६– कशेरुमान्, ७– गभस्तिमान्, ८– ताम्रपर्णा, ९– सिंहलः, १० - कुमारिका– इति । तान्येतानि संभूयाष्टादशद्वीपानि भवन्ति ।

CC-0. Prof.Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

कविभिरपि द्वीपानामष्टादशत्वं बहुधा ख्याप्यते ।

"अष्टादशद्वीपनिखातयूपः" (रघुवंशे)

"व्यगाहताष्टादशतां जिगीषया, नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम्"
(नैषधीयचरिते)

तेषामेषामष्टादशद्वीपानां पुराणेषु वर्णनात् भूखण्डापेक्षयापि अष्टादशत्वं समर्थितं भवतीति चतुर्दशी प्रतिपत्तिः।

ता एता बहुशो जाग्रति कल्पनाः।

संख्यायास्तात्त्विकं रहस्यविवरणम्

श्रीगुरुचरणैर्विद्यावाचस्पतिश्रीमधुसूदनशर्ममैथिलमहाभागैस्तु अध्यात्ममधिदैवे च पुराणानामष्टादशत्वरहस्यं स्वीयेषु ग्रन्थेषु सम्यग् विवृतम्। तत्र पुराणोत्पत्तिप्रसंग नामके निबन्धेऽध्यात्ममष्टादशत्वोपपत्तिरित्थं प्रदर्शिता।

संख्यायामाध्यात्मिकं रहस्यम्

(ज्ञानविज्ञानशब्दार्थः)

वेदाश्च पुराणानि च ज्ञानविज्ञानशास्त्राणि। अनेकेषु भावेषु एकत्वदर्शनं नाम ज्ञानम्। एकस्यैवानेकविधत्वप्रदर्शनन्तु विज्ञानम्। सुस्पष्टं विवृतः समर्थितश्चायं ज्ञानविज्ञानशब्दार्थोऽस्माभिः महर्षिकुलवैभवे भूमिकायाम्।

तदेवात्रोद्ध्रियते। ज्ञानकर्ममयाच्चैकस्मात् पुरुषतत्वादयं समस्तोऽपि ब्रह्माण्डपदाभिधेयो विश्वप्रपञ्चः समुत्पद्यत इति। उत्पन्नश्च भूत्वा न भवति अन्ततः स्वकारणे निलीयते। विलये च स एव कारणात्मा ज्ञानकर्ममयः पुरुषोऽवतिष्ठते। तत्र पुरुषो मौलिकं तत्वम्– विश्वञ्च यौगिकम्। मौलिकं तत्वं बृंहणशीलत्वाद ब्रह्मशब्देन प्रख्यायते शास्त्रेषु। अनेक योगाज्जायमानं यौगिकन्तु यज्ञशब्देन। ब्रह्मापरपर्यायं मौलिकं तत्वं सर्वत्रानुस्यूतं सर्वाधिष्ठानं यत्र विविच्यते, तच्छास्त्रं ज्ञानप्रधानत्वाद् दर्शनशास्त्रं ब्रह्मविद्यामध्यात्मविद्याञ्च प्रवदन्ति विद्वांसः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तस्य विस्तारभूतं यज्ञापराभिधानं यौगिकं तत्वं यत्र प्रतिपाद्यते तच्छास्त्रं यज्ञविद्या, विज्ञानशास्त्रं चाचक्षते तद्विदः। ज्ञाने ब्रह्मविद्याया-मेकत्वं प्रधानम्– विज्ञाने यज्ञविद्यायान्तु नानात्वं प्रधानम्।

"एकं वा इदं विबभूव सर्वम्" यदिदं किञ्च "तस्माद्वा एतस्मा-दात्मन आकाशः संभूतः" इत्यादीनि वाक्यानि विज्ञानप्रधानानि। एष्वे-कमुद्दिश्य नानात्वं विधीयते।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "इमे लोकाः प्रजापतिः" इत्यादीनि वाक्यानि ज्ञानप्रधानानि। एषु नानाभावानुद्दिश्यैकत्वं विधीयते। तथा चैकस्य नानात्वानुभवो विज्ञानम्– नानातत्त्वेषु चैकत्वदर्शनं ज्ञानम्।

मा स्मैतज्ज्ञानविज्ञानयोः स्वरूपं स्वोत्प्रेक्षितं निराधारं वा मन्यन्त विद्वान्सः। अर्जुनं प्रति-विज्ञानसहितं ज्ञानमुपदेष्टुं प्रतिज्ञाय भगवत्श्रीकृष्णोक्त्याप्येतस्यैवार्थस्य स्फुटं प्रतिपत्तेः।

तथा हि गीतायाः सप्तमाध्यायस्य द्वितीयश्लोके "ज्ञानं तेऽहं सवि-ज्ञानम्" इत्यादि प्रतिज्ञाय—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय॥
(भगवद्गीता ७ अ० १०)

इत्येवमेकस्थानेऽनेकाभक्तावगमप्रवणं विज्ञानमुपदिश्य—

"अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।"
"मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय॥"

"रसोऽहमप्सु कौन्तेय," इत्यादिनाऽनेकस्यैकात्मतावगतिप्रधानं ज्ञानमुपदिश्य। पुनरपि—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये

मत्त एवेति तान् विद्धि" इत्येवं विज्ञानमुपक्रम्य "बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति"—इत्येवं सर्वस्य एकवासुदेवात्मकत्व–प्रतिपत्तिरूपे ज्ञान उपसंहृतम्।

तथैव नवमाध्यायेऽपि "ज्ञानं विज्ञानसहितम्" इति प्रतिज्ञाय,
" मया ततमिदं सर्वं जगद् "
इति विज्ञानेनोपक्रम्य,

" सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि "

इति ज्ञानमुपदिश्य " एकत्वेन पृथक्त्वेन " इति द्विविधमप्युपासनमुपदिष्टम्। ज्ञाने विज्ञानमुपयुज्यते। न हि विनेया एकपदे एवास्य बहुधा विभिन्नस्य जगतो मूलमेकं ग्राहयितुं शक्याः, विज्ञानसाहाय्येन तु शक्याः, अत एव भगवता विज्ञानं पूर्वमुक्तम्। " विज्ञानसहितम् " इति विशेषेण विषया विज्ञानोपन्यासेन तस्या प्राधान्यञ्च निर्दिष्टम्— ज्ञानपयोगित्वात्तस्य।

अतिमहतो वृक्षस्यातिलघुबीजात्मकता तस्य प्ररोहादिक्रमेण नानारूपतानिदर्शनपुरस्सरमेव कथञ्चिद् ग्राहयितुं शक्या, नास्त्युपायान्तरम्।

एष एवार्थो भागवतस्यैकादशे स्कन्धे ऊनविंशेऽध्याये सुस्पष्टतया प्रतिपादितः। तथा हि—

नवैकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै।
ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम्॥
एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत्।
स्थित्युत्पत्त्यप्ययान् पश्येद् भावानां त्रिगुणात्मनाम्॥

अयमर्थः— स्थूणारुन्धतीन्यायेन साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामेकादशकं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वा, इदं सर्वम् – नवकं वा, पञ्चकं वा— इत्येवमनन्तानां पदार्थानां वर्गी-

करणेनान्ते "एकमिदं सर्वम्" इत्येवमीक्षेत – येन तज्ज्ञानमित्युच्यते। यद्यपि विज्ञानमप्येतदेव, परं प्रकारोऽत्र भिद्यते, येनैकेनैव त्रिगुणात्मनामगण्यानां भावानामुत्पत्तिस्थितिप्रलयान् यत् पश्येत्तद् विज्ञानमित्याख्यायते।

ज्ञानस्यास्मदुक्तं लक्षणन्तु स्पष्टं श्रीमद्भगवद्गीतासु—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्॥

(गीता १८।२)

संक्षिप्यायमभिप्राय, एकस्मादनेकस्मिन्नवतरणं विज्ञानं यज्ञविद्या। अनेकस्माद् एकस्मिन्नारोहणं ज्ञानं ब्रह्मविद्या। ब्रह्मविद्यातिरिक्ताः सर्वा अपि विद्याः अनेकत्वाप्रधान्याद् यज्ञविद्यायामर्थाद् विज्ञान एवान्तर्भवन्ति। आभ्यामेव ज्ञानविज्ञानाभ्यां मानवस्य कृतकृत्यता सम्पद्यते। तत्र विज्ञानमभ्युदयहेतुः, ज्ञानन्तु निःश्रेयसजनकम्। इदमेव ज्ञानविज्ञानयुगलं मुख्यो धर्मः। अस्यैव "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" इत्यभ्युदयनिःश्रेयससाधकत्वमाह-भगवान् कणाद इति कृतमप्रकृतविस्तरेण।[1]

---

१. कूर्मपुराणेऽपि—

यया स देवो भगवान् विद्यया वेद्यते परः।
साक्षाद्देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम्॥
चतुर्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः।
विज्ञानमिति तद् विद्याद् येन धर्मो विवर्धते॥

(उ० ख० १५ अ०)

श्रीज्ञानदेवैरपि श्रीमद्भगवद्गीतां व्याचक्षाणैरुक्तम्—

तीरलग्नातरिरिव कुण्ठीभवति शेमुषी ––
परावृत्तपदो दूराद् विचारश्चापसर्पति॥
तर्कोऽपि नैवोत्सहते यत्र तज्ज्ञानमर्जुन।
प्रपञ्चोऽन्यत्तु विज्ञानमज्ञानं तत्र सत्यधीः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तत्रेयं मूलान्वेषणक्रमेणैकतत्वगतिः सूक्ष्मेषु तत्वेषु न प्रायेण प्रत्यक्षसाध्या। अनुमानं शब्दं वाऽवलम्ब्य विचारेणैवेयं प्रादुर्भवति। बुद्धिमनुसृत्य च निष्पाद्यमाने निर्णये प्रक्रियाभेदा मतभेदाश्च भृशं विजृम्भन्त एव, एवं बुद्धीनामैकरूप्याभावे मतैक्यस्य तत्र दुर्लभत्वात्। प्रक्रियाया ऐक्यन्तु संभावयितुमप्यशक्यमिति।

अथैकस्यानेकरूपतायान्तु प्रत्यक्षं सुस्पष्टं प्रभवत्येवेति परोक्षरूपे प्रतिभासे ज्ञानशब्दः, प्रत्यक्षे प्रत्यक्षायिते वा स्फुटे प्रतिभासे तु विज्ञानशब्दः स्थाने प्रवृत्तः। अतएव—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

(गीता ७-२)

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

(गीता ८ ८।१)

इत्यादिषु विज्ञानसहितं स्वानुभवसंयुक्तमिति श्रीशङ्कराचार्यप्रभृतिभिर्भाष्यकृद्भिर्व्याख्यातम्। एकमूलान्वेषणं केवलं मोक्षोपयोगि। एकस्यानेकरूपताविचारस्तु व्यवहारोपयोगितामप्यावहतीति क्रमेण व्यवहारोपयोगिनि ज्ञाने विज्ञानशब्दः, मोक्षोपयोगिनि ज्ञाने तु ज्ञानशब्दो निरूढिगतः। तदभिप्रायेणैव—

"मोक्षेधीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः।"

इति तत्र भवानमरसिंहो बभाषे। अनेनैव च पथाऽद्यत्वे वस्तुतत्वान्वेषणपरं "साइन्स" इति नाम्ना प्रसिद्धं शास्त्रं विज्ञानशब्देनैव संस्कृतविद्वांसः परिचिन्वन्ति। तत्राप्येकत्वस्य विस्तार एव शिक्ष्यत इति। वस्तुतस्तु मोक्षोपयोगित्वमपि यत्र न केवलं परोक्षविधया, अपि तु अनुभवपर्यवसायितया प्रतिपाद्यते, तदा तदपि विज्ञानपदव्यपदेश्यतामेवावगाहते। तत एव तु भगवद्गीतासु "ज्ञानं विज्ञानसहितम्" इत्याद्यादिष्टम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

न हि शिल्पशास्त्रयोस्तत्र काऽपि कथा, अनुभवावसानमेव च तत्वज्ञानमविद्यानिवर्तकमाचक्षत आचार्याः । तेन ज्ञानस्याप्युज्ज्वलता विज्ञानेन संपाद्यते । किञ्च परोक्षप्रतिभासरूपे ज्ञाने ये मतभेदाः प्रक्रिया-भेदा वा विभिन्नदशां विजृम्भन्ते, ते तत्र दर्शनसमाख्यां लभन्ते । तेषु दर्शनेषु दृष्टिभेदप्रधानेषु पारम्परिकानां वाक्कलहानामपि भवति संभावना । विज्ञाने त्वनुभवावसाने प्रत्यक्षायिते प्रतिभासे न काऽपि विचारभेदस्यापि संभावना, दूरे तु विचारभेदमूलकाः कलहा इत्यहो विज्ञानस्य महिमा । एवमयं विज्ञानशब्दो दार्शनिके विचारे अनुभवपर्यव-सायितायां निरूढिं गत इति साधितम् । इत्थं क्रमेण विज्ञानशब्दस्यार्थ-विकासो न तु मूलतोऽनैकार्थतेति भाव्यं सुधीभिः ।

अत्र केचिन्महानुभावा विद्वांसो विप्रतिपद्यन्ते-यत् श्रीशङ्कर-भगवत्पादैर्गीताभाष्ये यद् व्याख्यातं-विशिष्टं ज्ञानं विशेषेण ज्ञानम्-अनुभवावसानं प्रत्यक्षायितं ज्ञानं स एव विज्ञानशब्दार्थो दार्शनिकप्रक्रियाय ग्रहीतव्यः । लोकेऽत्वर्थान्तरपरो भिन्न एव विज्ञानशब्दोऽस्तु एकस्यानेक-रूपताप्राप्तिरूपाऽर्थे तु न प्रमाणम् इति ।

श्रीभागवत्श्लोकमपि ते श्रीश्रीधरस्वामिरीत्या व्याख्याय अनु-भवावसानता रूप एवार्थेऽनुकूलं मन्यन्ते ।

श्रीश्रीधरस्वामिभिर्हि—

एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ।

इति भागवतपद्यार्द्धं यद्-यदा येनैकेनानुगतान् एकात्मकान् भावान्, पूर्वमैक्षत तांस्तथा पूर्ववन्मेक्षेत (किं तु तदेकं परमकारणं ब्रह्मैव) तदा एतदेव विज्ञानमुच्यते–"इत्येवं व्याख्यातम् ।

"स्थित्युत्पत्त्यप्ययान् पश्येद् भावानां त्रिगुणात्मनाम्"

इत्युत्तरार्द्धन्तु परान्वयितया योजितम् । तेन भेदनिरसनपूर्वकमेकत्व-दर्शनं विज्ञानपदार्थः सिध्यति । अनुभवावसानेऽप्येकत्वमेवावशिष्यते,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

जगत्प्रतिभानविलोपस्तत्र भवतीति श्रीशङ्करभगवत्पादैरेकवाक्यता सिध्यति ।

अत्रेदमुच्यते, श्रीगुरुचरणानुमतेऽस्माभिः पूर्वमुक्ते विज्ञानशब्दार्थे सन्त्यनेका युक्तयः । तथाहि-

(१) श्रीभागवतपद्यस्यास्मदुक्तेऽर्थे स्फुटं भासमाना पूर्वोत्तरार्द्धयो-रेकवाक्यता सिध्यति । पक्षान्तरे तु सा समुच्छिद्यते । उत्तरार्द्धस्य पृथक् करणात् ।

(२) श्रीभागवतपद्येऽस्मदुक्तेऽर्थे कोऽप्यध्याहारो न कर्तव्यो भवति । पक्षान्तरे तु (किन्तु तदेकं परमकारणं ब्रह्मैव) इत्यादि विज्ञान-शब्दार्थस्फुटीकरणमध्याहारलभ्यमेव । दोषश्चायमध्याहारः सत्यां गता-विति न तिरोहितं मीमांसाचणानाम् ।

(३) श्रीश्रीधरस्वाम्याद्यभिमते विज्ञानशब्दार्थे परिगृहीते विज्ञा-नस्य प्राधान्यं स्यात् । ज्ञानन्तु तदर्थमिति गौणं स्यात् । अनुभवावसायताया एव मुख्योद्देश्यत्वात् ।

"ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानम्"
(श्रीमद्भागवद्गीता)

इति विज्ञानस्याप्रधानता दर्शितेति तद्विरोधः स्यात् । अस्मत् पक्षे तु एकस्यानेकरूपतां ज्ञात्वा परत एकतादर्शनमेव मोक्षोपयोगीति ज्ञानस्य प्राधान्यं सिध्यति ।

(४) पक्षान्तरेऽनुभवपर्यन्तं ज्ञानमेव विज्ञानमिति स्वीकृते विज्ञानन्न केवलं शाब्दज्ञानमिति तस्य "वक्ष्याम्यशेषतः" (भगवद्गीता ७ अध्याये) इति वचनकर्मता न युज्येत । न हि विज्ञानं वक्तुं शक्यम्, अपि तु निदिध्यासनैन प्राप्यम् ।

अस्मत् पक्षे तु एकस्यानेकरूपता, अनेकेष्वेकस्यानुप्रवेशश्चेति द्वयमपि वक्तुं शक्यमेव । यथा च तत्राऽध्याये द्वयं प्रतिपादितम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तथा च स्फुटीकृतमेतत् पूर्वमिति न काप्यनुपपत्तिः।

(५) पक्षान्तरे ज्ञानं विज्ञानस्वरूप एवानुप्रविष्टम्, शाब्दज्ञानस्यैवानुभवपर्यन्तत्वे विज्ञानरूपतालाभात्। ततश्च "ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्" (भगवद्गीता १८ अध्याय, ३२ श्लोक) इत्यादौ द्वयोः पृथगुक्तिरनर्थिकैव । अस्मत् पक्षे तु ज्ञानप्रकारभेदाद् द्वयमपि सम्यगुक्तम्।

(६) इदञ्चाप्यनुसन्धेयम्, इदं गीतावचनं (१८।४२) व्याचक्षाणैर्महामहिमभिर्बहुभिर्व्याख्यातृभिरस्मदुक्त एव विज्ञानशब्दार्थो भङ्ग्याङ्गीकृतः।

तथाहि श्रीमधुसूदनसरस्वतीमहाभागाः– "विज्ञानं कर्मकाण्डे यज्ञादिकर्मकौशलम्" "ब्रह्मकाण्डे ब्रह्मात्मैक्यानुभवः" इति व्याचक्षाणाः कौशलमेव विज्ञानं मन्वानाः वीत्युपसर्गस्य विशेषार्थतां ध्वनयन्तः सर्वं शिल्पशास्त्रादिकं विज्ञानेऽन्तर्भावयन्ति।

यत्पुनर्वैदिकीनाञ्च लौकिकीनाञ्च सर्वशः।
कारणं सर्वविद्यानां विज्ञानमिति कीर्त्यते॥

इतिदेवलवचनमुपन्यस्य च तदेव द्रढयन्ति। तेनानेकविषयं ज्ञानं विज्ञानमिति स्पष्टमेव प्रतिपद्यते। ब्रह्मकाण्डं पृथगिव विज्ञानशब्दार्थस्तैर्विवक्ष्यते, न सोऽपि पृथक् किन्त्वत्रैवान्तर्भवतीत्युपरिष्टाद् वक्ष्यते।

श्रीनीलकण्ठाचार्याः श्रीशङ्करानन्दाः, श्रीसदानन्दाश्चैतमेव पन्थानमनुसरन्ति । श्रीराघवेन्द्रास्तु स्वीये "अर्थसंग्रहे" "ज्ञानं सामान्यतः, विज्ञानं विशेषतः" इति व्याख्यायास्मत् पक्षं द्रढयन्ति।

"विज्ञानं परतत्वगतासाधारणविशेषविषयकं ज्ञानम्" इति भगवद्रामानुजाचार्या अपि विशेषार्थविषयकं ज्ञानमेव विज्ञानमाहुः। परतत्वस्य ज्ञेयेषु मुख्यतया परतत्वगता एव विशेषास्तैर्विषयत्वेन गृहीता इत्यन्यदेतत्, शब्दवृत्तिस्तु परावरतत्वसाधारण्येनैव।

CC-0 Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

(७) पक्षान्तरे विज्ञानशब्दस्यानेकार्थताऽवश्याऽभ्युपगन्तव्या स्यात् "मोक्षेऽन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः" इति कोशे लौकिकविद्यानामपि विज्ञानशब्दवाच्यताया अपरित्याज्यत्वात्। अस्मत् पक्षे तु "एकस्यानेकताप्रतिपत्तिर्विज्ञानम्" इत्युक्ते नैकत्वसहचराणां शिल्पादीनामपि विज्ञानेऽन्तर्भावादेष एवार्थ उभयत्रानुगतो भवतीति परमानुकूल्यम्।

सत्यां गतौ अनेकार्थतास्वीकारस्य मीमांसकैः कदर्थितत्वादिति।

विज्ञानशब्दस्य हि क्रमिको विकास एवास्मत्पक्षे सिद्ध्यति- न तु मूलत एवोच्छृङ्खला अनेकर्थता।

(८) अध्यारोपापवादन्यायेन गुरूपदेशः फलेग्रहिर्भवतीति वेदान्तप्रक्रिया। तत्राध्यारोपो विज्ञानम्-अपवादश्च ज्ञानमिति सैव प्रक्रिया गीतासु भगवताप्याश्रितेति सम्यग् युज्यते। इयमेवाध्यारोपापवादप्रक्रिया प्रभवत्यनुभवावसानतां प्रापयितुमित्यभिप्रायेण विज्ञानसहितं-स्वानुभवयुक्तम् इति श्रीशङ्करभगवत्पादानां सप्तमाध्यायद्वितीयश्लोक गीताभाष्यमपि नास्मत्पक्षे विरुध्यते।

तत्रैव "विज्ञानम् विशेषज्ञानम्", विज्ञानं विविधतया चिदचिद्रूपतया च तत् तद्विभूतिधर्मतयावान्तरविशेषैश्च यथार्थज्ञानम्, "विज्ञानसहितं ज्ञानं विशेषेण ज्ञातव्यसहितं माहात्म्यम्-सामान्यविशेषमाहात्म्यञ्चेत्यादि व्याचक्षाणाः श्रीमदानन्दतीर्थपादाः, श्रीवल्लभाचार्यपादाः, श्रीराघवेन्द्राश्च स्फुटमस्मदनुकूलाः। विज्ञानं- हि विविक्ताकारविषयं ज्ञानम् इति श्री भगवद्रामानुजाचार्या अपि एतदेव समर्थयन्ते, सामान्यविशेषरूपताया एव तैरग्रे स्फुटीकृतत्वात्। श्री ज्ञानदेवानां संमतिस्तु पूर्वमेवोद्धृतेति नाम्रेडनमपेक्षितम्।

विशेषेण ज्ञानं विशिष्टं ज्ञानमिति श्रीशङ्करभगवत्पादानां शब्दार्थः। विशेषेण ज्ञानं विशेषसहितसामान्यज्ञानं विशेषाणामपि ज्ञानमिति श्रीगुरुचरणानां शब्दार्थ इति नात्र कोऽपि महान् विरोधो येन कोलाहल उत्तिष्ठत्। वीत्युपसर्गस्योभयत्राऽपि विशेषार्थकत्वात्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

(१०) किञ्च पाश्चात्यानां "साइन्स" शब्दस्यापि विशेषेण ज्ञानमेव शब्दार्थः। ते च विभिन्नपदार्थज्ञान एव शब्दमिममुपयुञ्जते। संस्कृतस्याप्ता विद्वांसोऽपि शब्दार्थबोधकतया विज्ञानशब्दमेव प्रयुञ्जते इति तेषामप्यानुकूल्यमत्रैव सिद्ध्यति।

तदित्थमनेकोपपत्ति बृंहितं श्रीभागवतश्लोकयोरस्मत्कृतं व्याख्यानं न दूष्यतामर्हतीति विभावयन्तु सुधियो महाभागाः। श्रीभागवतव्याख्यासु च श्रीमच्छुकदेवकृतऽसिद्धान्तप्रदीपेऽर्थोऽयमनुमतः "यत्– यदा एकेन तथाऽपेक्षेत परमकारणेन, यद्वैक्यं न पश्येत् किन्तु तत्तदसाधारणस्वरूपगुणादिबुभुत्सया वैलक्षण्यं पश्येत् एतदेव हि विज्ञानम्" इति तत्र व्याख्यातत्वात्। समानकर्तृककूर्मपुराणवचनं च यत्पूर्वमेवोद्धृतम् तेनास्मदुक्त एवार्थः स्फुटीभवति। न तत्समक्षं विरुद्धव्याख्यातृवचसां किमपि मूल्यम्।

एवं लौकिक्यां भाषायामस्मदुक्तो विज्ञानशब्दस्यार्थः सर्वत्र समनुगच्छतीति दिङ्मात्रेण निरूपितम्। वैदिक्यपि प्रक्रियान्ते सङ्क्षेपेण निदर्श्यंते। उपनिषत्सु आत्मवाचकः, पञ्चसु कोशेषु अन्यतमकोशवाचकश्च विज्ञानशब्दः सुप्रसिद्धः। तत्र विज्ञानं जीवः, प्रज्ञानं प्राज्ञो वा परात्मेति श्रीशङ्करभगवत्पादानामभिप्रेतम्। अत्रापि एकस्मादुद्भूताः– औपाधिकेन रूपेण विभिन्नतां गता अनेकत्वं प्राप्ता जीवविज्ञानविषया इति विज्ञानशब्देन गृहीताः, सर्वत्रानुगतं परतत्वन्तु ज्ञानरूपमिति प्रज्ञानपदाभिलप्यमिति युज्यतेऽस्मदुक्तार्थसङ्गतिः।

पञ्चसु कोशेष्वपि विज्ञानमयकोशो बुद्धिरूपत्वादनेकतां भजते। आनन्दमयस्तु सर्वत्र निगूढ़ एक एवेति स्फुटं श्रीविद्यारण्यस्वामिप्रभृतिभिर्व्याख्यातम्। अत्राप्यनेकरूपत्वाद् विज्ञानविषयः कोशो विज्ञानपदभागिति स्फुटास्मदर्थसङ्गतिः। एवमन्यत्राप्यूह्यम्।

तत्सर्वत्रानुगतं विज्ञानशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमेकं संभवदप्युपेक्ष्या-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

नेकार्थता तस्य शिरसि कुतः प्रसह्य निपातनीयेति नास्माभिर्बोद्धुं पार्यते। विद्वांसः पाठकाः सुविचार्यं निर्णेष्यन्त्येतदिति कृतं विस्तरेण।

ते इमे-ब्रह्मयज्ञापरपर्यायज्ञानविज्ञाने एव वेदेषु पुराणेषु च प्रतिपाद्ये। ज्ञाने ईश्वर-स्तदंशभूत आत्मा च मुख्यतया निरूप्यत इति श्रीभागवतोक्तदशलक्षणप्रकरणे दर्शितम्— "दशमस्यविशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्" इत्यादि।

आत्मा तावदखण्ड एको निर्धर्मक इति श्रुतिषु बहुधा गीतः, परं तस्य वाङ्मनसाऽतीततया न व्यवहारास्पदत्वमिति सायतन एवायं वाग्विषयतया श्रुतिषु पुराणेषु च वर्ण्यते।

आत्मनोऽष्टादशविधत्वम्

सायतनश्च ईश्वरो जीव इति द्वेधा व्याक्रियते। सोऽयमीश्वरःस्वयमरूपो ब्रह्मशब्दवाच्यया प्रकृत्या शुक्रेण च जगदुत्पादयति। तदुक्तं श्रुत्या— "तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते" इत्यादि।

उत्पादिताश्चार्थाः देवा भूतानि इति द्विधा भिद्यन्ते। तेन (१) ब्रह्मपरिस्थितिः, (२) देवपरिस्थितिः, (३) भूतपरिस्थितिः, इति परिस्थितित्रयं लभ्यते।

(१५) तत्र ब्रह्म तावदमृतवाच्यं निर्धर्मकं निर्विशेषपदेन शास्त्रेषु व्यवह्रियते। "रसो वै सः" इति श्रुतौ रसपदेनापि स व्यपदिष्टः। तच्छक्तिश्च मायापर्याया बलपदव्यपदेश्या। उभयो रसबलयोस्सामञ्जस्येन यत्र स्थितिः स उभयात्मकः परात्परः, यो "मायाशबलितं ब्रह्मविशिष्टं ब्रह्म" इत्याख्याया वेदान्तेषु निरूप्यते। तदनु पुरुषश्च (१) अव्ययपुरुषः, (२) अक्षरःपुरुषः, (३) क्षरपुरुषश्चेति त्रिधा विवृतः श्रीमद्भगवद्गीतासु। तेषाञ्चैषां त्रयाणां प्रत्येकं पञ्चकलत्वं श्रुतिष्वाम्नातम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

आनन्दः, विज्ञानम् मनः, प्राणः, वाक् इति पञ्चाव्ययपुरुषकलाः, ब्रह्मा, विष्णुः इन्द्रः, अग्निः, सोम इति पञ्चाक्षरपुरुषकलाः। प्राणः, आपः वाक्, अन्नादः, अन्नम्-इति पञ्च च क्षरपुरुषकलाः, पुरुषत्रयस्य पञ्चदशकलाः, षोडशःपरात्परः, तत्रानुप्रविष्टः रसो बलञ्चेति द्वे मूलतत्त्वे इति संभूयाष्टादशात्मकममृतस्वरूपमाम्नायते । तच्चेश्वरपदेनाऽपि तत्र तत्र व्यवहृतम् । सर्वञ्चेदं श्रुतिमूलकमीश्वरस्वरूपं पुराणेष्वपि सम्यग् व्याख्यातम्– इति व्याख्येयस्याष्टादशविधत्वात् पुराणानामपि संकेतविधया ऽष्टादशविधत्वं स्थापितं भगवता व्यासेनेति ।

जीवात्मनोष्टादशविधत्वम्

(१६) अथोक्तपरिस्थितित्रयविशिष्टस्य सर्वप्रजापतिरूपस्य सत्यपदवाच्यस्याप्यष्टादशत्वं प्रकारान्तरेण विव्रियते । परात्परः, अव्ययः, अक्षरः, क्षरः, इति चतुर्धा ब्रह्मपरिस्थितिरुक्ता । रसबलयोस्तु परात्परस्वरूपे प्रविष्टत्वान्नात्र पृथक् परिगणनम् । पुरुषत्रयस्य कला अपि च न पृथक् पृथक् परिगण्यन्ते इति चतुर्धा ब्रह्मपरिस्थितिराख्यायते ।

देवपरिस्थितिश्च पञ्चधा द्रष्टव्या— "स्वयम्भूः, परमेष्ठी, सूर्यः चन्द्रः, पृथिवीः"– इति-ईश्वरपक्षे समष्टिभूतास्तदायतन भेदाः । शान्तात्मा, महानात्मा, विज्ञानात्मा, प्रज्ञानात्मा, प्राणात्मा, इति पञ्च च तत्स्वरूपं शक्यते ग्रहीतुमिति प्रागवोचाम । तेनैतदायतनविशिष्ट एवात्मा ईश्वरपदेन जीवपदेन व्यपदेश्य इत्यपि– प्राङ्निरूपितम् ।

समष्टिभूतेश्वरांशा एव जीवायतनरूपेण व्यावहारिकाः पृथक्-पृथक् आत्मनः स्वस्वतन्त्रं परिचालयन्ति । तत्र प्राणात्मा तावदिन्द्रियतत्परिचालकशक्त्यवच्छिन्नचैतन्यरूपः, प्रज्ञानात्मा मनोवच्छिन्नचैतन्यम्– विज्ञानात्मा बुद्ध्यवच्छिन्नं चैतन्यम्,– स एव क्षेत्रज्ञ इत्याख्यायते । महानात्मा ततोऽपि परः परमेष्ठिनोंऽशभूतः, आकृतिप्रकृत्यहंकृतिनिष्पादकमहदवच्छिन्नचैतन्यम्– शान्तात्मा च स्वयम्भूमण्डलस्यांशभूतः सर्वेष्वात्मसु सूत्ररूपेणानुस्यूतोऽन्तर्यामिरूपः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इयमात्मनां परिस्थितिः कठोपनिषदि समाख्याता—

इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्नपरं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ।

इह निरूपयिष्यमाणभूतात्मापेक्षयेन्द्रियाणां परत्वमुक्तम्— तदनु च मन आदीनां स्वस्वनाम्नैव संनिवेशः कृतः । अत्र यद्यपि बुद्धिर्महानात्मा चेति व्यष्टिसमष्टिरूपेण भाष्यकृद्भिर्व्याख्यातौ परं व्यष्टिसमष्ट्योरत्र प्रसङ्गाभावान्महानात्मा पृथगेवानुसन्धेयः । स्पष्टीकृतश्चायं महानात्मा श्रीभगवद्गीतासु

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।
सर्वयोनिषु कौन्तेय, मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।

(१४अ०३,४)

इह हि स्पष्टमाकृतिसम्पादकत्वं महदात्मनो विवृतम् । तस्य तस्य भूतस्य यादृशी प्रतिनियताऽऽकृतिः, सा सर्वाऽपि परमेष्ठिनोंऽशभूतेन महदात्मना सम्पाद्यते । "या यस्य प्रकृतिः स्वकर्मजनिता सा किं परित्यज्यते । इत्यादिषु व्यवहृता बुद्ध्यवस्थाविशेषरूपा तत्तत्प्राणिनियता स्वभावापरपर्याया प्रकृतिश्चाप्यनेनैव महता सम्पाद्यते ।

सर्वेष्वात्मस्वहंकाररूपेणापि चायमनुस्यूत इत्याकृतिमहान् (१) प्रकृतिमहान् (२) अहङ्कृतिमहान् (३) इति त्रेधाऽयं व्याक्रियते ।

"बुद्धेरात्मा महान् परः" इति स्मृतौ स एवायं समाम्नातः । शान्तात्मा तु-अव्यक्तपदेनात्र निर्दिष्टः, यो हि सूत्ररूपतयोपरि व्याख्यातः । सैषा पञ्चधा [illegible] देवपरिस्थितिः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अथ भूतपरिस्थितिर्नंवधा व्याक्रियते। आकाशवायुतेजोऽपपृथिवीनाम्ना पञ्चमहाभूतानि प्रसिद्धानि। तेष्वनुस्यूतमात्मचैतन्यं भूतात्मपदेन व्यवह्रियते। तत्र शरीराकारपरिणतेषु बाह्यभूतापेक्षया वैलक्षण्यं दृश्यते। लोष्ठप्रस्तरादिषु हि परस्परवैलक्षण्येन तादृशा विभागाः नाविर्भवन्ति-यादृशाः शरीरे हस्तपादरूपाः परस्परमपरिवर्तमाना रसरूधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राण्यन्योन्यरूपेण परिवर्तमानानि धातुपदवाच्यानि पृथगाविर्भवन्ति। तद् वैलक्षण्यसाम्यादेकमप्यस्ति किञ्चिदात्मचैतन्यम्। तदेव शरीरात्मेति व्यवह्रियते। सोऽयं शरीरात्मा सर्वविधचेष्टाभ्यः सर्वविधशुभाशुभकर्मकर्ता जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपावस्थात्रयविशिष्टश्च।

एतत् सहचरोऽन्योस्ति हंसात्मा, यः पुराणोत्पत्तिप्रसङ्गे श्रीगुरुचरणैरेवं व्याख्यातः।

हंसात्मा

अथैष हंसात्मा पृथिव्यग्निप्राणोपजनितैरन्नरसमयैर्लोमत्वगसृग् मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्ररूपैः शरीरधातुभिरपरामृष्टोऽपि पाञ्चभौतिकवायुशरीरो हिरण्मयेन सूर्यज्योतिषा विद्यायोगाद् बुद्धिसम्पन्नो नक्षत्रमयेन चन्द्रज्योतिषा प्रज्ञानयोगान् मनः सम्पन्नोऽप्युपपद्यते।

किन्तु कर्मजसंस्कारापरिग्रहादेष लोकान्तरं नोपैति। आकल्पं स इहैव पृथ्वीलोके पृथिव्या ऊर्ध्वं चन्द्रादधस्तात् सर्वत्र यथेच्छं पृथिवीं चन्द्रमसं चान्तरा वायुगतो जीवनं धत्ते। तस्य सर्वविधकर्मभोगः क्षणमात्रेणोपसम्पद्यते इति केचित् मन्यन्ते।

स एष आत्मा न स्वपिति। सुप्तस्य तु शरीरात्मनः शरीरं परिरक्षितुमन्वीक्षते। यदा हि दन्दशूकादिः कश्चन सुप्तं पुरुषमाक्रामति तदा प्रायेण पुरुषोऽकस्मादेव विबुध्यत इति दृश्यते। जागरणसमयमनुसन्धाय सुप्तश्च तस्मिन्नेव समये प्रबुध्यत इति तदेतत्सर्वं हंसात्मकृतमेव द्रष्टव्यम्। तमेतं हंसात्मानं महर्षिः श्रुतौ दर्शयति-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

स्वप्नेन शारीमभिप्रहत्यासुप्तः सुप्तमभिचाकशीति ।
शुक्रमादाय पुनरेति स्थानं हिरण्मयः पौरुष एक हंसः ।।१।।
प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिः कुलायादमृतश्चरित्वा ।
स ईयते अमृतौ यत्र कामं हिरण्मयः पौरुषः एक हंसः ।।२।।

कर्मात्महंसात्मनां देवताभूतसंसृष्टिकृतैतच्छरीसंगठनं कुलायो नाम। स कुलायस्त्रयाणामप्येषामात्मनामेक एवोपपद्यते। तत्रैष चित्याग्निमयः शरीरात्मा जीवितावस्थायां स्वकुलायाद् बहिर्भवितुं न शक्नोति। हंसात्मा त्वेष भौतिकमर्त्यंयवायुमयः किञ्चित्कार्यमुद्दिश्य तस्मात् कुलायाद् बहिर्भवन् अशरीर एव वा वायुशरीरो वा चन्द्रमसा कृतात्मत्वादमृतो वायुभूमौ यथेच्छं विहरन् स्थानान्तरतः स्वाभीष्टं शुक्रं गृहीत्वा पुनः कुलायरूपे प्राक्तनं स्वं स्थानमुपैति। स एतत् कुलायाद् वहिर्भवन्नपि सौम्यप्राणसूत्रेण संदधानः स्वमेतत् कुलायं शश्वदेवाधानेन परिरक्षति, न तु कदाचिदेकान्ततस्त्यजति। अपि चैष बहुवत्सरपूर्वमपि कृतं कर्म स्मरन्नेवास्ते। मरणानन्तरं तु कुलायविध्वंसादन्यत् कुलायं निर्माय तत्र प्रविष्टः कदाचित्प्रत्यक्षो भवति, संभाषते च। यथा महाभारतयुद्धोत्तरं मृतपुरुषान् भगवान् वेदव्यासो [गान्धारीप्रभृतिभ्यः पाण्डवेभ्यश्च दर्शयामास इति महाभारताऽश्रमवासिपर्वणि विवृतम्। दद्दर्शनं हंसात्मनामेव संभवति। स एष मनुष्यस्य मरणाद् बहुबर्षोत्तरमपि स्मृतमात्रः कदाचिद् बुद्धियोगप्रकारमार्गेण प्रत्यक्षः संभवति, संभाषणादि लोकव्यवहारांश्च निर्वाहयति।

यथाऽद्यत्वे तत्र तत्र मण्डल्यामात्मनामाह्वानं प्रचलति - तत्रागमनमपि हंसात्मनामेव संभवति।

शरीरमिदं मर्त्येन चित्याग्निना कृतरूपम्। एतच्छरीरपरिचालको मृताग्निस्तु त्रिभीरूपैरस्मिन्ननुप्रविष्टः - वैश्वानरः, तैजसः, प्राज्ञश्चेति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वैश्वानरः शरीरावयवान् यथास्थानं संघटयति, अप्रच्युतांश्च रक्षति।

सोऽयं लोष्ठप्रस्तरादिसाधारण्येन सर्वेष्ववयविष्वभिव्याप्तः। द्वितीयस्तैजसः शरीरं क्रमेण वर्धयति। सोऽयं वृक्षपर्यन्तेषु स्थितः, यत्र यत्र वृद्धिर्दृश्यते।

तृतीयस्तु प्राज्ञः, ज्ञानेच्छासुखदुःखादीनामाश्रयः। त एते त्रयो यज्ञात्मान उच्यन्ते, एतैरेव प्रतिक्षणं शारीरस्य यज्ञस्य सम्पाद्यमानत्वात्। एते च क्रमेणाग्निवायुसूर्याणामंशाः श्रुतिषु प्रतिपादिताः। तत्रायं प्राज्ञः पुनस्त्रेधा भिद्यते, कर्मात्मा, चिदाभासः, चिदात्मा चेति। यत्प्रेरितं शरीरं शुभाशुभानि कर्माण्यनुतिष्ठति, तत्तत्कर्मजनितोऽपूर्वपदेन मीमांसकैराख्यातः पुण्यपापरूपः संस्कारश्च यस्मिन् समवैति, स कर्मात्मा नाम। मुख्यस्य चिदात्मनोऽन्तःकरणे प्रतिविम्बभूतः प्रतिशरीरं भिन्नः शरीरे चैतन्याधायको जीवपदव्यपदिष्टश्चिदाभासः। योऽयं वेदान्तग्रन्थेषु वहुधा विवृतः। एतत् प्रतिविम्बाधायको विम्बस्थानीयस्तु चिदात्मा, य ईश्वरांशः सर्वप्राणिष्वभिव्याप्त एक एव। अयमेव प्रत्यगात्मेति पदेन वेदान्तिभिर्व्यवह्रियते।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

इति श्रीभगवद्गीतयाऽप्ययमेव प्रतिपादितः। स चायं विभूतिः, श्रीः ऊर्गिति त्रिभीरूपैरभिव्याप्नोति। ईश्वरेण हि ब्रह्म बलम्, क्षत्रबलम्, विड्बलतिति त्रिविधानि बलान्यादावेवोत्पादितानि। तत्र ब्रह्मबलं विभूतिरिति क्षत्रबलमूर्गिति, बिड्बलं श्रीरित्याख्यायते। एषां सर्वत्रसद्भावेऽपि "प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति" इति न्यायमवलम्ब्य एकैकस्य प्राधान्येन ब्रह्मणो क्षत्रियो वैश्य इति त्रिधावर्णविभागः श्रुतिस्मृतिष्वाख्यातः। एषामेव च यत्रोत्कर्षः सोऽयमीश्वरविभूतिरीश्वरावतारो वा गण्यते।

तदुक्तं भगवद्गीतासु—

यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विभूतिमदित्यादावतिशायने मतुब्द्रष्टव्यः। विभूत्यादीनां सर्वप्राणिषु व्याप्तत्वेऽपि अतिशयितविभूत्यादिमान् ईश्वरविभूतिर्वा ईश्वरावतारो वा मन्तव्य इति तात्पर्यम् । तदित्थम् - हंसात्मा, वैश्वानरः, तेजसः कर्मात्मा, चिदाभासः, विभूतिः ऊर्क् , श्रीः, इति नवविधो भूतात्मा व्याख्यातः। कर्मात्मानमारभ्य पञ्चविधाः प्राज्ञशब्देनोच्यन्ते। तासु च विभूतिः, ऊर्क्, श्रीरिति तिस्रो विधाश्चिदात्मनः। एवञ्च चतुर्धा ब्रह्मपरिस्थितिः, पञ्चधा देवपरिस्थितिः, नवधा च भूतपरिस्थितिरित्यष्टादशात्मविधाः सिद्धाः। एताश्च समष्टिरूपा ईश्वरायतनानि, व्यष्टिरूपाश्च जीवायतनानीति निर्दशितं प्राक् ।

एता आत्मविधाः संक्षेपेण भगवान् मनुरपि दर्शयामास मनुस्मृतौ द्वादशेऽध्याये—

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते।
यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥
जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखञ्च जन्मसु ॥
तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान् क्षेत्रज्ञ एव च ।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥

(मनु० १२ अ०)

अत्र क्षेत्रज्ञपदेन ब्रह्मपरिस्थितौ व्याख्याताश्चतुर्विधा आत्मानस्तदंशभूतश्चिदात्मा चोक्तः। भूतात्मपदेन च कर्मात्मनः पञ्चधाभूतपरिस्थितिः संगृहीता। जीवसंज्ञकान्तरात्मपदेन च चिदाभासो व्याख्यातः। तृतीये पद्ये महानिति पदेन पञ्चधा देवपरिस्थितिः शान्तादीनां चतुर्णाञ्च भूतात्मसम्पर्क उक्त इति सम्यग् विभाव्यतां सुधीभिः।

तदित्थमात्मायतनानां व्याख्येयानामष्टादशविधत्वात् तत्संकेताय पुराणानामपि अष्टादशविधत्वं स्थापितमिति षोडशी प्रतिपत्तिः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

संख्याया आधिदैविकं रहस्यम्

(१७)अथाधिदैविक्यपि प्रतिपत्तिर्ग्रन्थान्तरेषु गुरुचरणैर्व्याख्याता। सर्वेषामाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानां पदार्थानामाधारभूतोऽयमाकाशः। स चायमेकोऽपि व्यवहारभेदसाधनार्थं त्रेधा व्याक्रियते महाकाशः, पुराणकाशः, दहराकाशश्चेति। तत्र महाकाशो नामानन्तानां ब्रह्माण्डानामाधारभूतोऽनन्त एव। अस्मदधिष्ठितब्रह्माण्डाऽधिष्ठानभूतस्तु पुराणाकाश इति व्यवहृतः। अथैकैकगृहवृक्षशरीरादिवस्तुपरिछिन्नाकाशो दहराकाश इत्याख्यातः।

तत्र मध्यमेन पुराणाकाशेन सहास्माकं सम्बन्धः। स वास्माकं श्रुतिस्मृतिपुराणेषु विशिष्य व्याख्यातः। तस्य षष्ट्युत्तरत्रिशत (३६०) भागानक्षांशपदवाच्यान् कल्पयन्ति ज्योतिर्विदः। अस्य चार्धंभाग एवास्माकं प्रतिव्यक्ति दृश्यो भवति, अर्धस्तु पृथिव्या वृत्ताकारवशाद् व्यवधानाददृश्यः। तेनाशीत्युत्तरं शतमंशाः दृश्यास्तावन्त एव चादृश्या इत्यायातम्। अशीत्युत्तरशतपरिमितेष्वंशेषु अष्टादशदशतयो भवन्ति। छन्दःसु दशाक्षरा विराड् निरूप्यते। विराट् छन्दसैव सृष्टेः सम्बन्धः प्रागनेकधोपदर्शितः। तेन पुराणाकाशस्याष्टादशविराडात्मकत्वमभिलक्ष्य तन्निरूपणपराणां पुराणानामपि सङ्केतविधयाऽष्टादशत्वं स्थापितमिति सप्तदशी प्रतिपत्तिः।

यज्ञविधया संख्योपपत्तिः

(१८) शतपथब्राह्मणेऽग्निचयनप्रकरणेऽष्टमे काण्डे पञ्चमेऽध्याये सृष्टीष्टकानामुपधानं विवृतम्। तत्र सप्तदशपदार्थाः सृष्टा आम्नाताः। प्रजाः, ब्रह्म, भूतानि सप्तऋषयः, पितरः, मासाः, क्षत्रम् ग्राम्याः पशवः, शूकर्यः, एकशफाः पशवः क्षुद्राः पशवः, आरण्याः पशवः, द्यावापृथिव्यौ, वनस्पतयः, प्रजाः, भूतान्यशाम्यन्निति। (शान्ताः भूताः)।

अष्टादश च सप्तदशावयवकः प्रजापतिः प्रजनयिता उक्तः तदेवं सृष्टिविद्यायमष्टादशानामन्तर्भाव आम्नात इति सृष्टिविद्या प्रधानानां

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणानामष्टादशत्वं समुचितमिति प्रतिपत्तिरष्टादशी। तदित्थमष्टादशधा पुराणानामष्टादशसंख्यासमार्थिता। वस्तुतत्वपर्यालोचनेऽनुपदं वक्ष्यमाणया पुराणाक्रमरीत्याऽष्टादशभिर्विद्याभिरेव सृष्टिविद्या पर्याप्ता इत्यष्टादशविद्यत्वं सुयुक्तमेव स्थापितमिति।

५ पुराणक्रमरहस्यम्

अथ क्रमरहस्यं व्याख्यातव्यम्। द्विविधो हि क्रमो भवति - आरोहक्रमः, अवरोहक्रमश्चेति। प्रथमं बुद्धावुपारूढं स्थूलं पदार्थं गृहीत्वा क्रमेण तत्कारणपरम्परानुसन्धानमारोहक्रमः। मूलतत्वं प्रथमतो गृहीत्वा तस्य स्थूलताक्रमेण विस्तारप्रदर्शनमवरोहक्रमः, आभ्यां द्वाभ्यामपि विद्याभ्यां पुराणानि क्रमबद्धानि।

आदितो दशमपुराणपर्यन्तमारोहक्रमः।
दशमानन्तरन्त्वष्टादशपर्यन्तमवरोहक्रमः॥

सृष्टिं निब्रु्वत्सु सर्वेष्वपि पुराणेषु एकं चित्र तावदक्षिलक्षीभवति। सर्वमपि गगनप्राङ्गणमभिव्याप्यावस्थिते निश्चलस्तिमितेऽनन्ते महार्णवे प्रत्यग्रकमलकोमले भोगीश्वरभोगं पर्यङ्कतामानीय विसृत्वरलावण्यललामभूतया जगदम्बया कमलया संवाह्यमानः देवासुरवन्दितचरणयुगलः श्रीमान्नारायणश्शेते। सागरावर्तगभीरायाश्च तन्नाभेरनन्तपारं पङ्कजमेकं प्रादुर्भवति। तस्मिंश्च विराजते सकललोकनिर्माणैककर्मठश्चतुर्मुखो ब्रह्मा। पर्यङ्कसन्निधान एव च करयुगलं मुकुलीकृत्य स्वायम्भुवो भगवान्नारदस्तिष्ठान् सततं भगवन्तं स्तौतीति। इदमेव चित्रमादितः पुराणैर्व्याख्यायते। दृश्यमानं जगदिदं सर्वं केन रचितमिति जिज्ञासोपशमाय चतुर्मुखो ब्रह्मा तावद् ब्रह्मपुराणेन प्रथमं व्याख्यातः। स निर्माता कुतः प्रादुर्भूत इत्युत्थिते विचारे तदुत्पत्तिस्थानं यत् पद्मं द्वितीयेन पद्मपुराणेन, तस्यापि च यन्नाभेरुत्पत्तिः स भगवान् विष्णुपुराणेन, तदाधारभूतः शेषश्चतुर्थेन वायुपुराणाभिधानान्तरेण शिवपुराणेन, तस्यापि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

चाधारभूतो भगवत्पदामिलपनीयो महासागरः पञ्चमेन भागवतेन, स्तोता च नारदः षष्ठेन नारदपुराणेनाख्यात इति षड्भिः सृष्टिचित्रव्याख्या ।

इदमत्राकूतम् - भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् - इति सप्तव्याहृतिवाच्या लोका भूमिमारभ्योर्ध्वंक्रमेण सन्निविष्टा आख्यायन्ते। तत्र भूमिरियमस्माकमाश्रयः, स्वश्च सूर्यमण्डलं द्युपदवाच्यम्, तयोर्मध्येऽन्तरिक्षं भुव इति। तस्मिन् चन्द्रमण्डलं प्रचरति। सूर्यमण्डलादूर्ध्वंमहः पदवाच्यं पुनरन्तरिक्षं तदूर्ध्वं तपः पदवाच्यं तृतीयमन्तरिक्षम्, तस्याप्यूर्ध्वञ्च सत्यलोकपदाभिधेयं स्वयम्भूमण्डलमिति लोकव्यवस्थितिः। एषाञ्चोर्ध्वाधः क्रमेणोत्पत्तिमामनन्ति श्रुतिस्मृतयः।[1]

सर्वेष्वपि पुराणेषु एवं विधैव प्रक्रिया प्रायेण निरूपिता। अत्र सर्वंजगदुद्भवस्य परमेश्वरस्य प्रथमं स्वयम्भूमण्डलरूपेण प्रादुर्भाव उक्तः। तच्छरीरभूतादन्तरिक्षात्तपोलोकाद योऽयमपां प्रादुर्भावस्तत् परमेष्ठिमण्डलं द्वितीयम्, तदनु द्वितीयेऽन्तरिक्षे महर्लोकाख्ये विस्तृता-

---

१. यथोक्तं भगवता मनुना प्रथमाध्याये—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः।
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मो व्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ।
सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।
तस्मिन्नण्डे स भगवान् उषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिञ्च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्।। इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सु तास्वप्सु बीजनिक्षेपेण योऽयं हिरण्मयपिण्ड उत्पन्नस्तद् ब्रह्माण्डम्, तदधिष्ठाता च मध्ये स्थितः सूर्यः। एकस्य सूर्यस्य किरणजालं यावत् पर्यन्तं व्याप्नोति तावदेकं ब्रह्माण्डमिति पौराणिकी परिभाषा। तस्मिंश्च सूर्यमण्डले तत्प्राणरूपस्य नारायणपदवाच्यस्य ब्रह्मणोऽवस्थितिरुक्ता। तेन च सूर्यमण्डलस्थेन नारायणेन सम्वत्सराग्नि-मुत्पाद्य तदण्डं द्विधाकृतम्। तस्यांऽशाभ्यां द्यौः (स्वर्लोकः) भूमिश्चेति मण्डलद्वयमुत्पन्नम्। एतन्मध्ये च व्योमाख्यमन्तरिक्षमिति लोकसृष्टि व्याख्या।

एष तावदवरोहक्रमः। पुराणप्रक्रियायान्तु स्थूलमुपायं प्रथमं निरू-प्यानन्तरं तस्य कारणपरम्परेत्यारोहक्रमोः प्राक् प्रदर्शितः। तत्र पृथिवी-पदवाच्ये भूलोकेस्मिन्नस्मदधिष्ठिते, "यथाग्निगर्भा पृथिवी" (शतपथ १४ काण्ड) इति श्रुत्युक्तो योऽयमग्निप्राणः स स्वयम्भूपिण्डस्योऽपरिस्थितः सर्वान् भौमान् पदार्थान् प्राणिनश्च सृजतीति। अयमेव चतसृषु दिक्षु व्याप्तत्वाच्चतुर्मुखो ब्रह्मा, तदाधारभूतं चेदं पृथिवीमण्डलमेव पद्मम्। तदेतत्स्पष्टं पद्मपुराणे व्याख्यातम्—

एतदेव महापद्मुद्भूतं यन्मयं जगत्।
तद् वृत्तान्ताश्रयं यस्मात् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥

॥ इति ,।

अत्र एतदेवेतिपदेन पुरोदृश्यमानं भूमण्डलं निर्दिश्य तस्य पद्मत्व-रूमाख्यातम्। पद्मस्य चत्वारिपर्णानीव चत्वारिद्वीपान्यपि तस्मिन् पुराणे निरूपितानि। तस्य पद्मस्य नालभूतमिदं प्रथममन्तरिक्षम्। विष्णोश्च नाभीतस्तस्य पद्मस्य जन्मेति सोऽयं विष्णुरादित्यः। आदित्या हि द्वादश-पुराणेषु निरूपितास्तेष्वन्तिमो विष्णुरिति सर्वत्र स्पष्टम्। ऐतरेयब्राह्मण-स्यारम्भेऽपि च "अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुःपरमस्तदन्तरेणान्याः सर्वाः देवताः" इति – अग्नेरष्टौ वसवः, बायोरेकादशरुद्राः, द्वादशादित्याः। इति देवपरिस्थितावग्नेरादित्थत्वम्, अन्त्यस्य विष्णुपदवाच्यस्यादित्यस्य चान्तिगत्वमुक्तम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अयं त्रयस्त्रिंशतो देवानामन्तर्गतो विष्णुः। परमात्मा यो विष्णु-पदेनाख्यायते, स तु व्यावृत्यर्थं महाविष्णुपदेनोपास्यते। उपास्यान्यपि च भगवतो विष्णोश्चत्वारि रूपाणि पुराणेषु निरूप्यन्ते। वैकुण्ठनाथः, समुद्र-शायी, श्वेतद्वीपाधिपः गोलोकनाथश्चेति। तत्र वैकुण्ठनाथः ब्रह्मविष्णु-शिवेष्वन्यतमत्वेन गणनीयो विश्वपालकः। यस्य सरस्वती, पृथ्वी, तुलस्यादि पञ्चशक्तयः। द्वितीयोऽनन्तः क्षीरसमुद्रशायी, लक्ष्म्या शक्तियुतः सर्वंजगदुत्पादकः। तृतीयः:सत्यपदाभिधेयः श्वेतद्वीपाधिपःसर्वश्वेतःएकक एव सत्यनारायणनाम्नोपास्यते। चतुर्थस्तु गोपीगणवृतोराधारमणः कृष्ण-नाम्नोपास्यते गोलोकनाथः। एषु द्वितीयस्य विष्णोःस्थानं, समुद्रःसूर्यम-ण्डलं परित एव विराजते। अयं यद्यपि मनुस्मृतौ ब्रह्मे तिपदेनाख्यातस्त-थापि तदिदं शब्दभेदमात्रम्। अप्स्ववस्थितेःनारायणपदाभिधेयतायाश्च स्पष्टं विष्णुलिङ्गत्वात्। मनूक्त्यातावदिदमेव सिद्ध्यति— यदनन्तो विष्णुरयं ब्रह्मे ति पदेनापि प्राक्तनेषु ग्रन्थेषु व्याख्यातोऽभूदिति। पृथिवी-स्थो ब्रह्मा तु एतदभेदेनैव मनुना विवक्षितः जन्यजनकयोरभेदाध्यवसाया-दिति न स पृथगुक्तः। तस्यास्य वर्णनं तृतीयेन विष्णुपुराणेन क्रियते। एतदाधारभूतः शेषश्चतुर्थो महर्लोकः, यः शिवपुराणेन वायुपुराणापर-नाम्ना व्याख्यायते। परमेष्ठिमण्डले या तावदपामुत्पत्तिर्मनुना ख्याता, तासामपामेव रूपान्तरं वायुः, स च जनलोकोत्पन्नोऽपि महर्लोके स्फुटतया प्रादुर्भवतीति तत्प्रतिपादकस्य पुराणस्य वायुपुरागोति नाम बहुत्रोपलभ्यते। अस्माकमन्तरिक्षे रुद्रो नाम भीषणो वायुः, अयन्तु सूर्यमण्डलादुपरिष्टा-च्छिवो वायुरिति श्रुत्या व्याख्यातः। पूर्वं रुद्रं निरूप्य "तस्य द्वे तन्वो घोरान्या च शिवान्या च" इति शतपथ श्रुतिः। तस्मादेतत् प्रतिपादकस्य पुराणस्य शिवपुराणनाम्नाऽपि प्रसिद्धिः। नैमित्तिकप्रलये त्रिलोक्यां विलीनायामपि महर्लोकःशिष्यत इति शेषपदेनाप्ययमभिधेयः। वायोश्चा-नन्तशाखत्वात् सहस्रशिरस्कोऽयं शेषः। वायुरेव सर्पस्यापिजीवनं शिव-स्यापि च सर्पाः विभूषणानीति सहस्रशिरसर्परूपेणायं पुराणेषु चित्रितः। तदनन्तरं पञ्चमो जनलोक आख्यातः। सोऽयं स्थानमपि शेषाधार-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

समुद्ररूपेण चित्रीकृतः पुराणेषु। स एव सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वशक्तिशाली भगवानिति सर्वशक्तिरूपा भगवतीति वा समुपास्यः, इति द्विविधेन पञ्चमेन भागवतपुराणेनायं व्याख्यातः। अतएव भागवतस्य सारस्वतकल्पाश्रयत्वं व्यवहरन्ति। सरस्वान् हि समुद्रः परमेष्ठिमण्डलम्– तन्निरूपकं पुराणमिदमिति।

तदनु आसामपि कुतो जन्मेति जिज्ञासां शमयितुं स्वायम्भुवमेवाऽपामुत्पादकं निरूपयितुं तदपत्यो नारदस्तावत् षष्ठस्य तपोलोकस्य प्रतिनिधिरूपेण समुद्रे समुपस्थाप्यते। "आपो नाराः" नरापत्यत्वात् इति मनुस्मृतौ प्रदर्शितम्। नाराश्चं यो ददाति, स नारदस्तपो लोकः। स्वयम्भुवा प्रादुर्भाविता आपः षष्ठे तपो लोक एव प्रस्फुटीभवन्तीति तस्य नारदत्वं स्वयम्भुवोऽपत्यत्वञ्च सम्यग् घटते। तदनु सप्तमः स्वयम्भुलोकस्तु सर्वाधाराकाशरूपेण चित्रे परिदर्शितोऽपि केनचित् पुराणेन पृथङ् न निरूपितः। तदपत्यनारदनिरूपकेण पुराणेनैव तस्यापि समाख्यानात्, सर्बबीजरूपेणाग्रे परब्रह्माभिन्नतया तस्य निरूपयिष्यमाणत्वाच्चेति षड्भिः पुराणैः क्रमेण लोकपरिस्थितिरियं चित्रीकृता।

सर्वेषामेषां मूलभूतं किं तत्वमिति जिज्ञासामुपशमयितुं विप्रतिपत्तिरूपाणि चत्वारि पुराणानि प्रवर्तन्ते। प्रकृतिरेव सर्वेषां मूलतत्त्वमित्येकं मतम् तद् व्याख्यातुं सप्तमं मार्कण्डेयपुराणम्। "अग्निर्वै सर्वाः देवताः" (श्रुतिः) "यत् किञ्चित् दार्ष्टिविषयकमग्निकर्मैव तत् (निरुक्तम्) इत्यादिषु प्रसिद्धमग्नेः सर्वमूलत्वं निरूपयितुमष्टममग्नि पुराणम्। "नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः" "प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः" इत्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धं सूर्यस्य सर्वमूलत्वमाख्यातुं नवमं भविष्यपुराणम्– इति त्रेधा परेषां विप्रतिपत्तीः प्रदर्श्य स्वसिद्धान्तं ब्रह्म एव सर्वेषां मूलतत्त्वम्, ब्रह्मण एव सर्वोऽयं विवर्त इति घोषयितुं दशमं ब्रह्मवैवर्तपुराणं प्रवर्तते इति चतुर्भिर्मूलतत्वविमर्शः कृतः। एतावत्पर्यन्तमारोहक्रमः प्रवृत्तः। इयमेव पुराणलक्षणप्रकरणे प्रथमा षट्पर्वा मध्यमा च चतुः पर्वा सृष्टिराख्याता।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एतस्मादनन्तरन्त्ववरोहक्रमः। ब्रह्मणः कथं सृष्टिरित्यस्मिन् प्रकरणे प्रतिपादनम्। तत्र यानि यानि सृष्टि विधाववान्तराणि रूपाणि उक्तानि तेऽवतारा इत्याख्यायन्ते। वराहः, वामनः, कूर्मः, मत्स्यः इति चत्वारो विष्णोर्दशस्ववतारेषु गणिताः, लिङ्गम्, स्कन्दम् इति द्वौ तु शिवावतारौ यद्यपि दश विंशतिर्वावतारा: पुराणेषु व्याख्यायन्ते, तथापि सृष्टिविधा-वत्युपयोगिनो ये षडवतारास्त एवात्र निवेशिताः। निरभिलप्यस्य वाङ्-मनसातीतस्य परमसूक्ष्मस्य ब्रह्मणःकथं स्थूलजगद्रूपतेति व्याख्यातुमे-कादशं लिङ्गपुराणं प्रवृत्तम्। प्रकृतिर्हि लिङ्गपदेन दर्शनेषूक्ता। लीनमन्त-र्निहितं ब्रह्म गमयतीति लिङ्गशब्दप्रवृत्तिः। प्रकृतिरेव ब्रह्म बोधयतीति प्रकृतावन्तर्हितमेव ब्रह्म ज्ञातुं शक्यते न तु पृथग्भूतम्, तस्य वाङ्मनसा तीतत्वात्। प्रकृतिरपि स्वस्वरूपेणाविकृतावस्थेन नोपलभ्ते, किन्तु तस्याः प्रथमः परिणामो महत्तत्वमुपलब्धं भवति। सोऽयं महानेव लिङ्गशब्दार्थः, अयमेव च प्रथमोऽवतारः – एतत् प्रतिपादकं लिङ्गपुराणम्।

उत्पन्नानि स्थूलतत्वानि परस्परं सद्ग्रहेण संयोज्य पिण्डानां निर्माता वराहाख्यो वायुविशेष इति तस्याख्यानं द्वादशेन वराहपुराणेन क्रियते। मण्डलरूपतेयं चित्यस्याग्नेः, मण्डलरूपतापत्यनन्तरन्तु तत्र सर्वत्रापि चिते-निधेयरूपः कुमाराग्निः प्रविशतीति कुमारनिरूपणपरं त्रयोदशं स्कन्द-पुराणम्। स चायमग्निः भूपदवाच्ये पिण्डे तं परितोऽवस्थिते भुवः पद-वाच्येऽन्तरिक्षे स्वः पदवाच्ये दिवि च त्रेधा विक्रमतीति त्रिविक्रम निरूपणपरं चतुर्दशं वामनपुराणं प्रवृत्तम्।

अथैषु पिण्डेषु विभिन्नानां प्राणिनामुत्पत्तिः कथमिति तत्प्रकार-जिज्ञासायां कश्यपपदवाच्यात् कूर्माकारात् पृथिव्यां निरन्तरमागच्छतः मूर्यरसादेव तदुत्पत्ति समाधातुं पञ्चदशं कूर्मपुराणमुत्तिष्ठते। कश्यपो वै कूर्मः एषः आदित्य एव कश्यप इत्यादि सम्यग् विवृतं शतपथब्राह्मणादिषु।

अस्याञ्च प्राणिसृष्टौ प्राणेषु प्रथमगणनीयानामृषीणामपि साहचर्यं भवति। ते च दिव्या ऋषयः मत्स्यागस्त्यवशिष्ठाः। तेषु वशिष्ठ उत्तरां

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

दिशमधिकुरुते, अगस्त्यो दक्षिणाम् मत्स्यस्त्वयं मध्यचारी, उत्तरस्यां दक्षिणस्यां च क्रमेण प्रचरतीति तस्य मत्स्यस्य निरूपणार्थं षोडशं मत्स्यपुराणम्। एतानि षडुत्तरसृष्टिपदेन लक्षणप्रकरण उक्तानि।

अथ प्राणिष्वनुप्रविष्टस्य जीवस्य संसरणप्रकारबोधनार्थं सप्तदशं गरुडपुराणम्। "गरुडोऽयं सुपर्णानामधिपतिराख्यायते। जीवस्यापि च "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इत्यादिश्रुतिषु सुपर्णत्वेन व्याख्यानं कृतम्। पतनशीलश्चायं सर्वलोकसञ्चारित्वादिति गरुड पदेन एवात्राऽभिप्रेतः। एषां सर्वेषां व्याख्यातानां पदार्थानां यत्रावस्थितिस्तद् ब्रह्माण्डं सम्यग् व्याकर्तुमन्तिममष्टादशं ब्रह्माण्डपुराणं निवेशितमिति व्याख्यातः पुराणक्रमः। अत्र सर्वादौ ब्रह्म, सर्वान्ते च ब्रह्माण्डम्, मध्येऽपि स्मरणार्थं ब्रह्मवैवर्तमिति क्रमनिर्मातुश्चमत्कारः सर्वथा सर्वात्मना मनसि निवेशनीयः।

क्रमे प्रकारान्तराणि

अथोपदर्शिताया मनुस्मृतेः स्वारस्यं रक्षितुमादिमानां षण्णां पुराणानां क्रमतात्पर्यमन्यथाऽपि केचिद् वर्णयन्ति।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

इत्यत्र हि ब्रह्माण्डे ब्रह्मणः प्रादुर्भाव उक्तः। तत्र च ब्रह्मायं सूर्य एव। अस्मदधिष्ठितोऽयं भूर्लोक अन्तरिक्षाह्वयो भुवर्लोकश्च द्वौ लोकौ सृज्यत्वेनानुसन्धेयौ। सृष्टिप्रक्रियायां नैमौ गृह्येते, सूर्यमारभ्यैव तु सृष्टिप्रक्रियेयं प्रवर्तते। तत्र सूर्यो ब्रह्माऽयं त्रिलोक्याः स्रष्टाः, स ब्रह्मपुराणेन निरूप्यते। तदधिष्ठानञ्च ब्रह्माण्डं पद्मरूपेण पद्मपुराणे व्याख्यायते। "एतदेव महापद्मम्" इति पद्मपुराणश्लोके महच्छब्दस्वारस्याद् ब्रह्माण्डमेव ग्रहीतुमुचितम्। तस्यापि बुद्धावुपारूढस्य एतत्पदेन निवेष्टुं शक्यत्वात्। पद्मनाभो विष्णुश्च परमेष्ठिमण्डलम्, परमेष्ठिमण्डलेऽपि विष्णोरूपास्यत्वेन पूर्वमुक्तत्वात्। परमेष्ठिमण्डलमेवापां समुद्रः, तच्छायी तदधि-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ष्ठाता विष्णुः कृष्णरूपः । नाभिश्च केन्द्रम् । परमेष्ठिमण्डलस्य केन्द्रान्निसृतो महर्लोकरूपः पद्मनालः, तस्मादुद्भूतं ब्रह्माण्डम् । सूर्याधिष्ठितानि शतशो ब्रह्माण्डानि परमेष्ठिमण्डलमेवाश्रयन्तीति गोलोकवर्णने पुराणेषु स्पष्टं व्याख्यातम् । शेषपदेन च तदग्रेतनस्तपोलोकोऽनुसन्धेयः । त्रिलोकीप्रलयेऽपि शेषत्वादेव तत्रापि शेषपदम् । परमेष्ठिमण्डल-स्थानामपामुत्पादको वायुर्हि अपां पूर्वावस्थः, स च वायुश्शिव इति पुरस्तादेवोपपादितम् । तदित्थं चतुर्थेन पुराणेन षष्ठस्तपोलोको व्याख्यातः । भागवतेन तु "ततः स्वयम्भूर्भगवान्" इति भगवत्पदेन स्वयम्भूमण्डलमेव व्याख्यायते ।

तत्र पुंस्त्वस्त्रीत्वादि वैलक्षण्याभावाद् भगवत्पदं भगवतीपदञ्चोभयमपि यथेच्छं व्यवह्रियते । षष्ठं नारदपुराणन्तु केवलमेतदेव बोधयति यत् स्वयम्भूमण्डलादपामुत्पत्तौ तेभ्यः पूर्वमुत्पन्ना ऋषि प्राणा अपि सहकारिणो भवन्तीति । तथाहि शतपथब्राह्मणे षष्ठकाण्डे सत् पदवाच्येभ्यः प्राणरूपेभ्यः, ऋषिभ्य एव त्रय्याः विद्याया उत्पत्तिमाम्नाय ततोऽपामुत्पत्तिराम्नाता । तेषामृषीणां विद्यायाश्च प्रतिनिधि-भूतोऽयं भगवान् नारदोऽत्र सृष्टिचित्रे प्रतिष्ठाप्यते । अग्रे तु सर्वं पूर्ववदेव व्याख्यातव्यम् इति द्वितीयः प्रकारः । सर्वमिदमग्रे सृष्टिप्रकरणे विशदीकरणीयमिति विस्तरस्तु तत एवासेयः ।

अन्यथाऽपि वा इदं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मा तावदयं क्षरः पुरुषः, यस्यावयवेभ्यः सर्वस्यापि जगत उत्पत्तिर्जायते । तदाधारभूतश्चाक्षरपुरुषः पद्मत्वेन निरूपितः, जलोपरितिष्ठदपि पद्मं यथा जलेन न लिप्यते तथा निमित्तीभूय सर्वं जगदुत्पादयन्नक्षर पुरुषः न जगता मनागपि लिप्यते इति सादृश्यात् पद्मस्येव तस्यापि विकासशीलत्वाच्च पद्मपदेन तद् व्यवहारः समुचितः । तस्यापि चोत्पादकोऽव्ययपुरुषो विष्णुपदेनात्र बोधितः । विष्णुपुराणे पूर्वं पुराणोपयोगनाम्नि द्वितीयप्रकरण उपदर्शितेन प्रकारेण विष्णोरव्ययपुरुषत्वेनैव व्याख्यानदर्शनात् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अस्य पुरुषत्रयस्यावलम्बनभूतः परात्परस्तु चतुर्थेन शिवपुराणेन व्याख्यायते। "शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्त" इति श्रुत्या परात्परस्यैव शिव-पदेन बोधनात्। अक्षयत्वादनन्तत्वादेव च शेषरूपेण चित्रे प्रदर्शनम्। अनन्तशाखात्वेनोक्तानां पुरुषाणामपि च प्राणप्रदत्वेन वायुशब्दस्यापि तत्रोपपत्तेः। तदनु पञ्चमेन भागवतेन सर्वाधिष्ठानभूतं निर्विशेषतत्वं लक्ष्यते। भागवते निर्विशेषरूपेणैव भगवदुपलक्षेणदर्शनात् : स च निर्विशेषो वाङ्मनसाऽतीतोऽपि बुद्धावुपारोहणार्थं भगवद्रूपेण भगवती रूपेण वा यथाधिकारं व्याख्यातव्यः। सेयं तृतीया प्रक्रिया।

अत्र पञ्चभिरेव पुराणैः सृष्टिचित्रं विवृतमिति षष्ठस्य नारद-पुराणस्य चित्रविवरणे नोपयोगः। तद्विप्रतिपत्तिप्रदर्शकेषु पुराणेष्व-न्तर्भाव्यम्। नारदस्य ऋषिप्रवरत्वेन सर्वेषामृषीणां प्रतिनिधित्वं तत्र प्रकल्प्य ऋषिभ्य एव सृष्टिः, इत्येकः कल्पः पृथगुत्थापितः। तथा हि शतपथब्राह्मणे षष्ठकाण्डे आरम्भ एव "असद्वा इदमग्र आसीत्तदाहुः किं तदसदासीदिति, ऋषयो वा व तेऽग्रेऽसदासीत्तदाहुः के त ऋषयः, इति प्राणा वा ऋषयः" इति पूर्वं ऋषिपदाभिधेयानां प्राणानामेव सत्वमुक्त्वा तेभ्य एव सर्वाऽपि सृष्टिःप्रदर्शिता। सेयमपि विप्रतिपत्तिः पुराणेषु संगृहीता। भागवतपुराणे पञ्चमे स्वयम्भूपदाभिधेयाद् भगवतो निर्विशेष-ब्रह्मणः सृष्टिः प्रतिपादिता। अत्र ये विप्रतिपद्यन्ते तेषां चत्वारि मतानि पूर्वोक्तरीत्या पृथक् पृथक् पुराणेभ्यः प्रदर्श्य दशमे ब्रह्मवैवर्ते पुनर्भागवतो-क्तस्य सिद्धान्तस्य पुष्टिः कृतेत्यत्र प्रक्रियानुसन्धेया। इमममेवाभि-प्रायमभिलक्ष्य लिङ्गपुराणे (३९ अध्याय ६१-६४) श्लोकेषु, शिवपुराणे वायवीय संहितायां, (१ अध्याये ४२-४५ श्लोकेषु), कुर्मपुराणे (पूर्वा.१ अध्याये १३-१५) पाद्मे पातालखण्डे च (१११ अ. ९०-९८) पञ्चमाद् भागवतादनन्तरमेव विप्रतिपत्तिबोधकपुराणान्यनुक्रम्य षष्ठे स्थाने भविष्यम्, सप्तमे नारदीयम्, अष्टमे मार्कण्डेयम्, नवमे आग्नेयम्, दशमे च

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मवैवर्तमुक्तम् । इत्थञ्च भागवतादनन्तरमेव विप्रतिपत्ति-बोधकानि चत्वारि पुराणानि तत्रोक्तानि। विप्रतिपत्तौ च क्रमस्यानावश्यकतया कश्चित् क्रमभङ्गोऽपि तत्र जात इति न कोऽपि दोषः।

सिद्धान्तभूतं ब्रह्मवैवर्तन्तु सर्वत्र दशमे स्थान एव।

शिवपुराणे उमासंहितायां तु शिवपुराणपर्यन्तं चत्वारि पुराणानि क्रमेणोक्त्वा पञ्चमादेव विप्रतिपत्तिबोधकानि चत्वारिपुराणान्यष्टम-पर्यन्तान्युल्लिख्य नवमे श्रीभागवतं, दशमे च ब्रह्मवैवर्तमुक्तम्। परात्पर-पर्यन्तं शिवपुराणान्तैश्चतुर्भिः पुराणैः प्रदर्श्य सर्वमूलं किमिति जिज्ञासायां पूर्वं चतुर्भिः विप्रतिपत्तयः प्रदर्शिताः। नवमदशमाभ्यान्तु सिद्धान्तः स्फुटीकृतः। तत्र नवमेन सर्वमूलं निर्विशेषमुपवर्ण्य निर्विशेषात् कथं सृष्टिः संभवतीति प्रश्नं समाधातुं दशमेन विवर्तवादः स्पष्टीकृत इति सोऽपि क्रमः संभवति।

अन्ये तु ये क्रमभेदाः पूर्वमुक्तास्ते लेखकमुद्रकादि प्रमादजन्मान स्युः, क्रमस्तत्र न विवक्षितः, केवलं नामान्युपस्थापितानीति वा समा-धेयम्। तदित्थमुपदर्शितं पुराणानां क्रमविज्ञानम्।

पुराणानां ग्रन्थसंख्या

अथैषां ग्रन्थपरिमाणमपि पुराणेषूक्तं तदपीहोपनिबध्यते। संभूय सर्वाणि चतुर्लक्षपरमितैः श्लोकैर्भगवता व्यासेन संक्षिप्योपनिबद्धानी-पुराणेषु बहुधा दृश्यते। पृथक् पृथक् पुराणानां या संख्या तत्र तत्र निर्दिष्टा तत्र तु कियांश्चिद् भेदोऽप्यस्ति, परं नारदोक्तपरिमाणं लक्षचतुष्टय-परिमितमेव योगेन सिद्ध्यति। तत्रोक्तमेव परिमाणमिहास्माभिः प्रकोष्ठे सन्निवेश्यते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणनामानि	नारदपुराणोक्तं परिमाणम्
१. ब्रह्मपुराणम्	१०,०००
२. पद्मपु.	५५,०००
३. विष्णु पु.	२३,०००
४. शिवपु.	२४,०००
५. भागवतपु.	१८,०००
६. नारदपु.	२५,०००
७. मार्कण्डेयपु.	९,०००
८. अग्निपु.	१५,०००
९. भविष्यपु.	१४,०००
१०. ब्रह्मवैवर्तपु.	१८,०००
११. लिङ्गपु.	११,०००
१२. वराहपु.	२४,०००
१३. स्कन्दपु.	८१,०००
१४. वामनपु.	१०,०००
१५. कूर्मपु.	१७,०००
१६. मत्स्यपु.	१५,०००
१७. गरुड़पु.	१९,०००
१८. ब्रह्माण्डपु.	१२,०००
	४,००,०००

इदं परिमाणं ब्रह्मवैवर्तेन भागवतेन, मात्स्यपुराणेन च प्रायेण संवदति। अत्यल्पः क्वचित् क्वचिद् भेदः, सोऽपि शतानामेव न तु सहस्रा-णामिति स नगण्य एव। ईदृशस्य परिमाणभेदस्य गणनायां प्रायेण संभवात्।

अग्निपुराणे यत्पुराणानां परिमाणमुक्तम्,-तत्तु अत्यन्तं विसंवादि यथा-पद्मपुराणस्य पञ्चपञ्चाशत्सहस्रमितं परिमाणं सर्वत्रोपनिबद्धम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अग्निपुराणे तु केवलं द्वादशसहस्रमितमुक्तम्। ब्रह्मपुराणस्य च दशसहस्रमितत्वं प्रायेण सर्वैरुक्तम्। अग्निपुराणे तु अर्द्धलक्षपरिमितत्वमुक्तम्। शिवपुराणस्य च चतुर्विंशति सहस्रमितं परिमाणं सर्वत्रोपलभ्यते। अग्निपुराणे तु केवलं चतुर्दशसहस्रमितत्वमुक्तम्। एवं वहुत्र वैषम्यमुपलभ्यते। तस्माद् वह्मपुराणविरुद्धाऽग्निपुराणसङ्ख्येयं लेखकादिप्रमादपतितैव संभाव्यते स्वयमग्निपुराणपरिमाणम्, अग्निपुराणे द्वादशसहस्रमित्युक्तम्। नारदीये त्वस्य पञ्चदशसहस्रमितत्वमुक्तम्। श्रीभागवते ब्रह्मवैवर्ते च चतुःशताधिकपञ्चदशसहस्रमितत्वम्, देवीभागवते स्कान्दे च षोडशसहस्रमितत्वमुक्तम्। तेनाग्नि पुराण ग्रन्थ एव वहुकालादव्यवस्थितः प्रतीयते इति तत्रोक्ता पुराणसंख्याप्युपेक्ष्यैव। ब्रह्मपुराणस्य मत्स्यपुराणे त्रयोदशसहस्रमितत्वमुक्तम्। स त्वयं भेदो गौतमीमाहत्म्य घटितत्वेन तदघटितत्वेन चेति निरूपितमन्यत्र। ब्रह्मपुराणविसंवादित्वंच गौतमीमाहात्म्यमिदं पश्चादेव केनचिद् योजितमिति प्रतीयते। स्कन्दपुराणे च ब्रह्मवैवर्तस्य परिमाणं दशसहस्रमितमेवोक्तम्। तल्लेखकप्रमादादपभ्रंशात् स्यात्। कूर्मपुराणस्य च परिमाणं नारदीयादिषु सप्तदशसहस्रमितमेवोक्म्। मात्स्ये तु अष्टादशसहस्रमिति सोऽयमल्पो भेदो गणनाकृतः लेखकप्रमादकृतो वा भवेदिति।

इदानीन्तु मुद्रितपुराणपुस्तकानि यान्युपलभ्यन्ते, तत्र भागवतलिङ्गमत्स्यब्रह्माण्डपुराणानि प्रायेण पूर्णानि। यावत् परिमाणमेषां प्रागुक्तं तावदेव प्राप्यते। पद्मपुराणस्य दुरवस्थाऽन्यत्र प्रकरणे विवरीष्यते–तस्यपुस्तकं सम्यङ्नोपलब्धम्, यावन्मुद्रितं तत्रापि आनन्दाश्रममुद्रिते ऊनपञ्चसहस्रमितत्वमुक्तम्, श्रीवेंकटेश्वरमुद्रिते पञ्चपञ्चाशतसहस्रतोऽप्यधिकम्। किञ्चात्र बाहुल्येनास्तीति सर्वतोऽधिकात्र संशोधनापेक्षा। विष्णुपुराणेऽपि न्यूनता दृश्यते, विष्णुधर्मोत्तरं संयोज्यापि त्रयोविंशतिसहस्रस्थाने षट्सहस्रमितत्वमेव जायते। एवं शिवपुराणेऽपि महती न्यूनता चतुर्विंशति-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सहस्रस्थानेऽष्टादशसहस्रमितमेव प्रायेण तदुपलभ्यते वायुपुराणन्तु न प्राप्त-

मेव, ब्रह्माण्डपुराणं तन्नाम्ना मुद्रितमित्यपि बहुशो विवरणीयमन्यत्र प्रकरणे। मार्कण्डेयपुराणेऽपि सहस्रद्वयाधिका न्यूनता दृश्यते– तथैव नारद-पुराणे सहस्रत्रयमितान्यूनता लभ्यते। कूर्मपुराणमपि अत्यल्पं लब्धम्। तथैव वामनवाराहगरुड़पुराणेष्वपि विशेषेण न्यूनता दृग्गोचरी भवति। मुद्रितं भविष्यपुराणमश्रद्धेयमित्यपि अन्यत्र विवृतम्। स्कन्दपुराणं प्रथम-मेव सर्वतोऽधिकं विस्तृतं पुनरपि च तत्र पाठाधिक्यं लभ्यत इति बहुभिर्वि-द्वद्भिर्विवृतम्। सर्वेयमनवस्था प्राचीनतमलिखितपुस्तकान्वेषणेन दूरी-कर्तुमर्हा। विशिष्य च सर्वमिदं तत्तत्पुराणभूमिकास्वेव विवरीतुमुचितमिति सामान्येनैतावदेव पर्याप्तमिह।

वेदाविर्भावक–विचारः

यद्यपि 'अपौरुषेया वेदाः' 'ईश्वररूपा वेदाः' ईश्वरकृता वेदाः' 'ईश्वरप्रसादेन परोक्षज्ञानमवाप्य मन्त्रद्रष्टृभिः ऋषिभिर्महर्षिभिश्च प्रणीता' इति वेद विषये चतुर्धा विप्रतिपत्तयस्तत्र तत्र श्रूयन्ते, तथापि तासु न विरोधः, अपि तु दृष्टिभेदात् सर्वमुपपद्यते। सोऽयं वेदविद्याब्रह्म-शब्दानामेकार्थत्वानेकार्थत्वविचारः, वेदकर्तृविषयको विवादस्तत्समाधा-नञ्चेति सर्वं श्रीगुरुचरणैर्विद्यावाचस्पतिमहाभागैः स्वीये 'महर्षिकुलवैभवे' सम्यग् विवृतम्। तट्टीकायाञ्चास्माभिरपि स्पष्टीकृतम्।

तस्यायं सारः—'ब्रह्मविद्यावेदपदानां भिन्नार्थत्वेऽपि परस्परं साङ्क-र्येण व्यवहारः। ज्ञानं ब्रह्मविद्यावेदपदेषु समानरूपोऽर्थः। तथाप्यस्त्ययम-वान्तरो भेदः यत् कार्यकारणभावादि-तत्तद्धर्माणां प्रत्यक्षीकरणं ब्रह्मपद-वाच्यम्। पूर्वगृहीतानां धर्माणां संस्कारजन्यं स्मृतिरूपं ज्ञानं विद्या। शब्दजन्यं तज्जानन्तु वेद इति। तदित्थं ज्ञानस्य सर्वत्र वाच्यत्वेऽपि जनकोपाधिकृतो भेदः। क्वचित्तु उपाधिमविवक्ष्य ज्ञानरूपार्थे शब्दा इमे पर्यायेण व्यवहृताः।

विद्यावेदशब्दावत्र भावसाधनौ प्रत्येतव्यौ, करणसाधनौ तु तादृश-ज्ञानजनके संस्कारे शब्दे चापि व्यवह्रियेते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तत्र महर्षिप्रणीता वेदा इत्यभ्युपगममेवाधिकृत्यादितः प्रवर्तामहे मध्ये मध्ये च पौरुषेयत्वमीश्वरकृतत्वञ्च यथावसरं निरूपितं स्यात्।

तपसा सम्पादितेनेश्वरानुग्रहेण सामान्यजीवपरोक्षानपि स्वर्गापूर्वदेवतादीन् प्रत्यक्षीकृत्य तद्वाचकाः शब्दाः स्वयमृषिभिरुच्चारिताः, त एव वेदाः। न च स्वर्गापूर्वदेवतादीनां स्वभावतः परोक्षाणां कथं प्रत्यक्षसम्भव इति शङ्कनीयम्–स्वर्गादिषु ईश्वरप्रत्यक्षविषयतायाः सर्वैरीश्वरवादिभिरभ्युपगतत्वात् ईश्वरप्रेरणयैव ऋषीणां तत्प्रत्यक्षस्येहाप्युच्यमानत्वात्।

योगशास्त्रेऽपि सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टविषयाणां योगजशक्त्या प्रत्यक्षविषयतोपपाद्यते, 'प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम' (यो. द. ३ पा. २० सूत्र), 'प्रातिभाद्वा सर्वम्' (यो.द. ३ ग्र. ३ सू.) इत्यादिसूत्रैः। नैयायिका अपि च योगजं प्रत्यक्षं लौकिकप्रत्यक्षाद् भिन्नमेवातिष्ठन्ते, अलौकिकप्रत्यासत्तिनिरूपणे।

ननु सूक्ष्मभूतधर्मप्रत्यक्षे सति तपोयोगादौ प्रवृत्तिरुपपद्यते, अन्यथा तपोयोगादिक्रियायाः तादृशकारणताग्रहणासम्भवात्, सत्याञ्च तपोयोगादिसिद्धौ सूक्ष्मभूतधर्मप्रत्यक्षसम्भवः, इत्यन्योन्याश्रयप्रसङ्ग इति चेत् सत्यम्—पूर्वकल्पानुभूतकार्यकारणभावस्मरणेन कल्पादावुद्भूतानामृषीणां समाधौ प्रवृत्तिसम्भवात्।

यथर्तु लिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये।

स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः॥

(मनु. १ अ. श्लो. ३०)

इत्यादिभिः पूर्वकल्पस्मृत्यैव तत्तत्कार्यप्रवृत्तेः स्मृतिपुराणादिषूपपादितत्वात्। श्रीशङ्कराचार्यपादैरपि देवताधिकरणे व्यासादीनां देवदर्शनं तैः सह व्यवहरणं च सुस्पष्टमुररीकृतम्। कल्पादौ पूर्ववृत्तस्मरणं देवतानामृषीणां चोपपादितम्। अतएव सनत्कुमाराणां जन्मसिद्धं ज्ञानं पुराणेषूच्यमानमुपपद्यते। पूर्वकल्पकृताभ्यासेनैव तत्सम्भवात्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

'अजान् हवै पृश्नींस्तपस्यमानान् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यामर्षत् तद् वै ऋषीणामृषित्वम्' (तै. अ. २-९) इत्याद्या श्रुतिश्च वेदाधिगमात् पूर्वमेव ऋषीणां तपः-प्रवृत्तिं स्पष्टं श्रावयतीति नात्र विवदितव्यं श्रुतिश्रद्धालुभिः।

'यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण तां दैवीं वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके '(तै. ब्रां २-७-७)' ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो मामामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः, परादुर्माहमृषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परादाम्' (तै. ४।१।१)

इत्यादि श्रुतिषु मन्त्रकृत्त्वमृषीणां स्पष्टं श्रूयते।

अत्र मन्त्रपदं वेदमन्त्रार्थपरमेव श्रीमाधवाचार्यैर्व्याख्यातमिति नार्थान्तरकल्पनावकाशः। तथा च 'इमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः, सरहस्याः, सोपनिषत्काः, सेतिहासाः, सान्वाख्यानाः, सपुराणाः, ससंस्काराः, सनिरुक्ताः, सानुशासनाः, सानुमार्जनाः, सवाकोवाक्याः (गो. ब्रा. २ प्र. १० कं.) इति गोपथश्रुतावपि वेदानां निर्मितत्वं स्पष्टमुद्घुष्टन्।

प्रथममन्त्रे देवशब्देन पारोवर्यविदो शुश्रुवांसोऽनूचाना विद्वांसो गृह्यन्ते। तदीयेयं वेदवाणी दैवी तथा च शतपथश्रुतौ 'द्वया वै देवाः, देवा अहवै देवा, अथ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचान एते मनुष्यदेवाः' (शत० २।२।२।६, तेन विशिष्टविदुषां मनुष्याणामपि देवशब्देन व्यवहारः सिद्ध्यति तथा च मनुष्यदेवैर्विरचिता मन्त्रा मनुपूर्वा इति पूर्वोक्तमन्त्रार्थः फलति।

युक्तञ्चैतत्, न हि वेदवाक्यरचना स्वतः सम्भवति, शरीरबुद्धीन्द्रियोत्पाद्यत्वात्। ननु वैखर्यामेव वाचि शरीरेन्द्रियादि-प्रयत्नोऽपेक्ष्यते, परा-पश्यन्ती-मध्यमेति त्रिविधास्तु वाचो न शरीरेन्द्रिय-प्रयत्नमपेक्षन्त इति ता एव वेदपदवाच्या भवन्तु अपौरुषेय्य।

किञ्च दैवतादिविज्ञानमीश्वरानुग्रहेण ऋषीणां बुद्धौ प्रादुर्भूतमिति भवदभिमतेऽपि—

CC-0.Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ।।

इत्यनुभवसिद्धाभियुक्तवचनाद् विज्ञानबोधकास्ते शब्दा अपौरुषेया ऋषीणां बुद्धौ प्रादुर्भूताः स्युः । ते च तत्तदृषि-प्रयत्नसाध्या इत्यपौरुषेया एव, त एव च तैः प्रकटिता मन्त्रादिरूपेणेदानीमप्युपलभ्यन्ते इति ग्रन्थरूपाणामपि वेदानां कृतकत्वं न विचारसहमिति चेत् सत्यम्—वैखर्या वाचा निबद्धानां बिल्मभूतानामेव वेदानां पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वविवादविषयता, न तु परा पश्यन्ती वा केनापि पौरुषेयी वक्तुं शक्या-परायाः स्वरूपज्योतीरूपत्वात्, पश्यन्तीस्वरूपसंघटनेऽपि पुरुषप्रयत्नस्य नितान्तमसंभवात् । तदेतद् गुरुचरणैर्जगद्गुरुवैभवे ऐतिहासिकसृष्टिविभागप्रकरणे वेदस्य पौरुषेयापौरुषेयताविचारे स्पष्टमुक्तम्—

आसां परास्तीयमपौरुषेयी त्रैलोक्यविभ्वी पुरुषेऽपि नित्या ।
अन्यास्तु यत्नात् पुरुषस्य साध्यास्तिस्रस्ततस्ता इह पौरुषेय्यः ।।६।।
इच्छावशाद् वायुगतः प्रयत्नो यः पूरुषस्यासनि वा पुरो वा ।।
वर्णात्मवीचिः श्रुतिमेत्य तस्माच्छाब्दी भवेद्धीरिति पौरुषेयी ।।९।।

अत्र यत्तिसृणां वाचां पौरुषेयीत्वमुक्तम् – तन्मतान्तरपरतया नेयम् ।

मातृकास्तुतिप्रभृतिषु तन्त्रग्रन्थेषु तु पश्यन्त्यामपि न पुरुषप्रयत्नापेक्षा, तत्र शब्दार्थौ अविभक्तौ तिष्ठतः । आत्मसमीहारूपा च सा । तदन्वात्मनियुक्तेन मनसा हृदये मध्यमा समुत्पाद्यते, यत्र शब्दार्थयोर्विभागो भवति । तत्र वर्तमानशब्दा अपि बुद्धेरेव भागा न तु वागिन्द्रियनिष्पाद्याः । सा च, वैखरी च, पौरुषेयी वक्तुं शक्यते । 'स सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' इति सिद्धान्तोऽपि पश्यन्तीमेवाभिलक्ष्य बोद्धव्यः । तत्र शब्दार्थयोरविभक्तत्वात्, विभक्तयोस्तु शब्दार्थयोः पूर्वं विशुद्धार्थज्ञानम्-तदनु शब्दस्मरणमिति न्यायदर्शनस्य प्रत्यक्षलक्षणसूत्रे भाष्ये वात्स्यायनेन शब्दार्थप्रविभागसंयमसूत्रभाष्ये योगसूत्रभाष्यकृता च स्पष्टमुद्घुष्टम् । ततश्च परस्यां वाचि पश्यन्त्यां वा निहितानां वेदानामपौरुषेयत्वे न विवादावसरः कस्यापि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यमायां वैखर्य्यां वा स्थितानां तु तेषां पौरुषेयत्वं कैश्चित् साध्यते इति सूक्ष्ममालोच्यम् ।

अथ विभक्तयोरपि शब्दार्थयोरर्थस्य पूर्वं निर्विकल्पं ज्ञानं भवतु नाम न्याययोगभाष्यकृतोरभिमतम् । सविकल्पके तु ज्ञानेऽवश्यं शब्दो व्याप्रियत एवेत्यनुभवसिद्धम् । शब्दार्थसम्बन्धमविदुषां बालजडोन्मत्तादीनां ज्ञानं-निर्विकल्पकमेव । तत्रापि वा सामान्यशब्दाः केचन व्याप्रियन्त एवेति शिष्टसम्मतः पन्थाः । न च ऋषीणां ज्ञानं बालमूकजडादिसदृशम् अपितु सविकल्पकमेव तत् निर्विकल्पकस्य व्यवहारायोग्यत्वात् ।

ततश्च मध्यमायामपि वाचि तत्तेषामृषीणां देवतादिविज्ञानैनैश्वर-प्रत्तेन सहेश्वरप्रत्ताः शब्दा एवाविर्भूता इति मन्तव्यं स्यात्-ईश्वर-स्यापि च जगत्कर्तृत्वं व्याचक्षाणैः, उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकर्षा-कृतिमत्त्वं कर्तृत्वम्--इति कर्तृत्वलक्षणं तत्र समन्वाययद्भिः, उपादानज्ञानं चिकीर्षितवस्तुज्ञानं तत्रोत्पाद्यगुणधर्मादिज्ञानञ्चावश्यमङ्गी कर्तव्यम् । तदपि च ज्ञानं सविकल्पकमेव भवेत्-चिकीर्षाकृति-प्रयोजकत्वात्-इति तत्रापि शब्दानुवेधः स्वीकार्यं एव । "स भूरितिव्याहरत् भुवमसृजत्" इत्यादिश्रुतीनामप्ययमेवाभिप्रायो भवितुमर्हति । भूशब्दपूर्वकमर्थज्ञानं प्रागभूत् । ततश्च सृष्टिरिति "वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे" इति मनूक्तिरप्येतमेवाभिप्रायं व्याचष्टे । शब्दवेदग्रहणापेक्षा ईश्वरज्ञाने शब्दा एव वेदशब्दाः, तत् पूर्विका सर्वा सृष्टिरिति तज्ज्ञानं, ते च शब्दाः पूर्वस्मात् कल्पादनुवृत्ता एव स्युः । पूर्वस्मिन्नपि च कल्पे ततः पूर्वस्मात् कल्पादनुवृत्ता इत्यनादित्वं वेदानां सिद्ध्यति । त एव च स्वज्ञाननिष्ठास्त-त्तद्वस्तु तद्गुणधर्मादिबोधकाः शब्दाः ईश्वरेण कृपया महर्षिबुद्धावाविर्भा-विताः । त एव च महर्षिभिः प्रचाराय शिष्यादीनुद्दिश्य प्रकटीकृता इति सुतरां ग्रन्थरूपाणामपि वेदानामपौरुषेयत्वं सिद्ध्यतीति अपौरुषेयत्ववा-दिनां सिद्धान्तः । ईश्वरप्रेरणया ते शब्दा महर्षिबुद्धावाविर्भूता इतीश्वर-कर्तृत्वमपि वेदानां शक्यते वक्तुम् । पौरुषेयत्ववादिनस्तु तत्राप्येवं विकल्प-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यन्ति "समाहितैर्वेदा ऋषिभिर्दृष्टा" इति श्रूयते स्मर्यते च । समाधौ च निर्विकल्पकमेव ज्ञानं भवतीति न तत्र शब्दानुवेधप्रत्याशा । अथ सविकल्पके समाधावेव वेदप्रादुर्भावः, न तत्र निर्विकल्पकं ज्ञानमिति चेत् मन्यतां कथञ्चित् मध्यमायामपि ऋषीणां तत्तद्विज्ञानसहकृतशब्दप्रादुर्भावः । तदनु त एव शब्दा वैखर्या प्रकटीकृताः । तद्विज्ञानं परिशील्य स्वाभिप्रायेण स्वीया एव शब्दा मन्त्रादिरूपेण निबद्धा इति पुनरपि भवति विवादस्थानम् । वर्णानित्यत्ववादेन पदस्फोट-साधनेनापि नैष विवादः शमयितुं शक्यः । वर्णानां नित्यत्वेऽपि तदानुपूर्वीघटनायां पुरुषप्रयत्नापेक्षित्वाद्, वाक्यस्फोटेऽपि तदभिव्यञ्जकप्रथमध्वनिकर्तुरेव तत्तन्निबन्धग्रन्थादिकर्तृताया अभ्युपगन्तव्यताया एकत्वात् । अन्यथा रघुवंशकाव्यादीनामप्यपौरुषेयत्वव्यवहारप्रसक्तेर्दुष्परिहरत्वात् । तस्मादृषीणां मनसि विज्ञानसहकारेण शब्दाः प्रादुर्भूतास्त एव मन्त्रब्राह्मणरूपतामाप्ता यदि तर्हि अपौरुषेया वेदाः ।

यदि तु तत् तद् विज्ञानं परिशील्य सुस्पष्टं सर्वजनबोधनायान्ये शब्दा ऋषिभिर्निबद्धास्तदा पौरुषेया इमे शब्दरूपा वेदा इत्येव मतभेदोऽवशिष्यते । तत्र त एव शब्दाः, इत्यपौरुषेयत्ववादिनां मीमांसकादीनामभिमतम् । निरुक्तदैवतकाण्डोक्तरीत्या शतपथाभिशाप-परिदेवनादिश्रवणाद् विपत्प्रतीकाराशंसाश्रवणाद् ब्राह्मणे परकृतिपुराकल्पश्रवणात् स्वीया एव शब्दा ऋषिभिर्निबद्धा इत्येतन्महर्षिकृतत्ववादिनां मतम् ।

अत्रापि लभ्यते प्राक्तनशिष्टसम्मतिः । तथा चाह भगवान् कणादः
" बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे, ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिर्लिङ्गम् "
(वै० शे० सू०)

व्याख्याकृतोऽत्र सूत्रेणानेन ईश्वरबुद्धिपूर्वकत्वं साधयन्तो वेदस्येश्वरकर्तृत्वे सूत्रसंमतिमाहुः—उत्तरस्य च सूत्रस्य ब्राह्मणेषु या देवादिसंज्ञाः उपलभ्यन्ते, तत्संज्ञाकारणं बुद्धिमन्तमन्तरेण न सम्भवतीति तस्यापीश्वरकृतत्वं साधयन्ति । अन्ये तु ईश्वरसाधनस्यात्र प्रकरणे प्रसक्त्यभावाद्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अपौरुषेयत्वखण्डन एव महर्षेः कणादस्य प्रवृत्तेः, पुरुषबुद्धिपूर्वकत्वमेव सूत्रेण साधितमित्यभिप्रयन्ति। उत्तरस्य च सूत्रस्य ब्राह्मणानां 'ऐतरेयम्'–'साङ्ख्यायनम्'–'तैत्तिरीयम्'–'काठकम्'–इत्याद्यानि यानि नामान्युपलभ्यन्ते, तान्यपि तत्तत्पुरुषसम्बन्धं साधयन्तीत्यर्थमाहुः। यद्यपि मन्त्रसंहितानामपि 'शाकलसंहिता', 'वाजसनेयसंहिता' इत्यादीनि नामान्युपलभ्यन्ते, परन्तत्र सूक्तर्षीणां वा पृथक् स्मरणात् सङ्ग्रहकर्तृत्वमेव शाकल्यादीनां शक्यते व्याख्यातुम्। ब्राह्मणानि तु एकैकस्यैव ऋषेः कृतिरिति तन्नाम्ना तत्कृतत्वमेव सिद्ध्येदिति ब्राह्मणानां विशेषः कणादेन दर्शितः। भाष्यकृद्भिर्या देवादीनां संज्ञा आख्याताः, यत्संज्ञाकरणेनेश्वरः साधितः, ताः संज्ञास्तु मन्त्रेष्वपि उपलभ्यन्त एवेति ब्राह्मणपदं सूत्रे निरर्थकं स्याद् इति विचारयन्तु सुधियः।

भगवता पाणिनिनाऽपि च "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" (अ० ४।३।१०५) इति सूत्रे ब्राह्मणेषु विशिष्य पुराणप्रोक्तत्वं नवीनप्रोक्तत्वञ्च व्यञ्जितम्।

यत्तु "आख्याप्रवचनात्" इति सूत्रभाष्ये मीमांसाभाष्यकृता श्रीशबरस्वामिना 'काठकम्' 'कालापकम्' इति संज्ञाः प्रवचनाज्जाताः, न तु विरचनादिति समाहितम्। तत्र दृष्टं मतम् "तेनप्रोक्तम्" (अष्टा० ४।३।१०१) इति सूत्रभाष्ये महाभाष्यकृता पतञ्जलिमुनिना 'ग्रामे-ग्रामे काठकं कालापकञ्च प्रोच्यते न च तत्र प्रत्ययो दृश्यते' इत्यादिना निष्कृतम्। तदग्रे च 'कृते ग्रन्थे' इति सूत्रेणैव काठकादिशब्दानां सिद्धिं प्रदर्शयता महाभाष्यकृता 'ननु चोक्तं तर्हि च्छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानि छन्दांसि' इति शङ्कित्वा-यद्यप्यर्थो नित्य, यावदसौ वर्णानुपूर्वी सा अनित्या। तद्भेदाच्चैतद् भवति काठकम्-कालापकम्-मोदकम्-पैप्पलादकम् इति समादधता वेदानां पौरुषेयत्वं सुस्पष्टमङ्गीकृतम्।

तेन स्पष्टमिदं यद् नित्यमर्थमुपलभ्य शब्दसमूहरूपा मन्त्राद्याः ऋषिभिर्विरचिता इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एतद् भाष्यग्रन्थं व्याचक्षाणः कैयटः— 'महाप्रलयादिषु वर्णानुपूर्वीविनाशे पुनरुत्पद्य ऋषयः संस्कारातिशयाद् वेदार्थं स्मृत्वा शब्दरचनां विदधतीत्यर्थः', इति स्फुटमाह। अंशेन वेदस्य नित्यत्वं स्वीकृत्य अंशेनानित्यत्वमाह इति विवृण्वंश्चोद्द्योतकारो नागेशभट्टोऽपि पौरुषेयत्वप्रक्रियायामेवानुकूलः।

किञ्च 'न कदाचिदनीदृशं जगद्' इत्यभिमन्यमानाः श्रुतं स्मृतञ्च सृष्टिप्रलयादिप्ररोचनार्थत्वेनाप्रमाणं कथयन्तो मीमांसकाः साधयन्तु नाम वर्णानुपूर्व्या नित्यताम्। श्रुतिपुराणाद्युक्तसृष्टिप्रलयादिक्रमे विश्वसतां तु शिष्टानां नेतोऽन्या युक्त्युपेता प्रक्रिया सम्भवति यत्कल्पादावाविर्भूता ऋषय एवेश्वरप्रसादेन तत्तज्ज्ञानमुपलभ्य मन्त्रादीन् विरचयन्तीति।

अपि च अस्मर्यमाणकर्तृकत्वाद् अपौरुषेयत्वं शब्दरचनात्मकानां वेदानां साधयन्ति मीमांसकाः। तत्र प्रतिसूक्तं प्रतिमन्त्रं वा ऋषिनामदर्शनात् स्वरूपासिद्धो हेतुः। तन्नामप्रवक्तृणामेव न तु कर्तृणाम्– इति चेत् कथमिदं साध्यते भवद्भिः, अपौरुषेयत्वान्यथानुपपत्तेरिति चेत् सिद्धे पौरुयेयत्वे ऋषिनाम्नां प्रवचनकर्तृत्वपर्यवसानम्, प्रवचनकर्तृत्वपर्यवसाने तु अपौरुषेयत्वसिद्धिरिति-अन्योन्याश्रयो दुरुद्धर आपतति।

अथ यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति। 'एवमुच्चावचैरभिप्रायैः, ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति।' 'तयोर्भासो? संसङ्गं दृष्ट्वैवमवक्ष्यत्' (दैवतकाण्डप्रथमाध्याये)' त्रितं कूपे वहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रञ्च भवति। (अध्याय ४)।

उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः वेदञ्च वेदाङ्गानि च (अध्याय १)— इत्यादिबहुशो ब्रुवन् निरुक्तकृद् भगवान् यास्कोऽपि अर्थस्य दर्शनम्-शब्दानुपूर्व्याश्च विरचनं स्फुटमभिप्रैति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यदि तु लौकिकप्रमाणन्तरेणार्थमुपलभ्य विरचितत्वं पौरुषेयत्वं तदभावश्चापौरुषेयत्वमित्यभियुक्तपरिभाषितमपौरुषेयत्वं स्वीक्रियते तदा न कस्यापि विवादः।

लौकिकप्रमाणान्तरेणार्थोपलभ्यस्यास्माभिरपि निराकृतत्वात्, तपोयोगसमाधिभिरराधितस्येश्वरस्य प्रसादेनैव दैवतविज्ञानादिप्रतिभासस्यात्र समर्थितत्वात्। एवं विधं विरचनमपि प्रवचनमेव शक्यते वक्तुम्-अर्थांशे स्वातन्त्र्यपरिहारेण विरचनशब्दार्थस्यात्रास्वारस्यात्।

प्रवचनकर्ताऽपि गृहीतमर्थं स्वशब्दैर्व्याचक्षाणो नापराध्यतीति यदि मन्येत तदा 'आख्याप्रवचनात्' इति सूत्रभाष्यादिभिरपि न विप्रतिपत्तिः काऽपि भवेत् सिद्ध्येच्च निष्प्रत्यूहमपौरुषेयत्वम्।

अतीन्द्रियार्थज्ञानरूपेण हि वेदाः सर्वथैवापौरुषेयाः, न ते पुरुषैरुत्पादयितुं शक्या अतीन्द्रियत्वादनादित्वाच्च।

वाचो रहस्यम् (वैज्ञानिका वेदाः)

ननु 'नित्यावागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा' इति श्रुत्या,

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

इत्यादि स्मृत्या च वागात्मकस्यैव 'वेदस्याकृतकत्वमुपदिश्यते इति चेत् सत्यम्' 'यद् वै प्रजापतेः परमस्ति वागेव तत्' (शतपथब्राह्मण ५।१।३११) इति वाजपेयश्रुतौ काञ्चिद् वाचमभिलक्ष्य तथा श्रवणात्।

न च सा वागियमेव वेदेषु श्रूयमाणेति भ्रमितव्यम्-तस्याः सर्वलोकात्मकतया, त्रैलोक्यात्मकतया सूर्यात्मकतया चान्यत्रान्यत्र बहुधा श्रूयमाणत्वात्।

तथा हि 'वागवेदं सर्वम्' इत्यैतरेयश्रुतिः सर्वात्मकत्वमाचष्टे वाचः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

'त्रयं वै विद्या ऋचो यजूंषि समानि, इयमेवर्चः, अन्तरिक्षमेव यजूंषि, द्यौः

सामानि, तद्वा एतत्सहस्रं वाचः प्रजातम् द्व इन्द्रस्तृतीये तृतीयं विष्णुः, ऋचश्च सामानि चेन्द्रो यजूंषि विष्णुः-तेजसो वै तत्तेजो जातम्-यदृचश्च साम्नश्चेन्द्रः इन्द्र इति ह्येतमाचक्षते य एव तपति सहैष भर्ता (शतपथ-ब्राह्मण ४।६।७।१।३।११।१५।) इति पुरश्चरणश्रुतिस्त्रैलोक्यात्मकत्व-माचष्टे।

'संवत्सर एवाग्निः (शतपथब्राह्मण १०।४।५।२) तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्' (शतपथब्राह्मण १।५।१।४)— 'सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता 'ऋचो यजूंषि सामानि। तेनाग्निस्त्रेधा विहितः (शतपथ १०।५।१।२)—सा या वाक् असौ स आदित्यः (शत० १०।५।१।४) मण्डलमेवर्चः, अर्चिः सामानि, पुरुषो यजूंषि।

अथैतदमृतम्-यदेतदर्चिर्दीप्यते-इदं तत् पुष्करतर्पणम् (शत.।५।१।५) यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम्। ता ऋचः स ऋचां लोकः।'

'अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम्-तानि स साम्नां लोकः। अथ य-एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः, सोग्निः, ता हि यजूंषि स यजुषां लोकः। सैषा त्रय्येव विद्या तपति' (शत० १०।४।२।१२) इत्यग्निचयनश्रुतिः सूर्यात्मकत्वमाचष्टे।

तस्मादत्राख्याता वागियं, ऋग्यजुः सामानि च सर्वाणि वैज्ञानिका अर्थाः, ते च इमे सृष्टिप्रकरणेऽस्माभिर्व्याख्यातव्याः। तस्मात् तेषां वैज्ञा-निकानामर्थानां नित्यत्वमभिप्रेयते न तु श्रवणेन्द्रियग्राह्यानां वाचां वेदानां वा। वैज्ञानिकवेदाभिप्रायेणैव च—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ ऋ.सं.१०।६।६०

इति श्रुत्या ऋग्यजुः साम्नां यज्ञप्रभवत्वमाख्यायते।

नित्यामामप्यासां वाचां प्रजापतेर्निश्वासरूपेण प्रादुर्भावात्। एता एव तिस्रो वाग्विधयः स्वयम्भूः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"ईश्वरमेवैतं वेदं मन्यन्ते, ईश्वरनिःश्वसितं वा ईश्वरकृतं वा तपःप्रभावात्तु स शुद्धान्तःकरणानामाविर्भूतप्रकाशानामतीन्द्रियदृष्टिमतां हृदि स्वयमाविर्भवतीत्येवार्थः काले काले गृह्यते। तथा च श्रूयते। तद्वा ऋषय ग्रासुः' (शत० २।२।१।१४) इति।

'मनः समुद्रः वाक् तीक्ष्णाभ्रिः, त्रयीविद्या निर्वपणम्' (शत० ७।५।२।५२) इति च।

मनसो वै समुद्राद् वाचाऽभ्रया देवास्त्रयीं विद्यां निरखनन्।
ये समुद्रान्निरखनन् देवा तीक्ष्णाभिरभ्रिभिः।
सु देवो ग्रद्य तद् विद्याद् यत्र निर्वपणं दधुः॥ इति च।

तथा च 'ये समुद्रा' इत्यादिमन्त्रस्यायमर्थः—

ये-देवा विद्वांसः, समुद्रात्—मनसः सकाशात्-तीक्ष्णाभिः, ग्रभ्रिभिः-कुशलाभिः वाग्भिः, यद् निरखनन्—ग्रन्तःस्थितं बहिः प्रादुरभावयन्। तदेतद् – निर्वपणम्—त्रयीविद्यारूपं दानम्, यत्र-ग्रन्थे, दधुः–स्थापितवन्त.। तदद्य सुदेवः—श्रेष्ठो विद्वानेव विद्यात्। स्वैः शब्दैः ऋषिभिर्व्याख्यातमपि न सर्वैर्बोद्धुं शक्यम्-किन्तु विशिष्टप्रज्ञैर्विद्वद्भिरेव, विषयस्यातिगहनत्वात्। देवशब्दो विद्वदर्थकोऽपीति शतपथप्रमाणेन साधितं पूर्वम्।

ग्रन्यच्च 'अजान् ह वै पृश्नीन् तपस्यमानान् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्। त ऋषयोऽभवन्। तद् ऋषीणां ऋषित्वम्' (तै० ग्रा० २।६। इत्यपि श्रुतिः।)

ग्रस्याः ग्रर्थः—स्वयम्भु— ब्रह्मज्ञानरूपम्। तपस्यमानान्, ग्रजान्-पृश्नीन् ग्रभ्यानर्षत्— प्राप्नोति। त एव एतेनैव ब्रह्मप्राप्तिहेतुना ऋषयोऽभवन्।

ग्रत्राजशब्दमेवं व्याचख्यौ भाष्यकृन्माधवाचार्यः — यत्ते तादृशा ऋषयः। एकवारमेव सृष्ट्यादौ समुत्पन्नाः, न भूयोऽस्मदादिवज्जगति जायन्ते–जन्ममरणप्रवाहे न पतन्ति तेन ग्रजा उच्यन्ते।' तस्माज्ज्ञानान्मुक्ता भवन्ति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

आधिकारिकरूपेण तिष्ठन्तीति वा तात्पर्यम् । यथा—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजोऽह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

इत्यादिषु पुरुषपरत्वेन प्रसिद्ध एवाजब्दः प्राकृतबन्धनरहितेषु विशुद्धज्ञानमयत्वेन साक्षात् पुरुषरूपेषु तेषु महामहिमसु प्रयुक्त इति भाव्यम् ।

पृश्नीन्-शुक्लान् इति यावत् । यद्वा अजनाम्ना पृश्नीनाम्ना च पुराणेषु केचिद् ऋषयः, तदभिप्रायेणैवेदमुक्तं स्यात् ।

अन्यत्राऽपि श्रूयते—

यज्ञेन वाचः पदवीयमायंस्तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्तरेभा अभिसंनमन्ते ।।इति।।
(ऋ० सं० १०-७१-३)

इमं मन्त्रं व्याचख्यौ भाष्यकृच्छ्रीमाधवाचार्यः—

विदितार्थाः धीराः, पदवीयं-पदेन ज्ञातव्यः पन्थाः-पदवीयम् तं वाचः, मार्गम् यज्ञेन-आयन् प्राप्तवन्तः ।

ऋषिषु-अतीन्द्रियार्थदर्शिषु प्रविष्टां तां वाचम् अन्वविन्दन् अलभन्त । अनन्तरं तां वाचम् आभृत्य-आहृत्य । पुरुत्रा-बहुषु देशेषु । व्यदधुः—व्यकार्षुः—सर्वान् मनुष्यानध्यापयामासुः इत्यर्थः ।

एतादृशीं वाचं रेभाः शब्दायमानाः, पक्षिणः—पक्षिरूपाणि-गायत्र्यादीनिच्छन्दांसि, अभिसंनमन्ते-अभितः संगच्छन्ते इति ।

अत्र ऋषीणां हृदयेषु ज्ञानप्रादुर्भावः, तत् कृतं वाग्रूपेण मुनीनामध्यापनम् । मुनिकृतश्च मनुष्येषु तत्-प्रचारः, इति क्रमः स्पष्टमाम्नातः । चतुर्थपदोक्तं छन्दोरहस्यन्तु छन्दःसमीक्षायां श्रीविद्यावाचस्पति—कृतायां द्रष्टव्यम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

किञ्च अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवां एह वक्षति' (ऋं. सं. १ मं. १ सू. २ म.) इत्यादि श्रुतिनिदर्शनेषु प्रयुक्तः ऋषिशब्दः, पौर्वापर्यानुसन्धानात् साक्षात्कृतधर्मसु प्राणानां विद्वत्सु मनुष्यविशेषेष्वेव प्रवर्तते इति सुस्पष्टम् ।

स्मर्यते च—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥ इति ॥

भगवद्गीतायामपि— ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् (अ. १३।५) इति छन्दसामृषिगीतत्वं स्पष्टं भगवतोक्तम् । अत्र ऋषयो वसिष्ठाद्याः छन्दांसि ऋगादीनि, ब्रह्मसूत्रपदान्युपनिषदः इत्यादि 'श्रीशङ्कराचार्या व्याचक्षते' । एकवाक्यतायां च ऋषीणां कर्तृत्वम् छन्द आदीनां च करणत्वं सुयुक्तं प्रतीयते इति भाव्यं सुधिभिः । इमे महर्षय एव आप्ताः, आप्तश्चैष तमर्थं यथा पश्यति स तथा परप्रत्यायनाय वाचाऽभिनयति । तदस्य द्रष्टुर्वाक्यं श्रुतिः तत्प्रमाणमनपेक्षत्वात् ।

श्रोतुश्च वाक्यं स्मृतिरित्युच्यते, तच्च परतः प्रमाणं भवति । स्वप्रामाण्याय श्रुतिसापेक्षत्वात्-असाक्षात्कृतधर्मतया तत्र वक्तुः परप्रत्ययालम्बनेनैवार्थस्य ग्राहितत्वात् ।

न तथाऽयं साक्षात् कृतधर्मा तमर्थमाप्तः स्वोक्तिप्रामाण्याय परप्रत्ययमपेक्षते । तस्माद् द्रष्टुर्वाक्यं स्वतः प्रमाणं भवति ।

ज्ञानसामान्यार्थतया दृशिः बहुत्र व्यवह्रियमाणोपि प्रत्यक्षज्ञाने विशेषेण प्रसिद्धः ।

प्रत्यक्षञ्च इन्द्रियजन्यं ज्ञानमेवेति यद्यपि नैयायिकाः आतिष्ठन्ते, परं वेदान्तादिषु निर्मलः सन्देहविपर्ययादिलेशेनापि कालत्रयेऽस्पृष्टः अशेषविशेषविषयकस्य स्फुटः प्रतिभासः प्रत्यक्षशब्देनोच्यते ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अत एव मननेनोन्मूलितसंशयविपर्ययां निदिध्यासनेन स्फुटतांगतां महावाक्यजन्यामपि तादृशीं धियं साक्षात्कारपदेनैवाभिदधति वेदान्त-निष्णाताः।

उक्तञ्च—

आविर्भूतप्रकाशानामनभिप्लुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते॥

नैयायिका अपि च योगजं ज्ञानं अलौकिकप्रत्यक्षमिति प्रतिपद्यन्ते। ततश्च तपोयोगप्रभावजनितेनेश्वरानुग्रहेणेदृशं ज्ञानं यैः प्राप्तं ते द्रष्टारः त एव ऋषयः।

तेभ्यश्चोपदेशेन यैर्लब्धं ज्ञानं ते भवन्ति मुनयः।

ऋषीणां वाक्यं श्रुतिरिति व्यपदिश्यते। अत एवार्थद्रष्टृत्वाभि-प्रायेण मन्त्रप्रणेतृषु द्रष्टृपदं प्रयुञ्जत आचार्याः। मुनीनान्तु स्मृतिरिति, तेषां साक्षाद् द्रष्टृत्वाभावात्-श्रुतमेवार्थं स्मृत्वा तेषां वाक्यप्रयोगसम्भ-वात्। तत एव ते कर्तार एव ग्रन्थानामुच्यन्ते।

यद्यपि मनुयाज्ञवल्क्यादयः साक्षाद् द्रष्टार आसन्, परं मनुस्मृत्या-दिषु न तेषां साक्षाद् वाक्यानि निबद्धानि-अपि तु तच्छिष्यैः तदुपदिष्टोऽर्थो निबद्ध इति सुस्पष्टं स्मृतिपरिशीलिनाम्। तत एव श्रुतीनां स्वतः प्रामा-ण्यम्। स्मृतीनान्तु श्रुतिमूलकतयेति निपुणं निरूपयन्ति मीमांसकाः।

उक्तञ्च वात्स्यायनेन गौतमीय। (न्या० सू० २ अ० १ पा०) सूत्र-व्याख्यायाम् 'आप्तोपदेशः शब्दः।' आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा यथा-दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा। साक्षात्करणमर्थस्याप्तिः, तया प्रवर्तत इत्याप्तः। ऋष्यार्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम्। तथा च सर्वेषां व्यवहाराः प्रवर्तन्ते। स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्-यस्येह दृश्यतेऽर्थः स दृष्टार्थः। यस्यामुत्र प्रतीयते सोऽदृष्टार्थः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अन्यत्रापि न्यायभाष्कारः श्रीवात्स्यायनः 'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् (न्या० द० २ अ० १ पा० ६१ सू०) इति सूत्रं व्याचक्षाण आह' "मन्वन्तरयुगान्तरेषु चातीतानागतेषु सम्प्रदायाभ्यासप्रयोगाविच्छेद इति वेदानां नित्यत्वम्-आप्तप्रामाण्याच्च प्रामाण्यम् ।"

लौकिकेषु शब्देषु चैतत् समानमिति । एतेनाकृतकत्वाद् वेदानां नित्यत्वं प्रामाण्यञ्च सर्वथा खण्डितम् । मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यं, यथाऽऽप्तानां पुरुषाणां, प्रामाण्यात्— तथैव वेदानामपि प्रामाण्यमिति वदंश्च सूत्रकारोऽपि ऋषिकृतत्वं वेदानां स्फुटं व्यनक्ति ।

आयुर्वेदस्य ऋषिप्रणीतत्वे अविवादात्— तद्वदेव च वेदप्रामाण्यस्यात्र व्यवस्थापितत्वात् । मन्त्रा अत्र सूत्रे विषनिर्हरणाद्यर्थं प्रयुज्यमानाः लौकिकाः ग्राह्याः ।

य एवायुर्वेदप्रभृतीनां प्रवक्तारः, त एव वैदिकमन्त्रादीनां द्रष्टारः, तत्प्रामाण्यादेव वेदस्य प्रामाण्यमिति व्याचक्षाणश्च भाष्यकृद् ऋषिप्रणीततां स्पष्टयतीति निपुणं भाव्यम् । दृष्टपदं तु अर्थसाक्षात्कर्तृत्वाभिप्रायेण प्रयुज्यत इत्युक्तमेव प्राक् ।

तदित्थमेष द्रष्टा द्विविधः सिद्धो लौकिकश्च ऋषिश्चेति । तत्रासौ श्रोतृभिरपि सर्वैः शक्यं साक्षात्कर्तुमर्थं दृष्ट्वा प्रब्रूते, नातीन्द्रियं द्रष्टुमनुमातुं वा शक्नोति ।

स लौकिको द्रष्टाप्तः—यस्त्वतीन्द्रियेषु असंवेद्येषु अतीतानागतेषु भावेषु अव्याहतप्रचारां तपःप्रभावजनितां दृष्टिं लब्ध्वा तेनार्षेयचक्षुषा प्रत्यक्षवत् सर्वं याथातथ्येनाधिगच्छति, स ऋषिर्द्रष्टाप्तः । श्रीशङ्कराचार्यपादा अपि देवताधिकरणे " प्रामाण्यं प्रत्यनपेक्षत्वात् प्रत्यक्षं श्रुतिः" " परापेक्षत्वादनुमानं स्मृतिः" इतीममेव श्रुतिस्मृतिशब्दार्थं व्यवास्थापयन् । तत्रैवाधिकरणे च– "स्मरन्ति च शौनकादयो मधुच्छन्दःप्रभृतिभिः ऋषिभिः दाशतय्यो दृष्टा इति ।" प्रतिवेदं चैवमेव काण्डर्ष्यादयः स्मर्यन्ते,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

श्रुतिरपि ऋषिज्ञानपूर्वकमेव मन्त्राणामनुष्ठानं दर्शयति इति अनुक्रमण्या-मुक्तानामृषीणां द्रष्टृत्वं स्वीचक्रुः। द्रष्टृत्वमर्थाभिप्रायेणेत्युक्तमेव।

अयमेवार्थो निष्कृष्येत्थं द्रष्टव्यः। द्रष्टा-आप्तः, अनूचान इत्येकोऽर्थः योऽर्थमीक्षते, अन्वीक्षते, परीक्षते, समीक्षते, विपश्यति स द्रष्टा।

चक्षुरादीन्द्रियजं लिङ्गजन्यं वा यज्ज्ञानं तज्जन्यं पार्ष्टिकं निर्विकल्पकं ज्ञानमवगमः, सोऽधिगमः, तत्प्रत्यक्षम्-सा प्रमा, सार्थस्याप्तिः।

तत्सम्पन्न आप्तः।

अथ योऽर्थं दृष्ट्वा याथातथ्येनावगम्य यथादृष्टमन्वाचष्टे स उपदेष्टा, सोऽनुशास्ता, सोऽनूचानः।

एवमेषां सामानाधिकरण्यं भवति।

तत्रेदं द्रष्टुर्दृश्यं त्रिविधम्—(१) भौतिकं (२) दैविकं, (३) अतीन्द्रियञ्च। तत्र भौतिकेषु अर्थेषु ये द्रष्टार आप्ता अनूचानास्तेषु ऋषिशब्दो नास्ति।

ये तु दैविकेषु अतीन्द्रियेषु चार्थेषु द्रष्टारस्तेष्वयं ऋषिशब्दः प्रवर्तते।

सर्वस्यास्य प्रकरणस्यायं निष्कर्षः—

सर्वप्रतिपत्तिसमन्वयः

यद् वेदशब्दः तदवान्तरविशेषवाचका ऋग्यजुःसामाथर्वशब्दाश्च द्वेधा श्रुतिष्वेव व्यवहृताः वैज्ञानिकार्थपराः, ज्ञानपराश्च। अव्ययपुरुषकलासु अन्यतमा वाक्; ऋग्यजुःसामाथर्वरूपेण तद्वितानश्चैषां शब्दानां वैज्ञानिकोऽर्थः। सोऽयं सृष्टिप्रकरणे व्याख्यातव्यः।

ज्ञानपरो वेदशब्दोऽपि ज्ञाने तत्सम्बद्धे (जनके जन्ये वा) ज्ञानविषयीभूतेषु लौकिकेष्वलौकिकेषु चार्थेषु प्रवर्तते।

एषां त्रयाणामप्यर्थानां विशेष्य-विशेषणभावे कामचार उन्नेयः सर्वविधलौकिकालौकिकार्थविषयकं शब्दाभिव्यक्ति—प्रयोजकम्-अभिव्यक्त-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

शब्दप्रयोज्यं वा ज्ञानं वेदः, तादृशज्ञानविषयी-भूतास्ते ते अर्थाः वेदाः तज्ज्ञानानुवेधकः तत्तदर्थज्ञानप्रयोज्याभिव्यक्तिः, अभिव्यक्तः सन् तत्तदर्थ-ज्ञानप्रयोजको वा शब्दसमूहो वेद इति ।

समुदाये च वृत्ताः शब्दाः अवयवेष्वपि प्रवर्तन्ते इति-व्याख्यातपूर्व-न्यायेन केवले ज्ञाने, केवले शब्दसमूहे, केवलेष्वर्थेष्वपि च वेदशब्दप्रवृत्तिः। वेदनं वेदः, विद्यते (ज्ञायते) अनेन, वेद्यते (ज्ञाप्यते) अनेनेति वा वेदः । विद्यन्ते वा ये ते वेदा इति–विभिन्नाभिर्व्युत्पत्तिभिर्विभिन्नेष्वर्थेषु विभिन्ना वेदशब्दा इति वाभ्युपगम्यताम् ।

तत्र केवलज्ञानाभिप्रायेण प्रयुक्ते वेदशब्दे वेदस्यापौरुषेयत्वम् । ज्ञानस्य स्वस्वरूपेण नित्यत्वात्, केनाप्युत्पादयितुमशक्यत्वात् । ईश्वररूपा वेदा इत्यप्यत्रैव शक्यते वक्तुम्—ईश्वरस्य ज्ञानरूपतया श्रुतिस्मृत्यादिषु सर्वत्र व्यवहृतत्वात् ।

तत्तदर्थोपहितज्ञानाभिप्रायेण ईश्वरनिःश्वसितं वेदाः, ज्ञानस्य नित्यत्वेन अर्थोपहितत्वमात्रस्येश्वरसम्पादितत्वेन प्रणीतत्वकथनस्यासाम-ञ्जस्यात् ।

निःश्वसितत्वन्तु ततो निष्क्रान्तत्वमिति निरूपितं प्राक् । आगमेष्वपि नादो नाम शक्तेः शक्तिविशिष्टस्य शिवस्य वा प्रथमं कार्यमुच्यते, बहुत्र सोऽपि नादब्रह्मनाम्ना ख्याप्यते । स ब्रह्मनिःश्वसितमेव शक्यते वक्तुम् । तन्नादब्रह्म 'ओम्' इति प्रणवरूपेणाभिनयन्ति स्मृतिकाराः । नादादेव तत्र शब्दार्थोभयसृष्टिरुक्ता, इहापि प्रणवद्वयविद्यां सृष्टिमामनन्ति स एव प्रणवो मुख्यो वेदः । तस्यापि चापौरुषेयत्वेनित्यत्वे वा न विवादः । इयमेवोच्यते पश्यन्ती वाक् । यत्र न शब्दार्थावविभक्तौ । तत्र पुरुष व्यपारः सम्भवति । तत्तदर्थपरत्वे चेश्वरप्रणीता इति युक्तमेव अर्थानामीश्वरनि-मितत्वात् ।

ज्ञानानुवेधकशब्दसमूहवाचके वेदशब्देऽपि शब्दनित्यत्ववादिनामपौरुषेया वेदाः, अनित्यत्ववादिनान्तु ईश्वरप्रणीताः । पुरुषाणान्तु ज्ञानानु-वेधकशब्दानामुत्पादने व्यापार इति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अथ आदिप्रवक्तॄणां ज्ञानप्रयोज्यशब्दसमूहाभिप्रायेण, श्रोतॄणां ज्ञान-प्रयोजकशब्दसमूहाभिप्रायेण वा प्रयुक्ते वेदशब्दे तु ऋषिप्रणीता वेदाः—केश्चिदाप्तैरुच्यन्ते ।

ऋषिभिरेव ईश्वरप्रसादेन ज्ञानमाप्य मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दसमूहस्य प्रयुक्तत्वात् तत्रापि शब्दनित्यतावादे वाक्यरचनाभिप्रायेण प्रणीतत्वं व्यवहरणीयं—महर्षिप्रणीतत्वमते ।

अनित्यतावादे तु तादृशवाक्याभिव्यञ्जकप्रथमध्वनिकर्तृत्वमात्रेण प्रणेतृत्वमिति यथायथं भाव्यम् ।

तादृशं कर्तृत्वं तु सर्वेषामेवाभिमतम् । लोके प्रथमोच्चारण-कर्तृत्वेन कस्यापि स्वीकर्तुमाव श्यकत्वात् । लौकिककालिदासादि-वाक्यानिप्रामाणान्तरेणार्थमुपलभ्य स्वयमूहित्वा रचितानि, वेदवाक्यानि तु नैवम्, किन्तु ईश्वरप्रसादलब्धार्थ-ख्यापकानीति महद्वैलक्षण्यम् । तथा च तपोयोगादिना ईश्वरप्रसादमासाद्यः समाधौ तत्-तत् स्वर्गापूर्वदेवतादिज्ञानं यज्ञस्वर्गादिकार्यकारणभावज्ञानञ्च प्रत्यक्षरूपमवाप्य महर्षिभिर्ऋषिभिश्च मन्त्रा ब्राह्मणानि च प्रकटीकृतानि । तत्तेषु मन्त्रेषु तमेव ऋषित्वेनाद्यापि स्मर्यन्ते-ब्राह्मणान्यपि च तत्तद्ऋषिनाम्ना प्रसिद्धयन्ति ।

न्येवेति । विलमग्रहणाय-वैरूरीवाग्रूपेण विभिन्नरूपतया ग्रहणायेति यावत् ।

वृहद्देवतासर्वानुक्रमणीचाप्येतमेवार्थमेवमेव बोधयति इति दर्शितं प्राक् । तदित्थं वेदाविर्भावविषयकं मतत्रयं तत् समन्वयञ्च विस्तरेण प्रादर्शयाम । बहुधा च वेदानामपौरुषेयत्वमेव पर्यवस्यतीति अपौरुषेयत्वमेवानेकधा प्रत्यपीपदाम ।

पुराणाविर्भावक्रमः

इयं सर्वाऽपि व्यवस्था पुराणवेदेप्येवमेवानुसंधेया । यतो हि "इतिहास पुराणं पञ्चमो वेदः" इत्युपनिषदादिप्रामाण्येन प्रथमप्रकरण एव साधितम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इयांस्तु विशेषो यद् यज्ञवेदे मन्त्राणां यज्ञेषूच्चारणमावश्यकमिति तत्र शब्दानुपूर्वीरक्षणे महान् प्रयत्नः क्रियते, बिन्दुविसर्गादिकमप्यन्यथा न भवेदिति तदर्थमनेके विकृतिपाठा अक्षरपदादिगणनापरा ग्रन्थाश्चापि निबध्यन्ते स्म। तेन न तत्र मनागपि शब्दानामानुपूर्व्या वाऽन्याथाभावो जातो जायते वा। ब्राह्मणेष्वपि विधिवाक्यादीनि सन्तीति तेषामपि शब्दानुपूर्वीरक्षा सम्यक् क्रियते। पुराणवेदस्य तु केवलमर्थं एव तात्पर्यं-मित्यर्थस्यैव रक्षायां प्रयत्नः।

शब्दानुपूर्व्यास्तु संक्षेपविस्तराभ्यां संवादेषु प्रश्नोत्तराभ्याञ्च समये समये परिवर्तनं जायते, अत एव पुराणानि स्मृतय उच्यन्ते। यत्र केवलमर्थरक्षायै प्रयत्नः, शब्दानान्तु परिवर्तनं सह्यते, ताः स्मृतयः। शब्दानां तदानुपूर्व्याश्चापि यत्र रक्षा ताः श्रुतय इति व्यवहारात्।

अर्थदृष्ट्या तु इयमपि पुराणविद्या देवानां ऋषीणामवताराणां वा हृदये प्रथमं प्रादुर्बभूव। तैश्च क्रमेण शिष्यप्रशिष्यपरम्परायां प्रचारितेति तेषु तेषु पुराणेष्वेव तत् परम्परा कीर्तिता।

तथाहि ब्रह्मपुराणे व्यासो वदति—

हिरण्यगर्भादृषिणा वशिष्ठेन समाहृतम्।
वशिष्ठादृषिशार्दूलो नारदोऽवाप्तवानिदम्॥
नारदाद् विदितं मह्यमेतदुक्तं सनातनम्॥ इति।

(ब्र० पु० अ० २४४ श्लो० ४५)

विष्णुपुराणे तु विस्तरेण परम्परा प्रोक्ता। तथाहि पराशरो वदति—

इदमार्षं पुरा प्राह ऋभवे कमलोद्भवः।
ऋभुः प्रियव्रतायाह स च भागुरयेऽब्रवीत्॥
भागुरिस्तम्भमित्राय दधीचाय च प्रोक्तवान्।
सारस्वताय तेनोक्त भृगुसारस्वतेन च॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भृगुणा पुरुकुत्साय नर्मदायै च चोक्तवान् ।
नर्मदा धृतराष्ट्राय नागायापूरणाय च ॥
साम्याच्च नागराजाय प्रोक्तं वासुकये द्विज ।
वासुकिः प्राह वत्साय वत्सश्चाश्वतराय वै ॥
कम्बलाय च तेनोक्तमेलापुत्राय तेन वै ।
पातालं समनुप्राप्तस्ततो वेदशिरा मुनिः ॥
प्राप्तवानेतदखिलं स च प्रमतये ददौ ।
दत्तं प्रमतिना चैतज्जातुकर्णाय धीमते ॥
जातुकर्णेन चैवोक्तमन्येषां पुण्यकर्मणाम् ।
पुलस्त्य वरदानेन यत्राप्येतत् स्मृतिं गतम् ॥
मयाऽपि तुभ्यं मैत्रेय यथावत् कथितं त्विदम् ।
त्वमप्येतच्छिनीकाय कलेरन्ते वदिष्यसि ॥
(विष्णु पु० षष्ठांशे अ० ८, ४३-५१)

वराहपुराणे च—

ब्रह्मा स्वसूनवे प्रादात् पुलस्त्याय महात्मने ।
सोऽपि रामाय च प्रादाद् भार्गवाय महात्मने ॥
असावपि स्वशिष्याय प्रादादुग्राय चारिणे ।
उग्रोऽपि मनवे प्रादादेष वः कीर्तितो मया ॥
सम्बन्धः पूर्वकल्पीयः, द्वितीये शृगु साम्प्रतम् ।
सर्वज्ञाल्लब्धवानस्मि त्वञ्च मत्तो धराधरे ॥
त्वत्तश्च तपसा सिद्धाः वेत्स्यन्ते कपिलादयः ।
क्रमेण यावद् व्यासेन ज्ञानमेतद् भविष्यति ॥
तस्यापि शिष्यो भविता नाम्ना वै रोमहर्षणिः ।
असौ शुनकपुत्राय कथयिष्यति नान्यथा ॥
अष्टादशपुराणानि वेद द्वैपायनो गुरुः ।
(वराह पु० ११२।६७-७४)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तथैव स्कन्दपुराणे—

एतत् पुराणमखिलं पुरा स्कन्देन भाषितम्।
भृगवे ब्रह्मपुत्राय तस्माल्लेभे तवाङ्गिराः॥ १।
ततश्च च्यवनः प्राप स ऋचीकस्ततो मुनिः।
एवं परम्पराप्राप्तं सर्वेषु भुवनेष्वपि॥
(स्कन्द पु० नागरखण्ड २७८।१-२)

कूर्मपुराणेऽपि—

श्रुत्वा नारायणाद् देवान्नारदो भगवानृषिः।
गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः॥
पराशरोऽपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः।
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम्॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते।
सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम्॥
सनकाद् भगवान् साक्षाद्देवलो योगवित्तमः।
अवाप्तवान् पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम्॥
सनत्कुमाराद् भगवान् मुनिः सत्यवती सुतः।
एतत् पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थं सञ्चयम्॥
तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनम्।
(कूर्म पु० उत्त० ४६/१४०-१४५)

लिङ्गपुराणेऽपि—

ईशानकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य महात्मना।
ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लिङ्गमुत्तमम्, इत्यादि।

एवं प्रायेण सर्वेष्वेव पुराणेषु परम्परा दृश्यत एव। मात्स्ये बृहन्नारदीये चापि पुराणानामेवं विधा परम्परा बहूनामुक्ता। तेन स्पष्टं सिध्यति यद् वेदविद्या इव पुराणविद्याऽपि ब्रह्मणो मुखादेव प्रथमं प्रादुर्भूता। क्रमेण

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

च देवेषु ऋषिषु अवतारेषु वा प्रसृता। विद्येयं संवादरूपेणान्येष्वपि प्रससारेति स्फुटं सिद्ध्यति।

सर्वेष्वपि च पुराणेषु ऋषीणामवतारादीनाञ्च संवादरूपेण प्रश्नोत्तरादिकमुपलभ्यत एव। एवं प्रकीर्णानां संवादानां सङ्ग्रहरूपोऽस्ति विस्तृतः पुराणवेदः पुरा स्थित आसीत्। तस्यैव च वेदरूपेण विद्यारूपेण चोल्लेखो मन्त्रब्राह्मणात्मके वेदे उपनिषत्सु च प्रागाख्यातः।

अयञ्च पुराणवेदो यद्यपि स्वतंत्र एवासीदिति प्राक् सप्रमाणं प्रत्यपीपदाम। अद्यापि तस्य बह्वोंऽशा यज्ञवेदेऽपि मन्त्रब्राह्मणयोः प्रसङ्गात् प्राप्यन्ते। मानुषो हि यज्ञो प्राकृतयज्ञाधारेणैव प्रवर्तितः। प्रकृतौ हीयं सततं प्रवर्तते दानादानरूपा प्रक्रिया, अग्नौ सोमाहुतिरूपा च प्रक्रिया। तामेवावलम्ब्य तत्र स्वानुकूलं परिवर्तनं विधातुं मानुषा यज्ञाः श्रुतिभिः शिष्यन्ते, इत्युक्तं प्राक्।

तथा च तत्तत्कर्मोपपत्तिप्रदर्शनायाधारभूता प्रकृतयज्ञप्रक्रियाऽपि संक्षेपरूपेण मन्त्रैः, विशेषेण ब्राह्मणैश्चानूद्यते।

सोऽयं वेदेषु समुपलभ्यते तत्र तत्र पुराणांशः, योऽर्थवाद इति ख्यापितो मीमांसायाम्।

'स्तुतिर्निन्दापरकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवाद'। इति।

अत्र पुराकल्पः पुराणांश एव। मुख्यस्य पुराणवेदस्यातिविस्तृतत्वं पुराणेष्वेवोक्तम्—

तथाहि बृहन्नारदीये—

चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।
तदष्टादशधा कृत्वा भूलोके निर्दिशत्यपि।
अद्यापि देवलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम्।
अस्त्येव तस्य सारस्तु चतुर्लक्षेण वर्ण्यते॥

(बृहन्ना० ९२।२२)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मत्स्यपुराणे च—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।
पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया ।
अङ्गानि चतुरो वेदाः, पुराणं न्यायविस्तरम् ।
मीमांसा धर्मशास्त्रञ्च परिगृह्य मया कृतम् ।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ।
अशेषमेतत् कथितम् - उदकान्तर्गतेन च ।
श्रुत्वा जगाद स मुनीन् प्रतिदेवान् चतुर्मुखः ।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ।
व्यासरूपमहंकृत्वा संहरामि युगे युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ।
तथाऽष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ।
अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् शतकोटिप्रविस्तरम् ।।

(मत्स्य पु० ५३ अ०, श्लो० २-१०)

एवमन्यत्रापि बहुधा वर्ण्यते। पुराणमेनं प्रतिकलियुगं कश्चिद् ऋषिः संक्षिपति । स एव तदा व्यास इत्युच्यते ।

व्यास इति न व्यक्तिगतं नाम, किन्तु कार्यकरणादौपाधिकम् । यो वेदान् व्यस्यति, हौत्रानुसारं चतुर्धा विभजति, मन्त्रान् ब्राह्मणानि च पृथक् करोति, पुराणवेदञ्च संक्षिपति, सरलया भाषयोपनिबध्नाति, स एव व्यसनाद् - विभजनाद् व्यास इत्युच्यते । विपूर्वकस्य - असधातोर्विभजनार्थकत्वात् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ज्योतिषे हि रेखागणिते वृत्तस्योभयपरिधिस्पर्शिनी - अर्थादवार-पारीणा मध्यरेखा व्यासपदेनोच्यते । सैषा वृत्तं - पूर्वापरभावेन विभजते । तथैव यो वेदपुराणानामवारपारीणः तेषामधिकारानुसारेण पृथक् पृथक् विभाजकश्च स एव व्यासो भवति ।

अष्टाविंशतिर्व्यासाः

अस्मिन् वैवस्वतमन्वन्तरेऽतीतेषु कलियुगेषु यैर्यैर्व्यासकार्यं कृतं तेषां नामान्यपि पुराणेषु स्मर्यन्ते ।

तथाहि कूर्मपुराणे—

अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं वर्तमाने महान् प्रभुः ।
द्वापरे प्रथमो व्यासो मनुः स्वायम्भुवो मतः ।
बिभेद बहुधा वेदं नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ।
तृतीये चोशना व्यासः, चतुर्थे स्याद् बृहस्पतिः ।
सविता पञ्चमे व्यासः, षष्ठे मृत्युः प्रकीर्तितः ।
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वशिष्ठश्चाष्टमे मतः ।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे मतः ।
एकादशे तु ऋषभः, सुतेजा द्वादशे स्मृतः ।
त्रयोदशे तथा धर्मः सुचक्षस्तु चतुर्दशे ।
त्रय्यारुणिः पञ्चदशे, षोडशे तु धनञ्जयः ।
कृतञ्जयः सप्तदशे ह्यष्टादशे कृतंजयः ।
ततो व्यासो भरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वन्तु गौतमः ।
वाजश्रवाश्चैकविंशे तस्मान्नारायणः परः ।
तृणविन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्परः स्मृतः ।
पञ्चविंशे तथा प्राप्ते यस्मिन् वै द्वापरे द्विजाः ।
सप्तविंशे तथा व्यासो जातुकर्णो महामुनिः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पराशरसुतो व्यासः, कृष्णद्वैपायनोऽभवत्।
स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः।
(कूर्म पु० पूर्वार्धं ५२, १-९)

शिवपुराणे च—

ऋभुः[१], सत्यो[२] भार्गवश्च[३] ह्यंगिरा[४]ः सविता[५] द्विजाः।
मृत्युः[६] शतक्रतु[७]र्धीमान् वशिष्ठो[८] मुनिपुङ्गवः।
सारस्वत[९]स्त्रिधामा[१०] च त्रिवृतो[११] मुनिपुङ्गवः।
शततेजस्[१२]स्वयं धर्मो[१३] नारायण इति श्रुतः।
स्वरक्ष[१४]श्चारुणि[१५]र्धीमान् तथा चैव कृतञ्जयः[१६]।
कृतञ्जयो[१७] भरद्वाजो[१८] गौतमो[१९] कविरुत्तमः[२०]।
वाचश्रवा[२१]ः मुनि साक्षात् तथा सूक्ष्मणिः[२२] शुचिः।
तृणविन्दु[२३]र्मुनिः कृष्णः[२४] शक्तिः[२५] शाक्तेय[२६] उत्तरः।
जातूकर्ण्यो[२८] हरिः साक्षात् कृष्णद्वैपायनो[२८] मुनिः।
व्यासावतारान् एवन्तु कल्पयोगेश्वरान् क्रमात्।
(शिव पु० वायवीय ८।४४)

देवीभागवतेऽपि—

मन्वन्तरेषु सर्वेषु द्वापरे द्वापरे युगे।
प्रादुष्करोति धर्मार्थी पुराणानि यथाविधि।
द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा।
वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया।
अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्रन्ज्ञात्वा कलावथ।
पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे।
स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम्।
तेषामेवहितार्थाय पुराणानि व्रतानि च।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मन्वन्तरे सप्तमे च शुभे वैवस्वताभिधे।
अष्टाविंशतमे प्राप्ते द्वापरे मुनिसत्तमाः।
व्यासः सत्यवती सूनुर्गुरुर्मे धर्मवित्तमः।
एकोनत्रिंशत् सम्प्राप्ते द्रौणिर्व्यासो भविष्यति।
अतीतास्तु तथा व्यासाः सप्तविंशतिरेव च।
पुराणसंहितास्तैस्तु कथितास्तु युगे युगे।

ऋषय ऊचुः —

ब्रूहि सूत महाभागः व्यासाः पूर्वयुगोद्भवाः।
वक्तारस्तु पुराणानां द्वापरे द्वापरे युगे।

सूत उवाच—

द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यंकृत्।
तृतीये चोशनाव्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः।
पंचमे सविता व्यासो षष्ठे मृत्युस्तदापरे।
मघवा सप्तमे प्राप्ते वशिष्ठस्त्वष्टमे स्तुतः।
सारस्वतस्तु नवने त्रिधामा दशमे तथा।
एकादशे च त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम्।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे।
त्र्य्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः।
मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा।
अत्रिरेकोनविंशे च गौतमस्तु ततः परम्।
उत्तमश्चैकविंशस्य हर्यात्मा परिकीर्तितः।
वेनो वाजश्रवाश्चैव सोमोमुष्यायणस्तथा।
तृणविन्दुस्तथा व्यासो भार्गवस्तु ततः परम्।
ततः शक्तर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः।
अष्टाविंशतिसंख्येयं कथिता च मया श्रुता।

(देवी० भ० स्क० १ अ० १८-३२)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अत्र केषुचित् स्थानेषु यः परस्परं नामभेद उपलभ्यते, स क्वचित् पर्यायनिर्देशादिति स्पष्टं प्रतीयये। यथा द्वितीये स्थाने कूर्मपुराणे देवीभागवते च प्रजापतिरुक्तः, शिवपुराणे तु सत्य इति। प्रजापतिवाचकः सत्यशब्दोऽपि श्रुतिषु लभ्यत एव। एवं तृतीयस्थाने कूर्मपुराणादौ उशनाः, शिवपुराणे भार्गव इति ताविमौ पर्यायौ। चतुर्थे स्थानें च कौर्मे देवीभागवते च बृहस्पतिः, सोऽयमाङ्गिरस इति शिवपुराणेऽङ्गिरा इति नाम्नैव निर्दिष्टः। विनाप्यपत्यप्रत्ययं पितृनाम प्रयुज्यते क्वचित् पुराणेष्विति शैली।

सप्तमे स्थानें चेन्द्रः, शतक्रतुः मघवा इति स्पष्टं पर्यायाः। एवं द्वाविंशे स्थाने कूर्मपुराणे नारायण इति, देवीभागवते तत् पर्यायेण हर्यात्मेति उपपत्तिः। शिवपुराणे तु सूक्ष्मायणिरिति लेखकप्रमादादेवेति संभाव्यते। तत्र नारायण इत्येव स्यात्। क्वचिल्लेखकप्रमादेन पाठाशुद्धिः समजनीति संभाव्यते। यथा प्रथम एवं स्थानें स्वयम्भुरिति स्वायम्भुव इति च देवीभागवते कौर्मे च दृश्यते, शिवपुराणे तु स्वभूशब्देन उपात्तः स्यात् - तस्य च पाठभ्रंशेन कृभुरिति जातम्।

एकादशस्थाने कूर्मपुराणे ऋषभः, शिवपुराणे त्रिवृत् देवीभागवते च त्रिवृष इत्युक्तम् - सेयं लेखकप्रमादात् पाठाशुद्धिरेव संभाव्यते। एवं चतुर्दशे स्थानें सुचक्षुरिति कौर्मे, शिवपुराणे स्वरक्षपतिः, देवीभागवते च तस्य स्थानेऽन्तरिक्षमिति पाठाशुद्ध्या जातम्। तच्च प्रमादादेव स्थानव्यत्यासेन त्रयोदशे स्थाने पतितम्। षोडशे स्थानें च देवीभागवते कौर्मे च धनञ्जयः शिवपुराणे तु पाठभ्रंशेन कृतञ्जय इति जातम्।

ऐवं लेखकप्रमादादेवानेकत्र स्थानव्यत्यासोऽपि जातः। यथोभयोः पुराणयोः त्रयोदशस्थाने उक्तस्य धर्मस्य, देवीभागवते चतुर्दशत्वं जातम्। अष्टादशस्थाने शिवपुराणे भरद्वाजः, स तु कौर्मे ऊनविंशे गतः इत्यादि।

क्वचिन्नामसंक्षेपोऽपि दृश्यते। तथा पञ्चदशस्थाने देवीभागवते कूर्मे त्र्यारुणिः, शिवपुराणे आरुणिः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

क्वचितु नामान्तरता संभाव्यते। यथा कूर्मे द्वादशस्थाने सुतेजा, शिवपुराणे शततेजा, देवीभागवते भरद्वाज इति तत्र भरद्वाजस्यैव सुतेजा, शततेजा इति नामान्तरं स्यात् । सप्तदशे स्थाने शिवपुराणे कूर्मपुराण च कृतञ्जयः, देवीभागवते मेधातिथिरिति च।

एवमन्यत्राऽपि पुराणेषु व्यासनामसु पाठभेदश्चेदुपलभ्यते, सोऽनयैव रीत्या सुविचार्यं समाधेयः।

वस्तुतस्तु देवीभागवते एकविंशतिपर्यन्तन्तु सङ्ख्यानिर्देशपूर्वकं गणनाकृता - अनन्तरन्तु विनैव संख्यानिर्देशं षड्नामानि स्मृतानि, तत्र क्रमो न विवक्षितो नाम्नां स्थानव्यत्यासो जात इत्येव संभाव्यते।

कूर्मपुराणे च पञ्चषड्विंशयोः स्थानयोर्नामनिर्देशो न दृश्यते सोऽयं लेखकप्रमाद एव स्यात् । तत्र शिवपुराणोक्ते शक्तिः शाक्तेय इत्येव नामनी सम्यक् प्रतीयेते। शाक्तेयपदेन पराशर उक्तः स्यात्। शिवपुराणे कृतञ्जय इति नाम वारद्वयं दृश्यते। तत्रैकत्र धनञ्जय स्थाने कृतञ्जय इति पाठभ्रंशो जातः। चतुर्विंशे स्थाने च वाल्मीकिस्थाने कृष्ण इति पाठान्तरं यद् दृश्यते शिवपुराणे, तत्र वाल्मीकेरेव नामान्तरं कृष्ण इति संभाव्यते । देवीभागवते तु एकविंशनामानन्तरं स्थानव्यत्यासो जात इत्युक्तमेव। तत्र भार्गवनाम्ना वाल्मीकिः षड्विंशे स्थाने निर्दिष्टः।

यत्र तु सर्वथा नामभेदः यथा ऊनविंशे देवीभागवतेऽत्रिरिति, शिवपुराणे गौतम इति, कूर्मपुराणे च भरद्वाज इति, तत्र युगे बहुभिर्मिलित्वा वेदव्यसनादिकं कृतं स्यात् - तत्र केनचिदेकस्य नाम गृहीतम्, अपरेण चापरस्येति संभाव्यते, एवं वायुपुराणे प्रथमखण्डे त्रयोविंशेऽध्यायेऽपि व्यासनामानि विस्तरेण लभ्यन्ते । तत्र प्रत्येकस्मिन् द्वापरे शिवावताराः तेषां शिष्याश्चापि वर्णिताः । व्यासनामानि तु प्रायेण शिवपुराणे न संवदन्ति। क्वचित् लेखकादिप्रमादादिकृतं दृश्यते। यथा षोडषे स्थाने योसञ्चेति पाठो दृश्यते स प्रमादकृत एव स्यात्। एकविंशे वाचःश्रवः स्थाने वाचस्पतिरिति दृश्यते एष पाठो युक्तः स्यात्। द्वाविंशे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सूक्ष्मायणिस्थाने शुक्लायनः। चतुर्विंशे कृष्णस्थाने ऋक्षः स एव शुद्धः प्रतिभाति, ऋक्ष इति वाल्मीकेर्नामान्तरस्य श्रवणात्। पञ्चविंशे शक्तिस्थाने वशिष्ठः, षड्विंशे शाक्तेयस्थाने पराशरः, एकादशस्थाने स्वरक्षस्थाने सुरक्षण इति त इमे पर्याया एव। क्वचित् क्वचित् स्थानपरिवर्तनमपि दृष्टम्। भवतु नाम, नामसु एवं प्रकारको भेदो बहुपुस्तकान्वेषणेनैव संशोध्यः स्यात्। सप्तविंशतिर्व्यासा अस्मात् कलियुगात् पूर्वं वैवस्वतमन्वन्तरीयाः पुराणेषु परिगणिता इति स्पष्टमेव।

कृष्णद्वैपायनोत्पत्तिः

अथास्मिन् अष्टाविंशे कलियुगे श्रीकृष्णद्वैपायनो भगवान् व्यासोऽभूदिति स्पष्टं सर्वेषाम्। कृष्णद्वैपायनश्चायं भगवान् भगवतो विष्णोश्चतुर्विंशमितेषु अवतारेषु एकतम इति श्रीभागवतादौ स्पष्टम्।

युगे युगे तत्कालिकीमावश्यकतामनुसृत्य भगवतस्तत्तच्छक्त्याऽऽवेशेनावतारा जायन्ते। तेष्वयं कृष्णद्वैपायनो भगवतो ज्ञानशक्तेरवतारः। तस्मिन् अपरिमिता मनुष्यातिगा ज्ञामशक्तिरिति नैतद् विस्तारमपेक्षते।

अवतारणाञ्च "जन्म कर्म च मे दिव्यम्" इति भगवद्गीतोक्त्यनुसारं प्रादुर्भावेऽपि विलक्षणता प्रायेण दृश्यत एव। तद्वदस्यापि भगवतः कृष्णद्वैपायनस्य प्रादुर्भावे वैलक्षण्यमेव पुराणेषु वर्णितं दृश्यते। भगवतो वशिष्ठस्य पौत्रः पाराशरोऽस्य जनकः। कैवर्तराजेन पालिता सत्यवती च जननी।

सत्यवत्या उत्पत्तिर्महाभारते आदिपर्वणि त्रिषष्टितमे चतुःषष्टितमे वाऽध्याये एवमाख्याता, वसूनामन्यतमस्यावतार उपरिचरो नाम चेदिदेशस्य राजा बभूव। तस्येन्द्रेण सख्यमासीत्। इन्द्रदत्ते विमानेऽयं बहुधा प्राचरदिति तस्य नामोपरिचरेति जातम्। तस्यासीद् गिरिका नाम भार्याऽति सुन्दरी। एकदा गिरिकाया ऋतुकाले समनुप्राप्ते राजाऽयं पितृणां नियोगान्मृगयार्थं वनं गतो भार्याया ऋतुकालमनुस्मरन्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अत्युत्कण्ठितोऽभूत् तदैव स्कन्नं रेतो विफलं मा भूदिति श्येनपक्षिद्वारेण पुटके निवेश्य भार्या सकाशे प्रेषयामास । तस्य तु श्येनस्य श्येनान्तरेण युध्यतो, मुखात्तत् पुटकं गलितं यमुनाजले मत्स्याः, एकस्याः मुखे पतितम् । सा चेयं मत्स्यी अद्रिका नामाप्सरान्यतमा विप्रशापान्मत्स्ययोनिमनुप्राप्ता बभूव ।

उपरिचरस्य राज्ञो वीर्यादस्या उदरे पुत्र एकः, कन्या चैकेतिद्वयमुत्पन्नम् उदरं विदार्य मत्स्यघातकैर्लब्धम् । तस्योपरिचरराज्ञः समीपे तैर्नीतम् । तत्र पुत्रो राज्ञा रक्षितः, स च मत्स्य नामा नृपतिर्बभूव । कन्यका तु कैवर्तायैव तेन प्रत्यर्पितेति कैवर्तराजेन सा पालिता ।

देवीभागवते तु इयं सत्यवती पितृणां मानसी कन्योक्ता । तस्यायमेवाशयः स्यात् यत् पितृणां नियोगेनोपरिचरो राजा मृगयार्थं गत इति नियोक्तारः पितरस्तस्य मनस्यतिष्ठन् । मनः स्थितेषु च पितृषु यद् रेतः स्कन्दनं तज्जाता कन्या पितृणां मानसी कन्येति व्यवहृते स्म ।

एवं विधाया सत्यवत्या समुत्पत्तौ य इदानीन्तनाः प्रकृतिविरोधं सम्भावयेयुस्ते प्राक्तनानामृषीणां राजर्षीणां वाऽमोघवीर्यत्वमहिमानं न जानन्ति ।

अद्यत्वे तादृश्यमोघवीर्यता ब्रह्मचर्यविरहितेषु आचारहीनेषु जनेषु न संभवतोति पुराप्यसंभवकल्पनं तत्र प्रामादिकमेव, विनाऽपि स्त्रीगर्भं कथञ्चित् वीर्यरक्षां सम्पाद्य घृतघटादिषु सगरस्य घृतराष्ट्रस्य शतसहस्राधिकाः पुत्राः तदानीन्तनैर्वैज्ञानिकैः समुत्पादिताः इति पुराणेषु बहुधैतदुपलभ्यते ।

अद्यापि च विना स्त्रीगर्भप्रवेशं सन्तानोत्पादनचर्चा वैज्ञानिकेषु श्रूयते । वियोनिजन्मानश्चाद्यापि बहुधा श्रूयन्ते । मानुष्या गर्भात् कुक्कुरः समभवत् । वानर्याश्च गार्भान्मनुष्याकारः कश्चित् प्राणी समभूदित्यादिवृत्तं तदा तदा समाचारपत्रेषु पठ्यत एव । महाभारत शान्तिपर्वणि २४२-२४५

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अध्यायेषु तु उपरिचरस्याऽन्या कथापि वर्णिता। उपरिचरो वसुर्हि विष्णोः परमभक्तः इन्द्रस्य च सखाऽऽसीत्। इन्द्रेण तस्मै उपरिचरत्वं स्वस्य समीपे आसनञ्च दत्तम्। सोऽनेकैर्मासैर्यज्ञैर्भगवन्तं प्रीणयामास। कदाचित्तु यज्ञे पशोर्विशसनमावश्यकन्नवेति विषयमलम्व्य महर्षीणां देवानाञ्च विवादः समजनि। तत्र पशुं विशस्य तद्वपाया हवनं कर्तव्यमिति देवानां पक्षः, पशोर्विशसनमनुचितम् बीजैरेव यज्ञाः सम्पाद्याः इति च महर्षीणां पक्ष आसीत्।

प्रवृत्ते विवादे उभाभ्यामपि पक्षाभ्यामुपरिचरो वसुर्मध्यस्थतयाऽङ्गीकृतः। उपरिचरेण च देवानां पक्षं रक्षता पशोर्विशसनमेव समर्थितम् तेन कुपिता महर्षयस्तं शप्तवन्तो यत् त्वमिदानीमन्तरिक्षे न विचरिष्यसि, भूमौ प्रतिव्यास, भूम्यामपि च न ते स्थानं स्यात् न भूम्यन्तस्त्वं प्रवेक्ष्यसीति। तदोपरिचरो वसुरेवं देवैराश्वासितो यन्महर्षीणां शापमन्यथा कर्तुं तु वयं न शक्ताः, परं भूम्यन्तः प्रविष्टस्याऽपि ते जीवनं वयं रक्षिष्यामः, यज्ञे च दीयमाना वसोर्धारा भवता प्रप्स्यते। एवं वसोर्धारां प्राप्नुवन् पुनरपि नारायणं भक्त्या तुष्टाव, भगवता च स काले समुद्धृत इति।

एतत् कथापर्यालोचनेन देवीभागवतोक्तपितृमानसकन्यात्वपर्यालोचनेन च किञ्चिद् वैज्ञानिकं रहस्यमत्र प्रतीयते। देवा ऋषयश्चेमे प्राणविशेषा इति सृष्टिप्रकरणे व्याख्यास्यते। तत्र ऋषिप्राणाः पशोर्वपाया उद्विजन्ति, देवप्राणास्तु तया परिपुष्यन्ति। तत एवोभयोर्विवाद उक्तः। उपरिचरस्तु वसूनामन्यतमो देवविशेष इति देवपक्षग्रहणं तस्य युक्तमेव।

अष्टौ वसवो हि अग्निभागरूपा इति पृथिवीस्थानाः, तेषु पृथिव्यन्तः प्रविष्टोऽप्यन्तरिक्षपर्यन्तं गच्छन् कश्चिदयं वसु प्राणः स्यात्। पितरश्च ऋषियो जाताः, देवानाञ्च जनकाः प्राणाः, तथा च तस्य भूम्यन्तःस्थितस्य वसुप्राणस्य सारः पितृप्राणसम्पृक्तो मत्स्या उदरे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

गर्भीभूय प्रविष्टः स्यात्। तदैव सत्यवती कन्या, मत्स्यौ राजकुमारश्च जनिताविति। भवतु नाम लोकविलक्षणेयं सत्यवत्या उत्पत्तिः। कैवर्तराजस्य तद्गृहे पालनञ्च सुप्रसिद्धचरम्। मत्स्या उदरे समुत्पन्नत्वाच्च मत्स्यगंधेयमासीत्।

दैवादेकदा पराशरो मुनिः यमुनातीरे सम्प्राप्तो यमुनां तरीतुकामो नावमियेष। भुञ्जानश्च तदात्वे कैवर्तराजः स्वपालितां सत्यवतीं मुनिं पारयितुमाज्ञापयामास। तदैवेकान्ते सत्यवतीं दृष्ट्वा मुनिः पराशरः कामवशगोऽभूत्।

ईदृशस्यातिसंयमिनो मुनेरकस्मात् मत्स्यगन्धायामासक्तिरिति दैववशमेव सर्वमिदम्। प्रत्याचक्षाणायां हि सत्यवत्यां - स्पष्टमेव मुनिना पराशरेणोक्तम्।

कदापि च न संमोहो भूतपर्वो वराननै।
दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं सदाऽहं धैर्यमावहम्।
दैवयोगेन वीक्ष्य त्वां कामस्य वशगोऽभवम्।
तत् किञ्चित् कारणं विद्धि दैवं हि दुरतिक्रमम्।
दृष्ट्वाऽहं चाति दुर्गन्धां त्वां कथं मोहमाप्नुयाम्।
पुराणकर्ता पुत्रस्ते भविष्यति वराननै।
वेदंविद् भागकर्त्ता च ख्यातश्च भुवनत्रये॥

(देवीभा० द्वितीय अध्याय-२ स्कन्ध ३२-३५ श्लोकाः)

भवतु नाम। तदैव स्वतपः प्रभावेण जना न पश्येयुरिति नीहारो ऋषिणा सृष्टः, सत्यवती च तपः प्रभावेणैव योजनगन्धा कृता। सुतं प्रसूय पुनस्त्वं कन्यैव भविष्यसीति वरश्चास्यै दत्तः। एवं पराशरसत्यवत्योः समागमे जाते गर्भे, सद्य एव व्यासस्योत्पत्तिः, सद्य एव च वृद्धिं प्राप्य तस्य मातरमनुज्ञाप्य तपसे गमनम्। गर्भाधानकाल एव कथं सुतोत्पत्तिः, कथञ्च जातमात्रस्य शरीरवृद्धिरिति अत्राप्यसंभवशङ्काकल्पना केषाञ्चिद् व्यर्थैव।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

योगजशक्त्या ऋषीणां सर्वमेतत् कर्तुं समर्थतायाः पुराणेषु पदे पदे प्रसिद्धत्वात्। योगेनऽहि विलक्षणा अलौकिक्यः सिद्ध्यः सम्पाद्यन्ते या अद्यत्वे विनष्टप्रायाः प्रतिष्ठितायां योगविद्यायां न ता आसन् सुदुर्लभाः।

उक्तं हि योगदर्शने विभूतिपादे—

"स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद् प्रतजयः ॥"

एतद् व्याचख्यौ भाष्यकृतत्—तत्रापर्थिवाद्याः। (४४ सूत्र) शब्दादयो विशेषाः सहाकारिभिर्धर्मैः स्थूलशब्देन परिभाषिताः। एतद्-भूतानां प्रथमं रूपम्। द्वितीयं रूपं स्वसामान्यं मूर्तिर्भूमिः, स्नैहो जलम्, वह्निरुष्णता, वायुः प्रणामी, सर्वतो गतिराकाश इत्येतत् स्वरूपशब्दे-नोच्यते। अस्य सामान्यस्य शब्दादयो विशेषाः। तथाचोक्तम् - चैकजाति-समन्वितानामेषां धर्ममात्रव्यावृत्तिरिति। समूहस्य देवा एको भागो मनुष्या द्वितीयो भागः। ताभ्यामेवानिचीयते समूहः। स च भेदाभेद-वित्रक्षितः। आम्राणां वनं ब्राह्मणानां संघः, आम्रवणं ब्राह्मणसंघ इति। अद्य किमेषो सूक्ष्मरूपम्।

तन्मात्रं भूतकारणं तस्यैकोऽवयवः परमाणुः सामान्यविशेषात्मा, सिद्धावयवमेवानुगतः समुदाय इत्येवं सर्वन्तन्मात्राण्येतत्तृतीयम्।

अथ भूतानां चतुर्थं रूपं ख्यातिक्रियास्थितिशीलाः गुणाः कर्मस्व-भावानुपातिनोऽन्वयशब्देनोक्ताः।

अथैषां पञ्चमं रूपमनवत्वम्। भोगापवर्गार्थता गुणेष्वेवान्वयिनी, गुणास्तन्मात्रमितिभौतिकेष्विति सर्वमर्थवत्। तेष्विदानीं भूतेषु पञ्चसु पञ्चरूपेषु तस्य रूपस्य स्वरूपदर्शकं जयश्च प्रादुर्भवति। तत्र पञ्चभूत-स्वरूपाणि जित्वा भूतजयी भवति। तज्जयाद् वत्सारिण्य इव गवोऽस्य संकल्पानुविधायिन्यो भूतप्रकृतयो भवन्ति इति।

एवञ्च संयमेन भूतजये जाते भूतानां परिणामविशेषाः शरीराणि तदात्व एव निर्मातुं वर्धयितुञ्च शक्यन्ते इति कोऽत्र स्मयः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

किञ्च "सत्वपुरुषान्याख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधाष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वञ्च" इति (योगदर्शन विभूतिपाद सू० ४९) तथा च सर्वभूताधिष्ठातृत्वे जाते भूतानां तात्कालिकी परिणतिर्यथेच्छं कर्तुं शक्तेति नैतदाश्चर्यकरम् । किञ्च कालेऽपि योगिनां सामर्थ्यं प्रसरति, तेनानागतस्य वर्तमानत्वम्, अतीतस्य वाऽनागतत्वं कर्तुं प्रभवन्ति योगिनः । तदेतदपि उक्तं योगदर्शने चतुर्थपादे द्वादशे सूत्रे—

"अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ।" इति

तथा चानागतस्य जायमानामो कालस्य वर्तमानत्वम्, अनागतस्य यौवनकालस्य वा वर्तमानत्वं योगशक्त्या महर्षिणा पराशरेण संपादितञ्चेत् कोऽत्र विरोधः । तस्मादेवं विधान्यलौकिकानि चरित्राणि देवतानां ऋषीणाञ्च सर्वदैव संभवन्तीति । तथैव च बहुत्र पुराणेषु व्यख्यायन्ते ।

योगजशक्तिमज्ञात्वाऽस्वीकृत्य वा न बोद्धुं शक्यं पुराणमिति सर्वथा स्पष्टमेतत् । भवतु नाम । एवं विधो व्यासस्य प्रादुर्भावः प्रायेण सर्वत्र वर्ण्यते । इतोधिकं टी० आर० कृष्णमाचार्य टी० आर० व्यासार्याभ्यां सम्पादिते निर्णयसागरमुद्रिते महाभारते आदिपर्वणि चतुष्षष्टितमेऽध्याये यद् विवाहादिसंस्कारादि च वर्णितं तत्सर्वं बहुपुराणविरोधात् बहुषु महाभारतपुस्तकेष्वनुपलम्भाच्च केनचिद् धर्ममर्यादानभिज्ञेन पुराणपरिशीलनविरहितेन च स्वकल्पनाप्रसूतं प्रक्षिप्तमेवेति नादर्तव्यम् ।

इदानीन्तनः केचिद् ऐतिहासिकास्तु योगजन्येऽलौकिकत्वेऽश्रद्दधानाः गुप्तरूपेण सत्यवत्या व्यासोत्पादनं गुप्तरूपेण च पालनं कल्पयेयुरित्यास्तां तावत् ।

द्वीपैकदेशे प्रादुर्भावात्तु द्वैपायनेति नाम विशेषणमस्य । कृष्णः इत्येव तु मुख्यन्नाम । परन्तदात्व एव पूर्णावतारो भगवान् वासुदेवः कृष्णः द्वैपायनः कृष्णः, पाण्डवश्चार्जुनः कृष्ण इति त्रयोऽतिप्रसिद्धाः कृष्णा बभूवुरिति व्यवहार सांकर्यं निवर्तयितुं तत्तद् विशेषणं नामसु पौराणिकाः संयोजयन्तीति कृष्णद्वैपायन एवायमुच्यते ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अस्याध्ययनादिव्यवस्था विस्तरेण क्वापि नोपनिबद्धा, परं शतपथ-ब्राह्मणस्य चतुर्दशे काण्डे वंश ब्राह्मणे "पाराशर्यो जातुकर्ण्यात्" इति जातूकर्ण्यशिष्यत्वमस्य श्रूयते।

पुराणेष्वपि च वायुब्रह्माण्डपुराणादौ तस्य गुरोर्नाम जातूकर्ण्य इति पठ्यते। जन्मसिद्धविदुषाप्यनेन सम्प्रदायरक्षणार्थं जातूकर्ण्य-सविधेऽध्ययनं कृतं भवेदिति संभाव्यते। यद्यपि जातूकर्ण्य इति नाम सप्तविंशतितमे द्वापरे व्यासस्य पूर्वमुक्तम्, परं स भिन्नः कश्चिज्जातूकर्ण्यो भवेत्।

अयन्तु कृष्णद्वैपायनगुरुरष्टाविंशतितमे कलियुगेऽपि जातूकर्ण्यनामा कश्चिदपरो भवेदिति नात्र कश्चिद् विरोधः। इयमेव पराशरभरद्वाजा-दिनामस्वपि गतिः। प्रतियुगं हि ऋषीणां नामानि पुनः पुनरावर्तन्त एवेति पुराणकथाभिरेवैतद् सिद्ध्यति।

अस्य कृष्णद्वैपायनस्याश्रमः सरस्वत्यास्तटे वर्ण्यते। सरस्वती नदी च कुरुक्षेत्रे पश्चिमायाः दिशो आगतायत्वे विलोक्यते। तेन कुरुक्षेत्रात् किञ्चिद् पश्चिमस्यां व्यासाश्रमो निर्णेतुं शक्यते। तत एव हस्तिनापुरे बहुधाऽस्य यातायातम् महाभारतयुद्धेऽपि च यातायातं महाभारत पुराणादिषु बहुधा वर्ण्यमानं समन्वेति।

इयमेवास्य जननी सत्यवती पश्चान्महाराजेन शन्तनुना विवाहिता विचित्रवीर्यमुदपादयत्।

तस्य च क्षेत्रे व्यासप्रभावादेव धृतराष्ट्रपाण्डुविदुराः समाजायन्तेति स्पष्टं महाभारतविदाम्। तेन महाभारतयुद्धकालात् किञ्चित् पूर्वमेव भागवतो व्यासस्य वेदविभजनादिकार्यकालः, इति सिद्ध्यति।

महाभारतयुद्धकालः

महाभारत युद्धन्तु कलियुगारम्भ एव जातम् इति महाभारते पुराणेषु च पठ्यते।

CC-0 Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
स्यमन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डव सेनयोः ।।

(महाभारत आदिपर्व दि० अ० १३ श्लोक)

एतत् कलियुगं नाम अचिराद्यत् प्रवर्तते ।

(वनपर्व १४८ अ०)

पूर्णावतारेण श्रीकृष्णेन भगवता यदा भूमण्डलं परित्यक्तं तदैव कलिरत्र प्रादुर्भूत इति पुराणेषु बहुधा वर्णितम् । युधिष्ठिरानन्तरं राज्यारूढेन महाराजेन परीक्षिता कलिनिग्रहः कृत इत्यपि श्रीभागवते वर्णितम् ।

कलियुगारम्भकालात् किञ्चिदनन्तरमेव महाभारतपुराणपुराणसंहितानिर्माणादिकालः, इति प्रसिध्यति। कलियुगस्य ५०५६ वर्षाणि व्यातीतान्यद्येति ज्योतिर्विदो गणयन्ति ।

प्रसिद्धेनैतिहासिकेन राजतरङ्गिणीकारेण तु कलियुगारभम्भादनन्तरं त्रिपञ्चाशदुत्तरेषु शतेषु वर्षाणां गतेषु कुरुपाण्डवकाल उक्तः ।

शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन्कुरुपाण्डवाः ।। इति ।।

तस्यास्य राजतरङ्गिणीमतस्य क आधार इति विचारे वृहत्संहितायां वराहमिंहिराचार्योक्तिरेवाधारतया प्रतिभासते ।

उक्तं हि वराहमिहिरेण बृहत्संहितायाम्—

आसन् मघासु मुनयः, शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ।।

अस्यार्थ एवमेव सर्वैः क्रियते यच्छकाब्दारम्भकाले युधिष्ठिरराजस्य २५२६ वर्षाणि व्यतीतानीति । शकाब्दश्चाद्यत्वे सप्त - सप्त-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

त्युत्तराष्टादशशतमितः । तेन १८७७ युक्तं २५२६-४४०३ वर्षाणि कलियुगारम्भस्यातीतानीत्यायाति ।

वराहमिहिराचार्येण किमाधारीकृत्यैतदुक्तं इति सम्यङ् न विज्ञायते। सप्तर्षयो युधिष्ठरराज्यकाले मघास्वासन् । शतं शतञ्च वर्षाणि ते एकैकस्मिन् नक्षत्रे तिष्ठन्तीति या गणना तेन कृता साऽपि न सर्वांशे संवदतीति आधुनिकाः-ज्योतिर्विदो मन्यन्ते । गर्गाचार्यमतमाधारीकृत्य वराहमिहिराचार्येणोक्तमित्यपि केचिन्मन्यन्ते । परं सर्वमिदं सन्देहास्पदमेव ।

महाभारतमीमांसालेखकेन चिन्तामणिविनायकवैद्य महाशयेन तु बहुतरं विचार्यं वराहमिहिराचार्यमतं भ्रान्तमेवेति व्यवस्थापितम्। ५०५६ वर्षेभ्यः पूर्वमेव च महाभारतयुद्धकालस्तेन स्थिरीकृतः। अत्रांशे महाभारतमीमांसकेन मौर्यचन्द्रगुप्तराज्ये ग्रीकराजदूतपदे स्थितस्य मेगस्थनीजमहाशयस्य तालिकाऽपि प्रमाणीकृता। भवतु नाम। अद्यावधि विषयोऽयं सर्वात्मना निश्चेतुं न शक्यते यद् वराहमिहिराचार्यनिर्दिष्टः समय एव साधीयान्, कलियुगारम्भ समय एव वा सम्यगिति । यतो हि षट्शतेषु वर्षेषु यातेष्वपि महतो युगस्यारम्भकाल एव वर्णयितुं शक्यते । कलिद्वापरयोस्संधिरिति च नाल्पः अपि तु बहुकालव्यापी, भगवतो वासुदेवस्य भूमित्यागादनन्तरं कलियुगप्रवृत्तिरित्यपि महत्वप्रकटीकरणाय वक्तुं शक्यते यद् यावत् स भूमण्डलमलञ्चकार तावत् कलियुगः स्वप्रसारं कर्तुं नापारयदिति। तेन प्रत्युत् कलियुगारम्भस्तु पूर्वमेव जात इत्येव व्यज्येत। परीक्षितकृतः कलिनिग्रहश्चापि कलियुगप्रवृत्तेरनन्तरमेव संभाव्यते । तस्मात् सार्धेषु षट्सु शतेषु वर्षाणां कलियुगारम्भाद् गतेषुयुधिष्ठरराज्य प्रवृत्तिरित्यापि नातीव विरुद्धम्। विशेषेण सर्वमिदमस्माभिः तृतीयेतिहासस्कन्धे विचारयिष्यते ।

कलियुगारम्भकालस्तु महाभारतपुराणादिषु प्रतिपदोक्त एव। एवमन्यतरसमयाभ्युपगमेऽपि वर्षाणां चतुःशताधिकात् सहस्र-चतुष्टयात् पूर्वं, पुराणसंहितादिनिर्माण काल आयाति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

व्यासस्य कार्याणि

भगवता कृष्णद्वैपायनेन हि वेदश्चतुर्धा व्यस्तः। पूर्वमेकैव वेद-संहिताऽऽसीदिति पुराणानि वर्णयन्ति। गद्यपद्यगानभेदेन त्रिविधा रचना तत्रैव सन्निविष्टाऽऽसीत्। पद्यात्मिका ऋचः, गद्यात्मकं यजुः, गानरूपञ्च सामेति। विधेयानां मन्त्राणां विधिरूपाणां ब्राह्मणानाञ्चापि सहैवैकत्र सन्निवेश आसीदित्यनुमीयते। भगवता व्यासेन तु आर्त्विज्यानुसारं चतुर्धा वेदविभागः कृतः। चत्वारो हि होत्रध्वर्यूद्गातृब्रह्मनामका ऋत्विजः प्रतियज्ञमावश्यका भवन्ति।

विशिष्टेषु सोमयागेषु तु त्रयस्त्रयः प्रत्येकमेषां सहकारिण इति षोडषर्त्विजो भवन्ति। परन्तु मुख्याश्चत्वार एव गण्यन्ते। तत्र होतृकर्म संपादनाय पर्याप्तः ऋग्वेदः, स होतृ वेदनाम्नाऽप्युच्यते, ऋग्बाहुल्याच्च ऋग्वेदः। होतृ पाठ्याः याज्यानुवाक्यादिरूपा देवानां स्तुतयोऽत्र समाम्नाताः।

ऋग्वेदमात्रमधीत्य यज्ञेषु होतृकर्म सम्पादयितुं शक्यते। एवमध्वर्युवेदो यजुर्वेदः, यजुर्बाहुल्यात्। उद्गातृवेदश्च सामवेदः। अथ सर्वकार्य-निरीक्षकेण ब्रह्मणा त्रयमपि एतदध्येयं भवति। तत्तत्कार्यापरिज्ञाने निरीक्षणासंभवात्।

एतदतिरिक्तमपि सत्यवसरे शान्तिकपौष्टिकप्रायश्चित्तादि सम्पादनं ब्रह्मणः कर्तव्यं भवति। तदर्थमथर्ववेदाध्ययनमपि तस्यावश्यकम्। अथर्ववेदः केवलं ब्रह्मणैवाध्येय इति स ब्रह्मवेद उच्यते। एवं ब्रह्मचतुर्वेदाध्यायी चतुर्वेद एव भवितुमर्हति।

अन्ये तु ऋत्विज एकैकवेदाध्ययनेनैव स्वकार्यकुशलाः सम्पद्यन्ते। एवं रचनाभेदेन त्रयो वेदाः, आर्त्विज्यभेदेन तु चत्वार इत्युभयमप्युपपद्यते।

यज्ञे पाठ्या मन्त्राः यत्र संगृहीतास्ता मंत्रसंहिताः। विध्यर्थ-वादादिकं यत्र श्रूयते स तु ब्राह्मणभागः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अयं मन्त्र ब्राह्मणविभागोऽपि भगवता व्यासेन कृतः। पश्चात् तच्छिष्यपरम्परायां पाठक्रमादिभेदेन शाखाभेदो बहुलं प्रवृत्तः। ब्राह्मणान्यपि च शाखाभेदेन भेदं गतानि।

गाने स्वरतालादीनां भेदबाहुल्यात् सामवेदस्य सहस्रशाखा जाताः। एकोत्तरं शतमध्वर्युवेदशाखाः, एकविंशतिधा ऋग्वेदः, नवधा चाथर्ववेद इति संभूय एकत्रिंशदुत्तरैकादश शतमिता वेदशाखा गण्यन्ते।

अध्वर्युणा कर्मकलापोऽधिकतरमध्येयो भवति विध्यादिकमपि तेन कण्ठेकरणीयमेवापतति। तत एव यजुर्वेदे पुनरपि मन्त्रब्राह्मणयोः संमिश्रणं जातम्।

अनन्तरन्तु व्यासशिष्यस्य वैशम्पायनस्य स्वशिष्येण याज्ञवल्क्येन सह कदाचिद् विवाद उदभूत्। तेन च रुष्टो वैशम्पायनः "परित्यजास्मदधीतां विद्याम्" इति याज्ञवल्क्यमादिदेश। याज्ञवल्क्येनाऽपि तदेतत् श्रुत्वा गुरोरधीताया विद्यायाः वमनं कृतम्। सा च वमिता विद्या वैशम्पायनादेशेनान्यैः शिष्यैस्तित्तिरीभूय खादिता, तत एव सा तैत्तिरीयशाखेति पुराणेषु कथेयं पठ्यते।

तत इदं विज्ञायते यत् संस्काररूपेणान्तःकरणे स्थितानां विद्यानां वमनादिना निःसारणेऽपि सामर्थ्यमासीद् ऋषीणाम्। अध्ययनजनितेषु अनभ्यासदशायां कालेन मालिन्यं स्फुटमनुभूयते। अर्धाङ्गरोगाद्याक्रमणे सर्वविधविस्मृत्या संस्काराणां विलोपोऽप्यनुभूयते। ततस्तेषां निःसारणं परैर्ग्रहणञ्चापि नातीवाश्चर्यकरम्।

अनन्तरञ्च भगवता याज्ञवल्क्येन सूर्यमुपत्तस्याभिनवा यजूःसंहिता लब्धा। तद् ब्राह्मणञ्चापि शतपथाख्यं संहिताया भिन्नमेव लब्धम। इमानि शुक्लानि यजूंषीत्याख्यायन्ते। प्राक्तनानि तु कृष्णानि।

तदित्थं यजुःसंहिता सर्वथा द्वैविध्यं गता। अत्रापि मंत्राणां बाहुल्येनैक्यं बहुत्र तु पाठभेदोऽप्यस्ति। ब्राह्मणभागस्तु विभिन्नाशाखासम्बन्धी विभिन्न एव दृश्यत इत्यादि वैदिक वाङ्मयविस्तरः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणवेदोऽपि य एकरूपः प्राग् व्याख्यातः तस्याऽपि संक्षेपः सर्वजनबोध्यसरलभाषयोपनिबद्धः, अष्टादशधा विभागश्च भगवता व्यासेन कृतः । इदन्तु प्रतीयते योऽष्टादशधा विभागः प्राक् पुराणक्रम प्रकरणे सम्यग्व्याख्यातः, स एकस्यामेव वैयासिक्यां पुराणसंहितायामासीत् ।

एकस्यैव पुराण संहिताग्रन्थस्याष्टादशेमे प्रकरणविभागाः, अध्यायविभागा वा बभूवुः । अत एव "पुराणसंहिताञ्चक्रे" इत्यादिवाक्येषु एकवचनमेव व्यासकृतसंहितार्थे दृश्यते । अस्यां संहितायां प्राक् पुराणविषयत्वेनोक्ताः सृष्ट्यादिविषयाः संगृहीताः । आख्यानादिविषयचतुष्टयं संगृह्य तस्या उपबृंहणाद्यपि भगवता व्यासेनैवोपक्रान्तं स्यात् ।

अविज्ञातविषयदर्शने कौतूहलाज्जिज्ञासा मानवस्वभावेन सर्वेषां हृद्युदेति कुत इमे सूर्यचन्द्रादय उत्पन्नाः, चन्द्रः कृष्णपक्षे कुतो ह्रसति, शुक्लपक्षे च कुतो वर्धते ? किमिदं नभसि दृश्यमानमद्भुतं तारामण्डलम् ? सूर्यचन्द्रयोरुपरागः कुतो भवति केन वा क्रियते ? कोऽस्माकं सर्वेषां स्थावरजङ्गमानां जनयिता, को वा पालकः यश्चेश्वर इत्याख्यायते सः किं रूपः ? कुत्र वा निवसति कथंविधस्तस्य परिवारः, कीदृशं स्थानम् ? इयती गुरुभूता पृथिवी कस्मिन्नाधारे निहिताऽस्ति येन नीचैर्न पतति ? इत्यादि । इमाश्च जिज्ञासा यावन्न समाधीयेरन् तावद् बहूनां चेतांसि शल्यानीव व्यथयन्ति । न च वैज्ञानिक्या प्रक्रियया विषयाणामेषां समाधानमधिकारविरहितेभ्यो बोधयितुं सुकरं, तेषां बोधयोग्यप्रज्ञाभावाद् - इति तेषां जिज्ञासामुपशमयितुं रूपकक्रमेण विज्ञानानि परिवर्तितानि पुराणेषु ।

यथा कश्यपाद् ऋषेः सूर्यस्य जन्म जातम् । अत्रेर्नयनसमुत्थोऽयं चन्द्रः, समुद्रमन्थनाद् वा समुद्रान्निष्क्रान्तोऽयं चन्द्रः, दक्षस्य दुहितर इमा अश्विन्यादिनक्षत्ररूपास्ताराः, ताः सप्तविंशतिः चन्द्रेण सह विवाहिताः चन्द्रेण एकस्यां रोहिण्यां विशेषेणानुरागः कृतः । ततोऽन्याभिस्तारा-

CC-0 Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भिर्विज्ञप्तः पिता दक्षश्चन्द्रं शशाप, तत एव चद्रस्य वृद्धिह्रासौ, राहुर्नामाऽसुरः चन्द्रं ग्रसति, केतुश्च सूर्यम्। एकोऽसुरो देवमध्येऽमृतं पातुं प्रविष्टः, स च सूर्येण चन्द्रमसा च भगवन्तं विष्णुं प्रतिबोधितः, भगवता तच्छिरः छिन्नं किन्तु पीतामृतत्वात् स न मृतः, स एव वैरनिर्यातनार्थं सूर्या चन्द्रमसौ पीड़यति, सर्वेषां जनयिता चतुर्मुखो ब्रह्मा, पालकश्च क्षीरसमुद्रशायी, लक्ष्म्या सहितो भगवान् विष्णुः, स च श्यामवर्णः, चतुर्भुजः शेषनागपर्यङ्के शेते। शङ्खचक्रगदापद्मानि धारयति। संहर्ता च रुद्रः सर्पविभूषणः गङ्गाञ्चन्द्रञ्च शिरसा वहति। त्रिशूलं दधाति। हिमालयशिखरे कैलाशे निवसति, पृथिवी चेयं शेषनामकस्य महतः सर्पस्य शिरसि फणायामेकस्यां धृतेत्यादि।

एतावदेव बुद्ध्वा अशिक्षितानामर्धशिक्षितानां वा कौतूहलमुपशाम्यति। तावतैव ते संतुष्टा भवन्ति। शिक्षितास्तु विचारकाः येऽग्रे विचारयितुं समर्थास्तान् प्रति कश्यपादिशब्दानां वैज्ञानिका अर्थाः संकेतमात्रेण बोध्यन्ते। येन ज्ञातसंकेतानां तेषामपि सौकर्येण गंभीरविज्ञान लाभः संजायेत। पश्यतीह आचार्यः यत् कल्पना प्रसारेणैवोपशमनीयाः साधारणजनानां जिज्ञासाः। शक्ष्यामि चैताः कल्पनाः संकेतबोधनेनविज्ञान परतया नेतुमिति।

आसु कल्पनास्वपि च तथाविधं स्वारस्यं, ते ते व्यवहारोपदेशाश्च निहिता यथाऽल्पप्रज्ञानां संतोषो भवेत्। उपदेशाश्च व्यावहारिकास्तैर्लब्धाः स्युः। यथोत्पादको ब्रह्मा चतुर्भुज इति। चतसृष्वपि दिक्षु पदार्थान् सृजति, काऽपि दिक् सृष्टि विरहिता न तिष्ठति। पालकश्च भगवान् विष्णुः क्षीरसमुद्रे शेते इति जन्मग्रहणकाल एव सर्वप्राणिनां बालकेभ्यो दुग्धं प्रयच्छति जातमात्र एव शिशौ सर्वप्राणिनां मातृस्तनेभ्यः प्रस्रवतीति स्फुटं सर्वैर्दृश्यते एव। यदि हि पालयितुर्भगवतः समीपे क्षीरस्य समुद्रो न स्यात् तर्हि एतावद्भ्योऽनन्तप्राणिभ्यः सः कथं दुग्धं दातुं शक्नुयात् लक्ष्मीश्च तद्भार्येति लालन पालनार्थं धनादिकमपि स सर्वेभ्यः प्रयच्छति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

संहारकस्य च समीपे सर्पादिनां स्थितिः समुचितैव, संहारे तेषामुपयोगात् । अतिशयितहिमप्रदेशे चाऽपि तस्य स्थितिर्युक्तैव हिमस्य संहर्तृत्वात् । ब्रह्मणश्च भगवतो विष्णोर्नाभिकमलादुत्पत्तिराख्याता। अद्यापि प्राणिनो नाभिकमलादेवोत्पद्यमाना दृश्यन्ते । मातृणां नाभिकमल-प्रदेशे एव गर्भाशयस्य स्थितत्वादित्यादिरीत्याऽवान्तरकल्पनाभिरपि-मध्यमाधिकारिणां संतोशो जायते ।

किञ्चेश्वरस्येवंविधाभिमूर्तिकल्पनाभिरुपासनाऽपि सौकर्येण सिध्यति । तदेतदुक्तम्—

अनन्तस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्याशरीरिणः ।
उपासकानां सिध्यर्थं ब्रह्मणो मूर्तिकल्पना ।।

नीरूपे निराकारे हि वस्तुनि प्रथमाधिकारिणां मध्यमाधिका-रिणाञ्च मनो न समासजति । साकारवस्तुपरिग्रहस्यैव मनः स्वभाव-सिद्धत्वात् । तस्मादुपासनासिध्यर्थमीश्वरस्य मूर्तिविवरणमावश्यकं भवति ।

मनुष्यविधेह्याकारे तद्गुणाकर्षणे चेतो निवेशयितुं शक्यते । प्रेम च तत्र स्वत एवोद्भवति । तस्मादुपासनालाभार्थमपि मूर्तीनामुपबृंहणं सम्पन्नमित्यपरो लाभः ।

उत्तमाधिकारप्राप्तौ तु आसां मूर्तीनां संकेतमात्रेण वैज्ञानिकं तात्पर्यं बोध्यत इति प्राक् पुराणोपयोगप्रकरणे विष्णुमूर्तिरहस्यबोधेनैन किञ्चि-न्निर्दर्शितं दर्शयिष्यामश्चाग्रेऽपि बहुतरम् । एवं प्रकल्पिताभिर्वैज्ञानिकीभिः कथामिराभिर्व्यावहारिका उपदेशा अपि अनायासेन प्राप्यन्ते, यथा चन्द्रमसः क्षयहेतुर्य उक्तः, तेनोपदेशो लभ्यते यद् भार्यादिपरिजनेषु समानैव वृत्तिरवलम्बनीया । तत्र क्वचन् पक्षपातादिकरणे ईश्वरः कुप्यति । चन्द्रस-दृशास्यापि यदा तादृशवैषम्यस्य दण्डः प्राप्यते, तदा कैवास्मादृशां कथेति । एवं राहुकथयाऽपि पैशुन्यं सर्वथा न कर्तव्यम् । तेन पैशुन्यमवश्यं विघातकं भवति, इत्याद्युपदेशो लभ्यते ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एवं विधानामाख्यायिकानां वैज्ञानिकाः संकेताश्च यथाऽवसरमग्रे सृष्ट्यादिप्रकरणेषु विवरणीया एव ।

एवंविधानां कल्पानां स्पष्टं निदर्शनं पुराणेषु निगूढं स्थापितम् यथा श्रीमद्भागवते पुरञ्जनाख्यानं पूर्वं सपरिकरं तथा विवृतम् यथा कस्यचन मनुष्यस्य चरितरूपेण तदवभासेत् ।

अनन्तरञ्च तस्य सर्वस्यापि अध्यात्मिकं तत्वं प्रकटीकृतमिति । एवमेव देवानाम्, ऋषीणां पितृणाम्वा स्वरूपसंकेस्तत्र तत्र कृतः । यज्ज्ञात्वा सर्वेषां तत्तच्चरितानां रहस्यं बोद्धुं शक्यते ।

वैज्ञानिकोपाख्यानानि

एवं विधकल्पनोपरचितचरितोपबृंहणं मंत्रब्राह्मणात्मके वेदेऽपि समुपलभ्यते ।

तथा हि इन्द्रोदधीचोऽस्थिभिर्वृत्राण्यप्रतिस्कुतः ।
जघान नवती र्नव । [मड० १ सू० ८४ ऋ० १३]

इत्यादिमन्त्रे इन्द्रकृतौ वृत्रवध आख्यायिकारूपेण समाम्नातः । तच्चेदं वृत्रवधादिकं वैज्ञानिकमिति निरुक्तकृता भगवता यास्केन "तत्र को वृत्र ? त्वाष्टो सुर इति ऐतिहासिकाः, मेघ इति नैरुक्ता" इत्यादि वदता स्पष्टीकृतम् । अन्यत्राऽपि वहुषु मंत्रेषु वृत्रवधादिकथा नैकधा विक्रियते ।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानामर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रतिभद्राय भद्रम् ।

इत्यादिषु मन्त्रेषु सूर्यकर्तृकमुषसोऽनुगमनं मनुष्योपमयाऽऽम्नातम् ।

"मातुर्दधिषुमब्रुवन् श्वसुर्जारः शृणोतु नः"

इत्यादिमंत्रेषु सर्वथाऽनुचितापि स्वसृजारत्वादिकल्पना समाम्नाता । सा च सूर्यादिपरतया ब्राह्मणेनैव स्पष्टीकृता ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

उभा जिग्यथुर्नंपराजयेथे न परा जिग्ये कतरश्च नैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णुर्यदपस्पृधेथां, त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम् ।

। ६ मं० ६९ सू० ८ ऋ० ।

इत्यादिषु मन्त्रेषु च विष्णोरिन्द्रस्य चासुरैर्युद्धं परस्परमपि च स्पर्धा रूपं युद्धमारब्धम् । तदिदमग्रे व्याख्यातव्यं स्यात् । एवं शतशो मन्त्रेषु वैज्ञानिका अर्था आख्यायिकारूपेण समाम्नाता दृश्यन्ते । ब्राह्मणेष्वपि च प्रतिकर्मं तत् समर्थनार्थं प्रायेण लघ्वी काचिदाख्यायिका समाम्नायते । काश्चित्तु बृहत्तरा अपि दृश्येन्ते ।[1]

---

१. यथा "सोमो वै राजामुष्मिंल्लोक असीत्तं देवाश्च ऋषयश्चा म्यभ्यायन् कथमयमस्मात् सोमो राजा गच्छेदिति ते ब्रुवंश्छन्दासिमयं न इमं सोमं राजानमाहृदिति तथेति ते सुपर्णा भूत्वोदपतंस्ते यत् सुपर्णा भूत्वोदपतं स्तदेतत् सौपर्णमित्याख्यान विद आचक्षते ।

छन्दासि वै तत् सोमं राजानमन्छाचरंस्तानि ह र्तार्हि चतुरक्षराणि चतुरक्षराण्येवच्छंन्दांसि आसन्सा जगती चतुरक्षरा प्रथमोदपतत्सा पतित्वा धर्मध्वनो गत्वाऽश्राम्यत्, सा परास्यत्रीण्यक्षराणि एकाक्षरा भूत्वा दीक्षाञ्च तपश्चरन्ती पुनरभ्यवापतत्तस्मात्तस्य वित्ता दीक्षा वित्तं तपो यस्य पशवः सन्ति जागताहि पशवो जगतीह तानाहरत् ।

अथ त्रिष्टुबुदपतत् सा पतित्वा भूयो धर्मादध्वनो गत्वाश्राम्यत्सा परास्यैकमक्षरं त्र्यक्षरा भूत्वा दक्षिणाऽहरन्ती पुनरभ्य वा पतत्तस्मान्मध्यं-दिनै दक्षिणाऽनीहन्ते त्रिष्टुभो लोके त्रिष्टुद्धिमता आहरत् ।

ते देवा अब्रुवन् गायत्रीं त्वं न इमं सोमं राजानमाहरेति सा तथेत्यब्रवीत्तां वै मा सर्वेण स्वस्त्ययनेनानुमन्त्रयध्वमिति तथेति सोदपतत्तां देवाः सर्वेण स्वत्ययनेनान्वमन्त्रयन्त प्रेति चेति तथोऽस्य प्रियः स्यात्तमेते-नानुमन्त्रयेत प्रेति चेति चेति स्वस्त्येव गच्छति स्वस्ति पुनरागच्छति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एवं विधानामाख्यायिकानां वैज्ञानिकाः संकेताश्च यथाऽवसरमग्रे सृष्ट्यादिप्रकरणेषु विवरणीया एव।

एवंविधानां कल्पानां स्पष्टं निदर्शनं पुराणेषु निगूढं स्थापितम् यथा श्रीमद्भागवते पुरञ्जनाख्यानं पूर्वं सपरिकरं तथा विवृतम् यथा कस्यचन मनुष्यस्य चरितरूपेण तदवभासेत्।

अनन्तरञ्च तस्य सर्वस्यापि अध्यात्मिकं तत्वं प्रकटीकृतमिति। एवमेव देवानाम्, ऋषीणां पितृणाम्वा स्वरूपसंकेस्तत्र तत्र कृतः। यज्ज्ञात्वा सर्वेषां तत्तच्चरितानां रहस्यं बोद्धुं शक्यते।

वैज्ञानिकोपाख्यानानि

एवं विधकल्पनोपरचितचरितोपबृंहणं मंत्रब्राह्मणात्मके वेदेऽपि समुपलभ्यते।

तथा हि इन्द्रोदधीचोऽस्थिभिर्वृत्राण्यप्रतिस्कुतः।
जधान नवती नंव। [मड० १ सू० ८४ ऋ० १३]

इत्यादिमन्त्रे इन्द्रकृतौ वृत्रवध आख्यायिकारूपेण समाम्नातः। तच्चेदं वृत्रवधादिकं वैज्ञानिकमिति निरुक्तकृता भगवता यास्केन "तत्र को वृत्र ? त्वाष्टो सुर इति ऐतिहासिकाः, मेघ इति नैरुक्ता" इत्यादि वदता स्पष्टीकृतम्। अन्यत्राऽपि वहुषु मंत्रेषु वृत्रवधादिकथा नैकधा विक्रियते।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानामर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रतिभद्राय भद्रम्।

इत्यादिषु मन्त्रेषु सूर्यकर्तृकमुषसोऽनुगमनं मनुष्योपमयाऽऽम्नातम्।

"मातुर्दधिभबुदन् श्वसुर्जारः शृणोतु नः"

इत्यादिमंत्रेषु सर्वथाऽनुचितापि स्वसृजारत्वादिकल्पना समाम्नाता। सा च सूर्यादिपरतया ब्राह्मणेष्वेव स्पष्टीकृता।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

उभा जिग्यथुर्नपराजयेथे न परा जिग्ये कतरश्च नैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णुर्यदपस्पृधेथां, त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम् ।

। ६ मं० ६९ सू० ८ ऋ० ।

इत्यादिषु मन्त्रेषु च विष्णोरिन्द्रस्य चासुरैर्युद्धं परस्परमपि च स्पर्धा रूपं युद्धमारब्धम् । तदिदमग्रे व्याख्यातव्यं स्यात् । एवं शतशो मन्त्रेषु वैज्ञानिका अर्था आख्यायिकारूपेण समाम्नाता दृश्यन्ते । ब्राह्मणेष्वपि च प्रतिकर्म तत् समर्थनार्थं प्रायेण लघ्वी काचिदाख्यायिका समाम्नायते । काश्चित्तु वृहत्तरा अपि दृश्येन्ते ।[1]

---

१. यथा "सोमो वै राजामुष्मिंल्लोक असीत्तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यभ्यायन् कथमयमस्मात् सोमो राजा गच्छेदिति ते ब्रुवंश्छन्दासिमयं न इमं सोमं राजानमाहृदिति तथेति ते सुपर्णा भूत्वोदपतंस्ते यत् सुपर्णा भूत्वोदपतं स्तदेतत् सौपर्णमित्याख्यान विद आचक्षते ।

छन्दासि वै तत् सोमं राजानमन्छाचरंस्तानि ह तर्हि चतुरक्षराणि चतुरक्षराण्येवच्छंन्दांसि आसन्सा जगती चतुरक्षरा प्रथमोदपतत्सा पतित्वा धर्मध्वनो गत्वाऽश्राम्यत्, सा परास्यत्रीण्यक्षराणि एकाक्षरा भूत्वा दीक्षाञ्च तपश्चरन्ती पुनरभ्यवापतत्तस्मात्तस्य वित्ता दीक्षा वित्तं तपो यस्य पशवः सन्ति जागताहि पशवो जगतीह तानाहरत् ।

अथ त्रिष्टुबुदपतत् सा पतित्वा भूयो धर्मादध्वनो गत्वाश्राम्यत्सा परास्यैकमक्षरं त्र्यक्षरा भूत्वा दक्षिणाऽहरन्ती पुनरभ्य वा पतत्तस्मान्मध्यंदिनै दक्षिणाऽनीहन्ते त्रिष्टुभो लोके त्रिष्टुद्धिमता आहरत् ।

ते देवा अब्रुवन् गायत्रीं त्वं न इमं सोमं राजानमाहरेति सा तथेत्यब्रवीत्तां वै मा सर्वेण स्वस्त्ययनेनानुमन्त्रयध्वमिति तथेति सोदपतत्तां देवाः सर्वेण स्वत्ययनेनान्वमन्त्रयन्त प्रेति चेति तथोऽस्य प्रियः स्यात्तमेतेनानुमन्त्रयेत प्रेति चेति चेति स्वस्त्येव गच्छति स्वस्ति पुनरागच्छति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सा पतित्वा सोमपालान्मीषयित्वा पद्भ्यां च मुखेन सोमं राजानं समगृभ्णाद्याति चेतरे छन्दासी अक्षराण्य जहितां तानि चोपसमगृभ्णात् ।

तस्या अनु विसृज्य सोमपालः सव्यस्य पदौ नखमच्छिदत्तच्छल्यको भवत्तस्मात् सा हविरिवाथ यः शल्यो यदनीकमासीत् । स सर्पो निदर्शनम भवत् सहसः स्वजो यानि पर्णानि ते मन्थावल यानि स्नावानि ते मण्डूपदा यत्तेजनं सोऽन्याहिः सो सातथेषुरभवत् ।

सा यद्दक्षिणेन यदा समगृभ्णात्तत्प्रातः सवनमभवद् गायत्री स्वमायतनमकुरुत तस्मात्तत् समृद्धतमं मन्यन्ते सर्वेषां स वनानामग्रि यो मुख्यो भवसि श्रेष्ठतामश्नुते य एवं वेदाथ यत्सव्येन पदा समगृभ्णात्तन्माध्यं दिनं सवनमभवत्ताद् विस्रंसतद् विस्रस्तं नान्वाप्नोत् पूर्वं, सवनं ते देवाः प्राजिज्ञासन्त तस्मिंस्त्रिष्टुऽभं छन्दसामदधुरिन्द्रिं देवतानां तेन तद् सभावद् वीर्यमभवत् पूर्वेण सवनेनोभाभ्यां सवनाभ्यां समावद् वीर्याभ्यां समावज्जामीभ्यां राघ्नोति य एवं वेदाथ यन्मुखेन समगृभ्णात्तत् तृतीय सवनमभवत् ।

तस्य पतन्ती रसमद्ययत् तदधीत् रसं नान्वाप्नोत् पूर्वे सवने ते देवाः प्राजिज्ञासन्त तत् पशुष्वपश्यस्तद्यदा शिरम् वनयन्त्याज्येन पशुना चरन्ति तेन तत् सभावत् वीर्यमभवत् पूर्वाभ्यां सवनाभ्याम् ।

सर्वैः सवनैः समावद्वीर्यैः समावज्जामीमी राघ्नोति य एवं वेद ।

ते वा इमे इतरे छन्दसीगायत्रीमभ्यवदेतां वित्तं नावक्षराण्यनुपर्यागुरिति नेत्यब्रवीद् गायत्री यथा वित्तमेव न देवेषु प्रश्नमेतां ते देवा अब्रुवन् यथावित्तमेव न इति ततौ वा अष्टाक्षरा गायत्र्यमभवत्त्र्यक्षरा त्रिष्टुबेकाक्षरा जगती ।

साष्टाक्षरा गायत्री प्रातः सवनमुदयच्छन्ना शक्नोत् त्रिष्टुभम् श्यत्रामाध्यंदिनं सव मुद्यन्तुं तां गायत्र्यन्नवीदायान्यपि मेऽत्रास्वीति सा तथेप्यब्रवीत् त्रिष्टुन्तां वै मेतैरष्टाभिरक्षरैरुपसंह्येहीति तथेति तामुप-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्येतत् सोपर्णमाख्यानं विस्तरेण ऐतरेयब्राह्मणे आम्नातम् । यत्र गायत्री कृतं सोमस्याहरणं त्रिष्टुब्जगत्योर्वैकल्यम् - ताभ्यां स्वस्वाक्षर विसर्जननं गायत्र्या च तयोरप्यक्षराणामानयन पुनश्च स्वरूपस्य तयोरङ्गेनुप्रवेशनमित्यादि दृश्यते । तदेतत् सर्वं वैज्ञानिकं तत्वम् ।

शतपथ ब्राह्मणेऽपि एषा सोमाहरण कथा खण्डशो नैकत्रोपलभ्यते ।[२]

समदधादेतद्वै तद्गायत्र्यै माध्यं दिने यन्मरुत्वतीयस्योत्तरे प्रतिपदो दश्चानुचरः सैकादशाक्षरा भूत्वा माध्यंदिनं सवनमुदयच्छत् ।

नाशक्नोज्जगत्येकाक्षरा तृतीयसवनमुद्यन्तुं तां गायत्र्यब्रवीदायान्यपि मेऽत्रास्त्विति सा तथेत्यब्रवीज्जगती तां वै मेतैरेकादशभिरक्षरैरूपसंधेहीति तथेति तामुपसमदधादेतद्वै प्रतिपदो यश्चानुचरः सा द्वादशाक्षरा भूत्वा तृतीयसवनमुदयच्छत् ।

ततो वा अष्टाक्षरा गायत्र्यभवदेकादशाक्षरा त्रिष्टुब्द्वादशाक्षरा जगती ।

सर्वैश्छन्दोभिः समावज्जामीभी राघ्नोति य एवं वेद ।

एकं वै सत् त्रेधा भवत्तस्मादाहुर्दातव्यमेव विदुष इत्येकं हि सत् त्रेधा भवत् ।

ऐतरेयब्राह्मण अध्याय १३ ।

२. दिवि वै सोम आसीत् । अथेह देवास्ते देवा अकामयन्ता नः सोमो गच्छेत्तेनागतेन यजेमहीति त एते माये असृजन्त सुपर्णीञ्च कद्रूञ्च तद्धिष्ण्यानां ब्रह्मणे व्याख्यायते सौपर्णी का द्रवं यथा तदा स । १ । तेभ्यो गायत्री सोममहापतत्, तस्या आहरन्त्यै गन्धर्वो विश्वावसुः पर्यमुष्णात्ते देवा अविदः प्रच्छयुतो वै परस्तात् सोमोऽथनो नागच्छति गन्धर्वा वै पर्यमोषिषुरिति । २ ॥ ते हो चुः योषित्कामा वै गन्धर्वा वाचमेवैभ्यः प्रहिणवाम

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सा पतित्वा सोमपालान्मीषयित्वा पद्भ्यां च मुखेन सोमं राजानं समगृभ्णाद्याति चेतरे छन्दासी अक्षराण्य जहितां तानि चोपसमगृभ्णात्।

तस्या अनु विसृज्य सोमपालः सव्यस्य पदौ नखमच्छिदत्तच्छल्यको भवत्तस्मात् सा हविरिवाथ यः शल्यो यदनीकमासीत्। स सर्पो निदर्शनम भवत् सहसः स्वजो यानि पर्णानि ते मन्थावल यानि स्नावान्ि ते मण्डूपदा यत्तेजनं सोऽन्याहिः सो सातथेषुरभवत्।

सा यद्दक्षिणेन यदा समगृभ्णात्तत्प्रातः सवनमभवद् गायत्री स्वमायतनमकुरुत तस्मात्तत् समृद्धतमं मन्यन्ते सर्वेषां स वनानामग्रि यो मुख्यो भवसि श्रेष्ठतामश्नुते य एवं वेदाथ यत्सव्येन पदा समगृभ्णात्तन्माध्यं दिनं सवनमभवत्ताद् विस्रंसतद् विस्रस्तं नान्वाप्नोत् पूर्वं, सवनं ते देवाः प्राजिज्ञासन्त तस्मिंस्त्रिष्टुऽभं छन्दसामदधुरिन्द्रिं देवतानां तेन तद् सभावद् वीर्यमभवत् पूर्वेण सवनेनोभाभ्यां सवनाभ्यां समावद् वीर्याभ्यां समावज्जामीभ्यां राघ्नोति य एवं वेदाथ यन्मुखेन समगृभ्णात्तत् तृतीय सवनमभवत्।

तस्य पतन्ती रसमद्ययत् तदधीत् रसं नान्वाप्नोत् पूर्वे सवने ते देवाः प्राजिज्ञासन्त तत् पशुष्वपश्यस्तद्यदा शिरम् वनयन्त्याज्येन पशुना चरन्ति तेन तत् सभावत् वीर्यमभवत् पूर्वाभ्यां सवनाभ्याम्।

सर्वैः सवनैः समावद्वीर्यैः समावज्जामीमी राघ्नोति य एवं वेद।

ते वा इमे इतरे छन्दसीगायत्रीमभ्यवदेतां वित्तं नावक्षराण्यनुपर्यागुरिति नेत्यब्रवीद् गायत्री यथा वित्तमेव न देवेषु प्रश्नमेतां ते देवा अब्रुवन् यथावित्तमेव न इति ततो वा अष्टाक्षरा गायत्र्यमभवत्त्र्यक्षरा त्रिष्टुबेकाक्षरा जगती।

साष्टाक्षरा गायत्री प्रातः सवनमुदयच्छन्ना शक्नोत् त्रिष्टुभम् श्यत्रामाध्यंदिनं सव मुद्यन्तुं तां गायत्र्यब्रवीदायान्यपि मेऽत्रास्वीति सा तथेप्यब्रवीत् त्रिष्टुप्तां वै मेतैरष्टाभिरक्षरैरुपसंघेहीति तथेति तामुप-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्येतत् सोपर्णमाख्यानं विस्तरेण ऐतरेयब्राह्मणे आम्नातम् । यत्र गायत्री कृतं सोमस्याहरणं त्रिष्टुब्जगत्योर्वैकल्यम् - ताभ्यां स्वस्वाक्षर विसर्जननं गायत्र्या च तयोरप्यक्षराणामानयन पुनश्च स्वरूपस्य तयोरङ्गेनुप्रवेशनमित्यादि दृश्यते । तदेतत् सर्वं वैज्ञानिकं तत्वम् ।

शतपथ ब्राह्मणेऽपि एषा सोमाहरण कथा खण्डशो नैकत्रोपलभ्यते ।[२]

समदधादेतद्वै तद्गायत्र्यै माध्यं दिने यन्मरुत्वतीयस्योत्तरे प्रतिपदो दश्चानुचरः सैकादशाक्षरा भूत्वा माध्यंदिनं सवनमुदयच्छत् ।

नाशक्नोज्जगत्येकाक्षरा तृतीयसवनमुद्यन्तुं तां गायत्र्यब्रवीदायान्यपि मेऽत्रास्त्विति सा तथेत्यब्रवीज्जगती तां वै मेतैरेकादशमिररैरूपसंधेहीति तथेति तामुपसमदधादेतद्वै प्रतिपदो यश्चानुचरः सा द्वादशाक्षरा भूत्वा तृतीयसवनमुदयच्छत् ।

ततो वा अष्टाक्षरा गायत्र्यभवदेकादशाक्षरा त्रिष्टुब्द्वादशाक्षरा जगती ।

सर्वैश्छन्दोभिः समावज्जामीभी राघ्नोति य एवं वेद ।

एकं वै सत् त्रेधा भवत्तस्मादाहुर्दातव्यमेव विदुष इत्येकं हि सत् त्रेधा भवत् ।

ऐतरेयब्राह्मण अध्याय १३ ।

२. दिवि वै सोम आसीत् । अथेह देवास्ते देवा अकामयन्ता नः सोमो गच्छेत्तेनागतेन यजेमहीति त एते माये असृजन्त सुपर्णीञ्च कद्रूञ्च तद्धिष्ण्यानां ब्रह्मणे व्याख्यायते सौपर्णी का द्रवं यथा तदा स । १ । तेभ्यो गायत्री सोममहापतत्, तस्या आहरन्त्यै गन्धर्वो विश्वावसुः पर्यमुष्णात्ते देवा अविदः प्रच्छयुतो वै परस्तात् सोमोऽथनो नागच्छति गन्धर्वा वै पर्यमोषिषुरिति । २ ॥ ते हो चुः योषित्कामा वै गन्धर्वा वाचमेवैभ्यः प्रहिणवाम

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एतत् कद्रूसुपर्णाख्यानं महाभारते पुराणेष्वपि च लभ्यते। तथैव वामनावतारकथाऽपि शतपथे विवृता, या किञ्चिद्भेदेन पुराणेषु लभ्यते।[3]

सा नः सह सोमेनागमिष्यतीति वाचं प्राहिण्वन्त्सैनान्त्सह सोमेनागच्छत्। ते गन्धर्वा अन्वागत्याब्रुवन् - सोमो युष्माकं नैष्ट विह्वयामहा इति तां व्यवह्वयन्त। तस्यै गन्धर्वाः वेदानेव प्रोचिर इति वैक्यं विद्मेति वयं विद्मेति। अथ देवाः वीणामेव सृष्ट्वा वादयन्तो निवायन्तो निषेदुरिति वै ते वयं गास्याम इति त्वा प्रमोदयिष्मह इति सा देवानुपाववर्त सा वै सातन्मोधमुपाववर्तं यास्तुवद्भ्यः शंसद्भ्यौ नृतं गीतमुपाववर्तं। तामुह्यन्या अनुयोषास्तस्माथ एव नृत्यति तस्मिन्नेवैता निमिषतया इव। शतपथ ब्राह्मणकाण्ड ३ अध्याय २ ब्राह्मण ४।

३. तथा हि शतपथे ब्राह्मणे उक्तम्—

देवाश्च वा असुराश्चेभये प्राजापत्या पस्पृधिरे ततो देवा अनुव्यमिवासुरथहासुरा मेनिरे स्माकमेवेदं खलु भुवनमिति। त होचुः हन्तेमां पृथिवीं विभजा महै तां विभज्योपजीवामेति तामौक्ष्णेश्चर्मभिः पश्चात् प्राञ्चो विभजमाना अमीयुः तद्वै देवा शुश्रुवुः। विभजम्ते हवा इममसुराः पृथिवीं प्रेत तदेष्यामो यत्रेमासुराः विभजन्ते के ततः स्याम यदस्ये न भजेमहीति ते यज्ञमेव विष्णुं पुरस्कृत्येयुः। ते होचुः अनुनो नो स्यां पृथिव्यामा भजतास्त्वेन नोऽप्यस्यां भाग इति तेहासुराः असूयन्त इवोचुर्यावदेवैष विष्णुरभिशेते तावद्वाऽह्म इति वामनो हि विष्णुरास। तद्देवा न जिहीडिरे महद्वै नो दुर्ये नो यज्ञ सम्भितमदुरिति। ते प्राञ्चं विष्णुं निपाद्य छन्दोभिरभितः पर्यगृहणन् गायत्रेण त्वाछन्दसा परिगृहणामिति पश्चाज्जागतेन त्वाछन्दसा परिगृह्णामीत्युत्तरतः। तां छन्दोभिरभितः परिगृह्य अग्निं पुरस्तात् समाधाय तेनार्चन्तः श्राम्यन्त श्चेरुस्तेनेमां सर्वां पृथिवीं समविन्दन्त तद्यदेनेनेमां सर्वां समविन्दन्त तस्माद् वेदिर्नाम

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तस्मादाहुयविती वेदि स्तावती पृथिवीत्येतया ह्रीमा सीमा समविन्दन्तैव हवा हमा सर्वा सपत्ननाना संवृक्ते निर्भजत्यस्यै सपत्नान्य एवमेतद् वेद ।

सो यं विष्णुग्लानिः छन्दोभिरभितः परिगृहीतोऽग्निः पुरस्तान्नापक्रमणमास स तत् एवौषधीनां मूलान्युपमुम्लोच । ते ह देवा ऊचुः क्वनु विष्णुरभूत् क्वनु यज्ञोऽभूदिति ते होचुश्छन्दोभिर्मितः परिगृहीतोऽग्निः पुरस्तान्नापक्रमणमस्त्यत्रैवान्विच्छतेति तं खनन्तं हवान्दीषुस्तं त्र्यड्गुले न्वविन्दंस्तस्मात् त्र्यड्गुलावेदिः स्यात्तदुहाहि पाञ्विस्त्र्यड्गुलामेव सौम्यस्याध्वरस्य वेदिं चक्रे । तदु तथा न कुर्यात् ओषधीनां वै समूलान्युपाम्लोचत्तस्मादोषधीनामेव मूलान्यूच्छेत्तवे क्रियार्थन्वेवात्र विष्णुमन्वविन्दंस्तस्माद् वेदिर्नाम । शतपथकां० १अ० २ब्रा० ३

एवमन्या अपि आख्यायिका बहुशस्तत्र तत्र ब्राह्मणेषु श्रूयन्ते । क्वचित्तेषां वैज्ञानिकतत्वविवरणं स्वयमेव कृतम् । एतेनानुमीयते यदनादिभूते पुराणवेदेऽपि वैज्ञानिकानामर्थानामाख्यायिका रूपेण प्रकल्पनप्रक्रियेयमादृताऽसीदिति । सैव च मंत्र ब्राह्मणात्मके यज्ञवेदेप्यनुगता । अत एव तदेतत् सौपर्णमाख्यानविद आचक्षते (एत्व०), तेद्धिष्ण्यानां ब्राह्मणं व्याख्यायते (शत०) इत्यादिभिर्वाक्यैः परम्परागतत्वमनादित्वञ्चैतासामाख्यायिकानां ब्राह्मणेष्वपि श्रुतम् ।

ता एता आख्यायिकाः सरलीकृत्य किञ्चित् तारतम्येन भगवता व्यासेन स्वीयायां पुराणसंहितायामप्युपनिबद्धाः, उपलभ्यमानेषु पुराणेष्वपि च दृश्यन्ते । तासां येन प्रकारेण तात्पर्याख्यानं ब्राह्मणेषु कृतम्-तथा विधमेव पुराणेष्वपि तुल्यन्यायाद् बोद्धव्यम् । आसां संकेतग्रहेण वैज्ञानिका अर्थाः सारल्येन बोध्यन्त इति । न सर्वाण्यपि आख्यानान्युपाख्यानानि चैवं रूपकविधयैव सन्निविष्टानीति भ्रमितव्यम्, राज्ञां वंशं प्रकृत्य तत्रस्थानां व्यक्तीनां चरित्रवर्णनं हि असंदिग्धं मनुष्यचरितमिति । अन्यान्यपि च दृष्टान्तविधया समुपात्तानि आख्यानान्युपाख्यानि च मनुष्यचरितान्येव । वेदेष्वपि च मनुष्यचरितानि सन्तीति प्रागेव पुराणोपयोगप्रकरणे विस्तरेणावकथाम ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तत्र किं वैज्ञानिकमाख्यानं रूपकविधया निबद्धम् किं वा वस्तुतो मनुष्यचरितमिति तत्र तत्र पूर्वापरपर्यालोचनया प्रकरणादिभिश्च निश्चेतुं शक्नुवन्ति विचारकाः। मनुष्यचरितानि तु यथा वर्णितानि तथैव बोद्धव्यानीति।

व्यासशिष्यपरंपरा

इयञ्ज पुराणसंहिता संग्रथ्य भगवता व्यासेन रोमहर्षणाय स्वशिष्यायाध्यापिता। अयमतिचतुरो वक्ताऽऽसीत्। एवं वक्तृतया श्रोतृणां रोमानि हर्षयतीति-एतन्नाम्नो व्युत्पत्तिः पुराणेषु तत्र तत्र प्रदर्शिता अत एव च देवीभागवते रोमहर्षणसंभव इत्यपि नाम निर्दिष्टम्। रोम्णां हर्षसंभवो यस्मादिति। अयं रोमहर्षणः सूतजातीय आसीदिति पुराणेष्वेव स्पष्टम्। स्मृतिषु सूतस्योत्पत्तिर्ब्राह्मण्यां क्षत्रियेण प्रतिलोमविधयोक्ता, "ब्राह्मण्यां क्षत्रियात् सूतो वैश्याः वैदेहकस्तथा" "क्षत्रियामागतं वैश्यात्" इत्यादि याज्ञवल्क्यस्मृतौ। मनुना चैषां कर्माण्यपि निर्दिष्टानि :-

क्षत्रियाद् विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान् मागध वैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ॥
(मनु. दशमाध्याये ११ श्लोके)

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम्।
वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः॥
(मनु. दशमाध्याये ४७ श्लोके)

स्त्रीकार्यं स्त्रीणां प्रसाधनादि। वणिक्पथः वाणिज्यम्। नौभिर्व्यापारो वेति। औशनसस्मृतौ तु किञ्चिद् वैलक्षण्यं दृश्यते—

नृपाद् ब्राह्मणाकन्यायां विवाहेषु समन्वयात्।
जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रतिलोमविधिर्द्विजः।
वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः।
ब्राह्मण्यां वैश्य संसर्गाज्जातो मागध उच्यते।
वन्दित्वं ब्राह्मणानाञ्च क्षत्रियाणां विशेषतः।
वैश्यायां शूद्रसंसर्गाज्जातो वैदेहकस्तथा॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अत्र सूतानां प्रतिलोमजसङ्करजातिकृते धर्मबोधकत्वमपि उक्तम्। तेन पुराणादिवक्तृत्वं तेषां समर्थयितुं शक्यते। मागधानाञ्च स्तुतिपाठकत्वमुक्तम्।

अयञ्च प्रतिलोमसंकरत्वाद् वेदेऽनधिकृतः। अतएव—पुराणविषयस्य महत्वं ख्यापयितुं स्त्रीशूद्रादिष्वपि पुराणविद्यां प्रचारयितुञ्चायमेव पुराणशिष्यतया भगवता व्यासेन स्वीकृतः। पुराणेषु तु सूतस्योत्पत्तिरस्य कर्माणि च भिन्नरूपतयैवाख्यायन्ते तथा हि पद्मपुराणे—

एष धर्मस्तु सूतस्य सद्भिर्दृष्टः सनातनः।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञाममिततेजसाम्।
वंशानां धारणं कार्यं स्तुतीनाञ्च महात्मनाम्।
इतिहासपुराणेषु दृष्टा ये ब्रह्मवादिनः।
नहि वेदेष्वधीकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः।
मागधश्चैव सूतश्च स्तुवन्तौ तं नरेश्वरम्।
तुष्टेनाथ तयोर्दत्तौ वरो राज्ञा महात्मना।
सूताय सूतविषया मगधा मागधाय च।
तत्र सूत्यां समुत्पन्नः सूतो नामेह जायते।
ऐन्द्रे सत्रे प्रवृत्ते तु ग्रहयुक्तं बृहस्पतौ।
तमेवेन्द्रं बार्हस्पत्ये तत्र सूतो व्यजायत।
शिष्यहस्तेन यत्पृक्तमभितं गुरोर्हविः।
अधरोत्तरधारेण यज्ञे तद् वर्णसङ्करम्।
येऽत्र क्षत्रात् समभवन् ब्राह्मण्याश्चैव योनितः।
पूर्वेणैव तु साधर्म्याद्वैधर्मास्ते प्रकीर्तिताः।
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीविनः।
पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह।
(पद्म सृ. खं. १-२७-३५)

अयमेव विषयः किञ्चित् पाठाक्षरभेदेन वायुराणनाम्ना प्रसिद्धे ब्रह्माण्डपुराणेऽपि लभ्यते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"स्वधर्म एष सूतस्य सद्भिर्दृष्टः पुरातनैः ।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ।
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानाञ्च महात्मनाम् ।
इतिहासपुराणेषु दृष्टा ये ब्रह्मवादिनः ।
नहि वेदेष्वधीकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः ।
सूत्यायामभवत् सूतः प्रथमो वर्णवैकृतः ।
ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः ।
जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत ।
प्रमादात्तत्र संजज्ञे प्रायश्चित्तं च कर्मसु ।
शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिमतं गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतः ।
यच्च क्षत्रात् समभवत् ब्राह्मणावरयोनितः ।
ततः पूर्वेण साधर्म्यात् तुल्यधर्मा प्रकीर्तितः ।
मध्यमोह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्वचरितं जघन्यं च चिकित्सितम् ।
(वायु. पु. १-२६-३३)

अथ पृथोर्यज्ञे सूतस्योत्पत्तिराख्याता । तत्र च प्रतिलोमसंकरता-कारणमपि भिन्नमेव निर्दिष्टम् यदिन्द्रनाम्नोक्तं हविः वृहस्पतिहविषा सम्मिलितमभूत् । तच्चेन्द्राय हुतम्-तेन सूतोत्पत्तिः । वृहस्पतिर्हि गुरुर्ब्राह्मणः, इन्द्रश्च तच्छिष्योरजेतिक्षत्ररूपः । तयोर्हविषोः साङ्कर्यं जातमितितत्राऽपि ब्राह्मणक्षत्रिययोः साङ्कर्यं सिद्धम् ।

ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जाता या वर्णसंकररूपा सूतजातिः, साप्यनया नवीनोत्पन्नया सूतजात्या समानधर्मचारिण्येवेति पुराणवचनेषूक्तमेव । क्रमात्तयोर्जात्योरैक्यमेवाभूदित्यपि प्रकरणेनानैव व्यज्यते ।

एतदादिसर्वपर्यालोचनयेदमनुमीयते–यत् पूर्वं सूतजातिरश्वसारथ्ये नियोजिताऽसीत् । अनन्तरं पृथुयज्ञे यापरा सूतजातिरुत्पन्ना, तया सह परस्परं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

संसर्गात् प्रतिलोमजानां सूतानामप्यवरजातिकृते धर्मोपदेष्टृत्वं प्रचलितम्। प्रतिलोमसंकरत्वेनैतत् तुल्या मागधजातिरपि नौकादिव्यापारे पूर्वं नियुक्ता, अनन्तरन्तु ब्राह्मणक्षत्रियस्तुतिपाठनेऽपि नियोजिता। परस्परसंसर्गादनयोर्द्वयोरपि जात्योः क्रमेण स्तुत्यादिपाठकत्वं प्रसृतम्। तत एव पुराणेषु सूतानां स्तुतिपाठकत्वमपि धर्म उक्तः। वंशविवरणादिरक्षणञ्चैषां पुराणेषूक्तम्। अवरजातिकृते धर्मोपदेशकत्वञ्चापि स्मृतिषूक्तम्। तस्मात् पुराणप्रचारे सूतो भगवता व्यासेन नियोजितः।

सूतानामश्वसारथ्यमपि चिरं प्रवृत्तमासीत्, यद्यपि पुराणे पृथुयज्ञोत्पन्नानां सूतानामश्वसारथ्यं न दृश्यते। तथापि पौराणिकधर्मवक्तृत्वांशे स्तुतिपाठकत्वांशे च साधर्म्यमनयोर्न हीयते। क्रमेण च द्वे अपि इमे सूतजाती एकतां गते इत्यपि वायुपुराणवचनैनाभिव्यज्यते। अस्तु यथा तथा वा, वेदानधिकारस्तु यज्ञोत्पन्नाया अपि सूतजातेःस्पष्टमुद्घुष्ट एव। अन्यत्रापि च बहुत्र पुराणेषु रोमहर्षणेन तत्पुत्रेणोग्रश्रवसा च स्वस्य वेदानधिकृतत्वं स्पष्टं स्थापितम्।

यत्तु नारदपुराणे उपक्रमे एव सूतस्योग्रश्रवसोऽग्निष्टोमेन यजनं वर्णितम्—

अथ ते मुनयो जग्मुः, पुण्ये सिद्धाश्रमे वने।
मृगव्रजसमाकीर्णे, मुनिभिः परिशोभिते।
ते तु नारायणं देवमनन्तमपराजितम्।
यजन्तमग्निष्टोमेन ददृशे रोमहर्षणिम्॥
यथार्हमर्चितास्तेन सूतेन प्रथितौजसः।
तस्यावभृथमीक्षन्तस्ते च तस्थुर्मखालये। इत्यादि

तदेतत्पुराणपरिभाषानभिज्ञेन केनचित् प्रक्षिप्तमिति प्रतिभाति। बहुषु पुराणेषु वेदानधिकारितयोक्तस्योग्रश्रवसो ज्योतिष्टोमयजनाख्यानात्, शौनकादीनामुग्रश्रवोगृहगमनमप्यपूर्वैव कल्पना। सर्वत्र पुराणेषु-शौनकप्रश्न एव सूतस्यागमनवर्णनात्। स्याद्वा स्मार्तःकोऽपि ज्योतिष्टोमः,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पौराणिकैर्मन्त्रैःसाध्यःतेन यजनं संभवत्युग्रश्रवस इति विचार्यतां विद्वद्भिः। तस्माद् वेदानधिकृतशूद्रसधर्मायं रोमहर्षणो भगवता व्यासेन पुराणशिष्यतया परिगृहीत इति स्पष्टं सिध्यति।

पुराणसंहिताविस्तरः

रोमहर्षणेन वैयासकीं पुराणसंहितामधीत्य तदाधारेण स्वयमपि पुराणसंहितैका विरचिता। अस्माच्च त्रय्यारुणिप्रभृतिभिःकैश्चित् पुराणसंहिताऽधीता, तेष्वपि च कैश्चित् पृथक् पृथक् पुराणसंहिता निर्ममिरे ताश्च सर्वा अपि संहिता रोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवास्तेभ्योऽधीतवान्। तदुक्तं पुराणेष्वेव—

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सार्वणिरकृतव्रणः।
वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे॥
अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां मत्-पितुर्मुखात्।
एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाःसमध्यगाम्॥
कश्यपोऽहञ्च सावर्णी रामशिष्यो कृतव्रणः।
अधीमहि व्यासशिष्या चतस्रो मूलसंहिताः॥

(भागवतपु० स्कन्ध १२ अ० ७)

प्राप्तो व्यासात् पुराणादि सूतो वै लोमहर्षणः।
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रयुः शांशपायनः॥
अकृतव्रणोऽथ सावर्णिः षट्शिष्यास्तस्य चाभवन्।
वैशंपायनादयश्चक्रुः पुराणानान्तु संहिताः॥

(अग्निपु० अ० २७२-११-१२)

वायुपुराणानाम्नोख्याते तु विस्तरेण स्पष्टमिदं प्रतिपादितम्—

आत्रेयः सुमतिर्धीमान् काश्यपो ह्यकृतव्रणः।
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वशिष्ठो मित्रयुश्च यः॥
सावर्णिः सोमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायनः।
एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रताः॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिभिस्तिस्रः कृतास्तिस्रः संहिताः पुनरेव हि ।
काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिःशांशपायनः ।।
सामिका च चतुर्थी स्यात् सा चैषा पूर्वसंहिता ।
सर्वास्ताहि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः ।।
पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथातथा ।
चतुः साहस्रिकाः सर्वाः शांशपायनिकामृते ।।
लोमहर्षणिकामूलास्ततः काश्यपिकाः पराः ।
सावर्णिकास्तृतीयास्ता यजुर्वाक्यार्थमण्डिताः ।।
शांशपायनिकाश्चान्या नोदनार्थं विभूषिताः ।
एताः पञ्चदशान्याश्च दशा या दशभिस्तथा ।

(वायुपु० प्र० ख० ६१)

विष्णुपुराणे च—

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत्सूतो वै रोमहर्षणः ।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामतिः ।
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रयुश्शांशपायनः ।
अकृतव्रणसावर्णी षट्शिष्यास्तस्य चाभवन् ।
काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिश्शांशपायनः ।
रोमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूलसंहिता ।

(विष्णुपु० ३ अ० ६०)

अत्र वायुपुराणे रौमहर्षणशिष्या द्वादश उक्ताः, अन्यत्र, षट् । तत्र वायुपुराणे सर्वे संगृहीताःस्युरन्यत्र प्रधाना एव गणिताःस्युरिति संभाव्यते । संहिताकर्तारस्तु त्रय एव सर्वत्रोक्ताः । एते सर्वे रोमहर्षणशिष्या ब्राह्मणा एव प्रतीयन्ते, तैः पुराणविद्या नूतनेति कृत्वा "नीचादप्युत्तमां विद्याम्" इति मनूक्तिमवलम्ब्य, अब्राह्मणादप्यधीताः, तेषु त्रिभिर्वैयासिकीं रौमहर्षणिकाञ्च संहितामवलम्ब्य, तदाधारेण स्व स्व संहितानिर्माणमपि कृतम्– तत्रापि शांशपायनेन नूतनानर्थान् समावेश्य स्वसंहिता विस्तृतिं नीतेति वायुपुराण उक्तम ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

रोमहर्षणपुत्रेणोग्रश्रवसा सर्वा अपि संहितास्तत्तत् कर्तृभ्य एवाधीता इति सोऽस्मिन् विषये पूर्णं निष्णातोऽभूत् ।

इदन्तु बोध्यम्— यद्रोमहर्षणो भगवतो व्यासस्य पुराणविषये प्रधानः शिष्योऽभूत् परमन्येभ्योऽपि शिष्येभ्यः कतिचित् पुराणानि पुराणविषया वा भगवता व्यासेनैवाध्यापितानि, यथा श्रीमद्भागवते श्रीशुकाचार्येण भागवतं मया व्यासादधीतमित्युक्तम् । वैशम्पायनेनापि व्यासादधीत्यैव महाभारतं जनमेजयाय श्रावितम्— इत्यादि तत्र दृश्यते ।

इत्थं क्रमेण पुराणविद्येयं प्रससार ।

शौनकप्रधानानां दीर्घसत्रे तैराहूतेन रोमहर्षणेन पुराणसंहितास्तेभ्यः श्राविताः । कतिचित् पुराणश्रावणानन्तरं रोमहर्षणो हलायुधेन निहत इति तत्पुत्र उग्रश्रवास्तैराहूतस्तेन चावशिष्टानि पुराणानि श्रावितानीति श्रीभागवते लभ्यते, दृश्यते चापि पुराणेषु तथैव, कानि चिद्रोमहर्षणश्रावितानि, कानिचिच्चोग्रश्रवसा श्रावितानीति ।

तत्र च श्रावणकाले मध्ये मध्ये श्रोतृणां प्रश्नैः प्रसङ्गान्तरमप्यापतितम् इति पूर्वोक्तानां संहितानां क्रमो नात्र रक्षितोऽभूत् । तेन प्रायेण षट्संवादगर्भितानि पुराणानीमानि सन्दर्भे विभिन्नतां गतानि । यथा हि महाभारतमुग्रश्रवसा जनमेजयवैशम्पायनसंवादमवलम्ब्य शौनकादिभ्यः श्रावितम्, तत्र शौनकेन सहोग्रश्रवसः संवादस्तदाधारभूतश्च वैशम्पायनेन जनमेजयस्य संवादः, वैशम्पायनेनापि च भीष्मयुधिष्ठिरादीनामन्येषां बहूनां संवादा उद्धृता इति प्रत्येकमुद्धृतेषु संवादेषु द्वयोर्द्वयोः संवाद इति षट् संवादगर्भितत्वं स्फुटं दृश्यते ।

श्री भागवतेऽपि च शुकाचार्यस्य परीक्षिता सह संवादः । तदाधारेण प्रवृत्तश्चोग्रश्रवसः शौनकेन संवादः । श्री शुकाचार्येणोद्धृताश्च मैत्रेयविदुरादीनां बहवस्ते ते संवादा इति षट्संवाद गर्भितता स्फुटं दृश्यते, तथैव पुराणान्तरेष्वपि सर्वत्रालोच्यम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इमानि च षट्संवादगर्भितानि पुराणानि रोमहर्षणोग्रश्रवोभ्या-मेव यथा शौनकादिभ्यः श्रावितानि, तेन क्रमेणैव स्वयं संदृब्धानीति पुराणपर्यालोचनया संभाव्यते।

उग्रश्रवसैव वा स्वपित्रा श्रावितानि, स्वश्रावितानि च सर्वाणि संदृब्धानि स्युः। तेष्वेषु प्रश्नोत्तरप्रसङ्गेन सन्दर्भक्रम एव भिन्नतां गतः, मुख्याः प्रतिपाद्याः अंशास्तु व्यासोक्ता एव इति मुख्यप्रतिपाद्यांशमादायैव "अष्टादशपुराणानां कर्ता सत्यवतीसुतः" इति सर्वैर्विश्वस्यते। शब्द सन्दर्भभेदेऽपि मुख्यस्यार्थस्य व्यसोपज्ञत्वात्। पुराणानि हि स्मृतिरूपाणि मन्यन्ते, श्रुतिस्मृत्योश्चायमेव परस्परं भेदो यत् श्रुतिषु शब्दानामपि रक्षणं प्रयत्नेन भवति, बिन्दुविसर्गादिकमपि न्यूनाधिकतां न भजते, स्मृतिषु त्वर्थ एव संरक्ष्यते, शब्दानान्तु परस्परं संवादे भेदोऽपि भवतीत्युक्तं प्राक्। तदित्थमिदानीं समुपलभ्यमानानि पुराणानि मूलान्वेषणेऽनादीनि, पुनस्संस्करणे व्यासनिर्मितानि तृतीयसंस्करणे च रोमहर्षणोग्रश्रवो-भ्यामुग्रश्रवसैवेति वा संपादितानीति प्रत्यपीपदाम। इदमप्युक्तं प्राक् यद् वैयासिक्यां पुराणसंहितायां पुराणक्रमोक्तरीत्या ब्रह्मपद्मविष्णु शिवादिभेदा एकस्या एव पुराणसंहितायाः प्रकरणभेदा अध्याया वा बभूवुः।

षट्संवादवत्सु पुराणेषु तु ग्रन्था एव विभिन्नः। प्रश्नोत्तर-प्रवाहे च अत्र ब्रह्मण एव प्रतिपादनम्, अत्र पद्मस्यैव प्रतिपादनम् इत्यादिः क्रमोऽपि न सुरक्षित। सर्वेषामेव सर्वत्र प्रश्नोत्तरक्रमेण प्रति-पादनम् दृश्यते।

तं तं विषयमधिकृत्य वैयासिकसंहिताऽनुसारेण प्रवृत्तत्वात्त् प्राधान्येन तद्वादः इति न्यायेनाद्यापि ब्रह्मपुराणादिसंज्ञाभिर्व्य-वह्रियन्ते।

किञ्च वैयासिकी रोमहर्षणिका शांशपायनिका चैताः सर्वा अपिः संहिताऽत्रान्तर्भाव्येवोग्रश्रवसा एव संहितानिर्मिताः। तत एव ताः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

संहिताः पृथगद्यत्वे नोपलभ्यन्ते मूलपाठोऽपि तासामत्रैवान्तर्भूत इत्यनुमिन्वन्ति विद्वान्सः।

श्रीवासुदेवशरणप्रभृतयस्तु आधुनिका ऐतिहासिका इदं प्रमाणयन्ति यद् विभिन्नेषु प्रदेशेषु काश्चित् पर्षद आसन्। यासां चर्चापार्षदकृतिरेषा तत्र भवतामित्यादिना महाभाष्ये पतञ्जलिना कृता।

निरुक्तकृताऽपि चपदप्रकृतीनि सर्वचरणानां पार्षदानि इत्यादिषु प्रातिशाख्यानां पार्षदमित्येव नाम निर्दिष्टम्।

ते ते ग्रन्थान्निर्माय पर्षत्सु प्रेषयन्ति स्म, पर्षदश्च तेषां सम्पादनं कृत्वा क्वचित् न्यूनाधिकतामपि च तत्र कृत्वा तान् प्रचारयन्ति स्मेत्यनुमीयते।

तथा चेमे सर्वे पुराणग्रन्था अपि पर्षत्स्वेव सम्पादिताः। पर्षद्भिरेव सर्वाः संहिताः यथायथमन्तर्भाव्य दृश्यमाणानां पुराणानां स्वरूपम्प्रचारितिमिति। अतएव सर्वेष्वपि पुराणेषु सर्वेषां नामानि तत्संख्यादिकञ्च विवृतं दृश्यते, अन्यथा निर्माणपूर्वापरीभावः सर्वेषां सर्वत्रोपलम्भो नोपपद्येतैव। इमाः पर्षदोपि चातिपुरातनकालिक्य एवेति रोमहर्षणादिसमयसन्निहित एवासामपि समयः संभाव्यते।

कतिचित् पुराणानां द्वैविध्यम्

एतदपि च पर्यालोच्यम्-यद्रोमहर्षणाच्छ्रुतान्यपि कानिचित् पुराणानि परीक्षणार्थं शौनकेनोग्रश्रवसं प्रति पुनः पृष्टानि, तेन च यथा व्याख्यातानि तत्रापि सन्दर्भभेदः, शब्दभेदश्च बहुतरमभवत् तत्र चेदानीमतितरां संदिहन्ते लोकाः, इदं वा मुख्यम्, इदं वा मुख्यमिति। वस्तुतस्तु द्वे अपि मुख्ये, एकं तत्र रोमहर्षणेन श्रावितमपरञ्चोग्रश्रवसा। यथा श्रीमद्भागवतन्देवीभागवतञ्च।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीमद्भागवतदेवीभागवतयोर्महापुराणत्वनिर्णयः

अत्र परमाप्तानां व्याख्याकृतामप्यस्ति महती विप्रतिपत्तिः। केचन श्रीधरस्वामिप्रभृतयः श्रीमद्भागवतमेव महापुराणमिति ब्रुवते। देवीभागवतन्तु भवतु काममुपपुराणम्, महापुराणेषु न तस्य गणना संभाव्यते तन्मते।

श्री नीलकण्ठप्रभृतयस्तु देवीभागवतमेव महापुराणं, श्रीमद्भागवतं तूपपुराणं स्यादिति तर्कयन्ति।

वस्तुतस्तु उभयोः पर्यालोचनया स्पष्टमिदं दृश्यते यद्देवीभागवते रोमहर्षणो वक्ता, श्रीमद्भागवते चोग्राश्रवा इति। तेन स्पष्टमनुमीयते यद् रोमहर्षणाच्छ्रुतं भागवतम् तथैवायं वक्त्यन्यथा वा इति परीक्षार्थं पुनःशौनकेन उग्रश्रवसः श्रुतम्, तेन च पुराणक्रमोक्तं मुख्यं भागवतत्वमभिरक्षताऽन्येन प्रकारेण तच्छ्रावितम्-संदृब्धञ्च।

उभावपि चेतौ ग्रन्थौ पुराणेषु प्रविष्टौ, व्यवहारासङ्कर्यनिवारणाय चैको ग्रन्थो देवीभागवतनाम्ना, अपरञ्च श्रीमद्भागवतनाम्ना प्रसिद्धिं गतः।

इत्थञ्चोभयोरपि महापुराणत्वे न विवादावसरः।

"यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।

वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते।।" (मत्स्य पु० ५३।२१-)

इति मत्स्यपुराणोक्तं भागवतलक्षणमुभयत्रापि समन्वेति। श्रीमद्भागवते "जन्माद्यस्य यतः" इत्यादिना प्रथमेन श्लोकेन गायत्र्यर्थमेव विशदीकृत्य तदाधारेणैव सर्वोऽपि सृष्ट्यादिविस्तारोऽग्रे प्रतिपादितः। देवीभागवते च प्रसिद्धा गायत्र्येवादौ मङ्गलस्थाने पठिता। अग्रे चैकादशद्वादशस्कन्धयोः गायत्र्यनुष्ठानक्रमः प्रत्यक्षरदैवतन्यासादि च विवृतम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्रासुरवधश्चोभयत्रापि विस्तरेण दृश्यत एव।

पञ्चमस्य भागवतपुराणस्य जनलोकाभिधं परमेष्ठिमण्डलं मुख्यं प्रतिपाद्यमिति प्राक् पुराणक्रमनिरूपणे न्यरूपयाम। तदपि चोभयत्र समन्वेति। परमेष्ठिमण्डलस्य हि मुख्याधिष्ठातारौ राधाकृष्णौ, तौ चाभिन्नौ भगवत्पदवाच्यौ। तत्र कृष्णरूपेण भगवत्तत्वप्रतिपादनं श्रीमद्भागवते, राधारूपेण तत्तत्वप्रतिपादनं हि देवीभागवते।

तस्मात्पुराणांश उभयत्र समानः, "सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातम्" इति देवीभागवते, "इदं हि विश्वं भगवान्" इति च श्रीमद्भागवते ऽद्वैतप्रतिपादनमपि तुल्यम्। एकत्र भगवत उपासना पितृरूपेण शक्तिमद्–रूपेण वाऽपरत्र तु मातृरूपेण शक्तिरूपेणैवेति उपासनाप्रकारभेद् एवोभयोर्भेदकः।

शक्तिशक्तिमतोश्चाभेदमेव मुख्यतया दार्शनिकाः प्रस्तुवन्तीति नोपास्यभेदोऽपि। तदित्थं द्वयोरपि महापुराणत्वम्-रोमहर्षणोग्रश्रवसोः प्रवचनकर्त्रोरिव भेदाद् ग्रन्थभेदोऽभवदिति निभाल्यतां विद्वद्भिः।

यत्तु नारदपुराणे सर्वेषाम्पुराणानामनुक्रमणिका-प्रसङ्गे याऽनुक्रमणिका निर्दिष्टा, सा श्रीमद्भागवत एव समन्वेति, इति तदेव महापुराणम्-देवीभागवतन्तु न तत्रानुक्रान्तम् इति न तस्य महापुराणत्वम्।

पद्मपुराणे उत्तर खण्डे १८९ अध्याये च—

पुराणेषु च सर्वेषुश्रीमद्भागवतं परम्।
यत्र प्रतिपदं कृष्णो गीयते बहुदर्शिभिः ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कृष्णेन भाषितम्।
परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ॥ १५ ॥

इति च श्रीमद्भागवतस्यैव स्मरणं कृतम्। तदेव हि परीक्षिते शुकेन श्रावितमिति केचिदाक्षिपन्ति, तदेतन्न मनोरमम्—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

उभयोः सिद्धे महापुराणत्वे क्वचिदेकं गृहीतमपरत्र तु द्वितीयमिति विवक्षाभेदमात्रमिदम् न कस्यचिन्महापुराणत्वं व्याहन्तुमीष्टे। यथा हि नारदपुराणे श्रीमद्भागवतमनुक्रान्तम् तथा शिवपुराणे देवीभागवतमेव निर्दिष्टम्।

भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते
तत्तु भागवतं प्रोक्तं न तु देवीपुराणकम्॥ (शिवपु०उ०ख०)

यत्र दुर्गायाश्चरितं तद् भागवतं विज्ञेयम् ,देवीपुराणनाम्ना तन्न व्यवह्रियत इत्यर्थः।

तथा च कालिकापुराणस्य हेमाद्रिप्रस्तावे—
"यदिदं कालिकाख्यं तन्मूलं भागवतं स्मृतम्" इत्युक्तम्।
तस्य च मूलं देवीभागवतमेव भवितुमर्हति न तु श्रीमद्भागवतम्।

देवीयामले च—
श्री मद्भागवतं नाम पुराणं वेदसंहितम्।
पारीक्षितायोपदिष्टं सत्यवत्यङ्गजन्मना॥
यत्र देव्यवताराश्च बहवः प्रतिपादिताः।
इदं रहस्यं चरितं राधोपासनमुत्तमम्॥
व्यासाय मम भक्ताय प्रोक्तं पूर्वं मयाद्रिजे।
मत्तो रहस्यं ज्ञात्वैव राधोपासनमुत्तमम्॥
एतस्य विस्तरं चक्रे श्रीमद्भागवते तथा।
नारदे ब्रह्मवैवर्ते लोकानां हितकाम्यया॥

अत्रापि देवीभागवतत्वेन निर्दिष्टम्-देव्यवताराणां तत्रैवाख्यातत्वात् व्यसेन परीक्षितपुत्रजनमेजयं प्रति तस्यैवोपदिष्टत्वाच्च।

श्रीमदिति विशेषणञ्चादरार्थं सर्वत्रैव योजयितुं शक्यते—

तेन श्रीमद्भागवतमिति प्रसिद्धो ग्रन्थोत्राभिसंहित इति न शङ्कनीयम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

चित्सुखकृतभागवतकथासङ्ग्रहेऽपि—

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंहितः।
हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा।
गायत्र्या च समारम्भः, तद् वै भागवतं विदुः।

अत्रापि देवीभागवतमेव निर्दिष्टम्, तत्रैव हयग्रीवोपाख्यानस्य सविस्तरं दर्शनात्।

किञ्च मत्स्यपुराणलक्षणमपि देवीभागवत एव सम्यक् समन्वेति।

श्रीमद्भागवते हि—"यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः" इति गायत्र्यर्थमधिकृत्येति विस्पष्टं व्याख्यायते।

न च गायत्रीसम्बन्धेन धर्मविस्तरः कोऽपि तत्र वर्णितो दृश्यते। देवीभागवते तु गायत्री सम्बन्ध एव तदनुष्ठानादिधर्मविस्तार एकादशद्वादशस्कन्धयोः स्फुटमुपलभ्यते।

अपि च मत्स्यपुराणे तत्रैवैतदप्युक्तम्।

सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामराः।
तद् वृत्तान्तोद्भवो लोके तद् भागवतमुच्यते॥

न च श्रीमद्भागवते सारस्वतकल्पाश्रयत्वं कुत्रापि स्मर्यते, देवीभागवते तु सारस्वतकल्पस्य सम्बन्धमेव श्रीज्वालाप्रसादादयोऽयोजयन्।

शिवपुराण उमासंहितायां हि—

"ब्रह्मणा संस्तुता सेयं मधुकैटभनाशने।
महाविद्या जगद्धात्री सर्वविद्याधिदेवता॥
द्वादश्यां फाल्गुनस्यैव शुक्लायां समभून्नृप॥ इत्युक्तम्।

स्कन्दपुराणे नागरखण्डे च—

सारस्वतस्तु द्वादश्यां शुक्लायां फाल्गुनस्य च।

इति सारस्वतकल्पस्य प्रारम्भोपि तस्मिन्नेव दिने फाल्गुन शुक्लैकादश्यामाख्यातः। तेन च मधुकैटभनाशिन्याः प्रादुर्भावः सारस्वत-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

कल्प एव स्फुटीभवति । तद् वृत्तान्ताश्रयत्वाच्च देवीभागवतमपि सारस्वतकल्पेन सम्बद्धं प्रतीयते । तदित्थमिदमेव सिद्ध्यति यत् देवीभागवतं श्रीमद्भागवतञ्चेत्युभे अपि महापुराणे एव । क्वचित् कस्यचित् कीर्तनं क्वचिदपरस्य कस्यचिदिति नात्र कोऽपि दोषः । उपासनाभेदात्तु वैष्णवाः श्रीमद्भागवतं विशेषेणाद्रियन्ते । शाक्ताश्च देवीभागवतेऽधिकं श्रद्दधते । पुराणांशस्तूभयत्र समान एवेत्युक्तं प्राक् ।

यत्तु केचिच्छ्रीमद्भागवतस्य पुराणत्वे एवम् आक्षिपन्ति यत्तत्राऽदावेव सर्वं स्वकार्यं सम्पाद्यापि कृष्णद्वैपायनः श्री व्यासोऽन्तरात्मनस्तुष्टिं नालभत । तेन पृष्टश्च भगवान्-नारदः, भागवता धर्मास्त्वया प्राधान्येनोपदेष्टव्याः, तदैवात्मानः प्रसादः स्याद् इत्यादि—समादिदेश । तदुपदेशमादृत्य च भागवतधर्मप्रधानं श्रीमद्भागवतन्तेन विरचितमित्यादि दृश्यते ।

भागवतञ्च पञ्चमपुराणत्वेन सर्वत्र वर्ण्यते । यदि हीदमेव श्रीभागवतं पञ्चम पुराणं स्यात्तर्हि चत्वारि पुराणान्येव व्यासेन पूर्वं निर्मितानि स्युः । चतुर्दश चावशिष्टानीति बहुलस्य कर्तव्यस्यावशिष्टतया मनः प्रसादस्य शान्तेर्वा कथैव नोदियात् ।

ततश्च नारदम्प्रति सर्वं कृत्वाऽपि ममात्मनस्तुष्टिर्नास्तीति प्रश्न एव नोद्भवेत् ।

तस्मान्नेदं महापुराणेषु पञ्चमत्वेन परिगण्यमानं भागवतमित्यवश्यं मन्तव्यम् । किञ्च पुराणान्तरापेक्षया महाभारतापेक्षयाऽपि च भाषा वैलक्षण्यमपि स्फुटमत्रानुभूयते । महाभारतस्यान्येषां पुराणानाञ्चातिप्रसन्ना सरलतमा भाषा, सरला च प्रतिपादनशैली । श्री मद्भागवतन्तु तथा कठिनम् यद् "विद्यावतां भागवते परीक्षा" इत्यपि प्रवादः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रचलितः । तस्मादपि नेदं पुराणान्तरैर्महाभारतेन वा समानकर्तृकं

भवितुमर्हतीति। तदेतदपि न विचारसहम्,–"यत् परः शब्दः स शब्दार्थः" इति मीमांसासम्मतन्यायमवलम्ब्य व्यासनारदसंवादस्यैतावदेवतात्पर्यं भवितुमर्हति यदन्यत्र दुर्लभो मनः प्रसादः, शान्तिर्वा श्रीभागवते प्राप्यते। सेयं ग्रन्थस्यास्य स्तुतिः, पुराणान्तरेष्वपि चैवं विधा ग्रन्थस्तुतिरुपलभ्यत एव। तेन व्यासस्य कार्यान्तरमवशिष्टन्नवेत्येतद् विषये तात्पर्यमेव संवादस्यास्यास्य नास्ति।

तेन च पञ्चमपुराणत्वेऽन्येषां शेषत्वे वा न किमपि हीयते।

इदमपि च शक्यते संभावयितुम् यत्पञ्चमपुराणरूपम्भागवतं व्यासेन पूर्वमेव यथास्थाने विनिर्मितम्। अष्टादशपुराणानां निर्माणानन्तरन्तु मनः प्रसादमनवाप्य नारदस्योपदेशमधिगत्य च ये भागवता धर्मा निरूपितास्ते औचित्यं विभाव्य पूर्वनिर्मिते पञ्चमपुराणे भागवते यथास्थानं निवेशिता इति।

तेनापि भागवतस्य पञ्चमपुराणत्वे न कापि-क्षतिः। भाषाभेदश्चैवं विधोऽन्यत्रान्यत्रापि लभ्यत एव।

षट्पुरुषसंवादरूपाणि पुराणानीमानि नैक—स्या एव लेखन्या विनिर्गतनि, अपि तु विभिन्नाः संहिताः संगृह्य तत्र तत्र प्रचलितांश्च सम्वादानपि तत्र निवेश्य स्वरूपमेषां सम्पन्नम्। सर्वदाऽपि च सम्पादने तत्र तत्र किञ्चिद् वैलक्षण्यं च कृतं स्यादिति प्रत्यपीपदाम पूर्वम्। नापि च श्रीमद्भागवते भाषाया विशेषेण काठिन्यम् प्रतिपाद्यविषये-गाम्भीर्येण तु काठिन्यन्तत्रानुभूयते।

तदेव चाभिलक्ष्य "विद्यावतां भागवते परीक्षा" इति प्रवादः। इयं हि भाषाभेदेन कर्तृभेदकल्पनाऽत्यन्तार्वाचीनेषु प्रचलति, न ता प्राक्तनेषु ग्रन्थेषु सामञ्जस्याः सर्वात्मना भवितुमर्हन्ति। एकस्याऽपि निबद्धुरनैकविधा भाषा शैली बहुत्रोपलभ्यत इत्यास्तां तावत्।

यदपि च केचिदाक्षिपन्ति यन्महाभारते वनपर्वणि (अर्जुनाभिगमन-पर्वणि) २१ अध्याये स्वयं भगवता श्रीकृष्णेन युधिष्ठिरं प्रतिस्वस्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

शाल्वेन सह युद्धं वर्णयतोक्तम् यद्—यदाऽहं द्वारकाया बहिर्भूय शाल्वेन सह युद्ध्यन्नासम् तदा द्वरिकाया आगत्य—कश्चित् पुरुषः उग्रसेनसन्देशं मांम्प्रत्यवोचत् यत्—शाल्वेनात्रागत्य वसुदेवो निहतः। तस्मात्त्वं युद्धं हित्वा शीघ्रं द्वारकामागच्छ, यावच्चाहं कथं पिता मे निहत इति विचिन्तयामि तावदेव—

ततो पश्यं महाराज ! प्रपतन्तमहन्तदा ।
सौरभाच्छूरपुत्रं हि ततो मां मोह आविशत् ॥ २२ ॥
तस्य रूपं प्रपततः पितुर्मम नराधिप ।
ययातेः क्षीणपुण्यस्य स्वर्गादिव महीतलम् ॥ २३ ॥
विशीर्णमलिनोष्णीषप्रकीर्णाम्बरभूर्धजः ।
प्रपतन् दृश्यते ह स्म क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ २४ ॥
ततः शाङ्र्गं धनुः श्रेष्ठं करात्प्रपतितं मम ।
मोहाच्छान्नश्च कौन्तेय ! रथोपस्थ उपाविशम् ॥ २५ ॥
ततो हाहाकृतं सर्वं सैन्यं मे गतचेतनम् ।
मां दृष्ट्वा रथनीडस्थं गतासुमिव भारत ॥ २६ ॥
प्रसार्यं बाहू पततः प्रसार्यं चरणावपि ।
रूपं पितुर्मम बभौ शकुनेः पततो यथा ॥ २७ ॥
तं पतन्तं महाबाहो शूलपट्टिश पाणयः ।
अभिघ्नन्तो भृशं वीर मम चेतो ह्यकम्पयन् ॥ २८ ॥
ततो मुहुर्तात्प्रतिलभ्य संज्ञामहं तदा वीर महाविमर्दे ।
न तत्र सौभं न रिपुञ्च शाल्वं पश्यामि वृद्धं पितरं न चापि ॥२९॥
ततो ममासीन्मनसि मायेयमिति निश्चितम् ।
प्रवुद्धोऽस्मि ततो भूयः शतशो वाकिरं शरान् ॥३०॥

श्रीमद्भागवते च दशमस्कन्धोत्तरार्धे ७७ अध्याये—
तदेतन्महाभारतवृत्तमनूद्य स्पष्टं खण्डितम् ।
ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसाऽच्युतम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

देवक्या प्रहितोऽस्मीति, नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥२१॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सलः ।
बद्ध्वाऽनीतस्तु शल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥
निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ।
विमनस्को घृणी स्नेहाद् बभाषे प्राकृतो यथा ॥२३॥
कथं राममसंभ्रान्तं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः ।
शाल्वेनाऽल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान् विधिः ॥२४॥
इति ब्रुवाणे गोविन्दे सोमराट् प्रत्युपस्थितः ।
वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥
एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ।
वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत् पाहि बालिश ॥२६॥
एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः ।
उत्कृत्य शिर आदाय स्वस्थं सौधं समाविशत् ॥२६॥

ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्वजनानुषङ्गतः ।
महानुभावस्तदबुद्धमासुरीं मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥२८॥
न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रवुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ।
स्वाप्नं यथा चाम्बरचारिणं रिपुं सामस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥१६॥

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयःकेचनान्विताः ।
यत्स्ववाचा विरुध्येत नूनं तेन स्मरन्त्युत ॥३०॥
बत शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः ।
बत चाखण्डितविज्ञानं ज्ञानैश्वर्यंस्त्वखण्डितः ॥

यत्पादसेवार्जितयाऽऽत्मविद्यया,
हिन्वन्त्यनायाऽमविपर्ययग्रहम् ।
लभन्त आऽत्मीयमनन्तमैश्वरं,
कुतो न मोहः परमस्य सद्गमे ॥३२॥ इति ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एवं महाभारतेऽनुशासनपर्वणि पुनास्थचित्रशालामुद्रणालये

मुद्रिते १३-१४ अध्यायेषु निर्णयसागर मुद्रिते ४४-४७ अध्यायेषु च यदा भीष्मं प्रति युधिष्ठिरेण शिवनामगुणमहिमादिकं पृष्टम्, भीष्मेण च नाहं शिवस्य गुणान्वक्तुं समर्थः, न वाऽन्योऽपि कश्चन मनुष्यस्तद् गुण विषये वक्तुं शक्तः, अत्रैव सभायां भगवान् कृष्णो विराजते, स एव शिवस्य गुणान्वक्तुं समर्थः। सोऽस्माभिः सर्वैः प्रार्थनीय इत्युत्तरितम्, तदा प्रार्थितेन भगवता कृष्णेनैवं वक्तुमुपक्रान्तम्—

न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्वतः।
हिरण्यगर्भप्रमुखा देवाः सेन्द्रा महर्षयः ॥२२॥
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः, सूक्ष्मदर्शिनः।
स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः ॥२३॥
तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चित् भगवतो गुणान्।
भवतां कीर्तयिष्यामि संतोषाय यथातथम् ॥२४॥

अग्रे च स्वानुभूतो वृत्तान्तो वर्णितो यद् रुक्मिण्या यदा पुत्रा जाताः, तदा जाम्बवत्याऽप्यहं पुत्रार्थं प्रार्थितः। अहं च तामाश्वास्य शिवस्याराधनार्थं गरुड़मारुह्य हिमवत्प्रदेशमगच्छम्, तत्र च दिव्ये क्षेत्रे बहवो मुनयो माम्प्रति शिवमहिमानमभाषन्त। यदा चाऽहं परमभक्तस्योपमन्योराश्रमेऽगच्छम्, तदोपमन्युना शिवमहिमा शिवस्याराधनप्रकारश्चानेकदिनपर्यन्तं मह्यमुपदिष्टाः।

(महाभारतेनुऽशासनपर्वणि चतुर्दशाध्याये—)

एवं कथयतस्तस्य महादेवान्वितां कथाम्।
दिनान्यष्टौ ततो जग्मुर्मुहूर्तमिव भारत ॥७८॥
दिनेऽष्टमे तु विप्रेण दीक्षितोऽहं यथाविधि।
दंडी मुंडी कुशी चीरी घृताक्तो मेखलीकृतः ॥७९॥
मासमेकं तिलाहारो द्वितीयं सलिलाशनः।
तृतीयञ्च चतुर्थञ्च पञ्चमञ्चानिलाशनः ॥८०॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एकपादेन तिष्ठंश्च ऊर्ध्वबाहुरतन्द्रितः ।
तेजः सूर्यसहस्रस्य ग्रपश्यन्दिवि भारत ॥८१॥
तस्य मध्यगतञ्चापि तेजसः पाण्डुनन्दन ।
इन्द्रायुधपिनद्धाङ्गवियन्मालागवाक्षकम् ॥८२॥
नीलशैलं च यत् प्रख्यं बलाकाभूषिताध्वरम् ।
तत्र स्थितश्च भगवान् देव्या सह महाद्युतिः ॥८३॥
तपसा तेजसा कान्त्या दीप्तया सह भर्यया ।
रराज भगवांस्तत्र देव्या सह महेश्वरः ॥८४॥
सोमेन सहितः सूर्यो यथा मेघस्थितस्तथा ।
शतक्रतुश्च भगवान् विष्णुश्चादिति नन्दनौ ॥८५॥
ब्रह्मा रथन्तरं साम ईरयन्ति भवान्तिके ।
योगीश्वराः सुवसवो योगदं पितरं गुरुम् ॥९२॥
ब्रह्मर्षयश्च ससुतास्तथा देवर्षयश्च वै ॥९३॥ इत्यादि ॥

(तत्रैव पञ्चादशाध्याये च)--

धर्मे दृढत्वं युधिशैशुपातं यशस्तथाग्र्यं परमं बलञ्च ।
योगप्रियत्वं तव सन्निकर्षं वृणे सुतानाञ्च शतं शतानि ॥२॥
एवमस्त्विवति तद् वाक्यं मयोक्तः प्राह शङ्करः ।
ततो मां जगतो माता धारिणी सर्वपावनी ॥३॥
उवाचोमा प्रणिहिता शर्वाणी तपसां निधिः ।
दत्तो भगवता पुत्रः साम्बो नाम तवानघ ॥४॥
मत्तोऽप्यष्टौ वरानष्टान् गृहाण त्वं ददामि ते ।
प्रणम्य शिरसा सा च मयोक्ता पाण्डुनन्दन ॥५॥
द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं शतं सुतानां परमञ्च भोगम् ।
कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं शमप्राप्ति प्रवृणे चापि दाक्ष्यम् ॥६॥

इत्येवं महता विस्तरेण भगवता श्रीकृष्णेन स्वयं पुत्रप्राप्तये शिवस्याराधनं विवृतम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तस्यैतस्य श्रीभागवते काऽपि चर्चा न दृश्यते । श्री कृष्णस्य पुत्राणां पूर्णं विवरणं कृत्वाऽपि तपोविषयस्तत्र मनागपि न स्पृष्टः। किञ्च वैपरीत्येन--

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ।
प्रायस्ते ऊनिनो भोजा, न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ (भागवतदशमस्कन्ध अ० ८७ श्लो० १)

इति शिवस्याशिवपदेनाख्यानं निन्दाद्योतकं दृश्यते । वाणासुरयुद्धेऽपि च कृष्णस्याग्रे शिवस्य पराजयः, शिवकृतं तत्प्रसादनञ्च दृश्यते ।

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् । इत्यादि ।
(भाग० दश० अ० ६३)

एतच्च सर्वमेककर्तृके ग्रन्थे नोपपद्यते । कथं हि एक एव कर्ता एकत्र किञ्चिद् ब्रूयात् अपरत्र च तदेव निराकुर्यात् ? तस्मान्महाभारतेन सहैककर्तृकत्वं श्रीभागवतस्य न संभवति । महाभारतस्य च व्यासोपज्ञत्वं सुप्रसिद्ध सुदृढञ्चेति श्रीभागवतस्यैवान्यकर्तृकत्वं पर्यवस्यति इति । तदेतदपि न विचारसहम्, दृष्टिभेदेन तथाविधभेदोपपादनसंभवात् । भगवदवताराणां हि द्विविधानि चरितानि भवन्ति । लोकशिवाद्यालोका - नुकृतिरूपाणि ख्यापनार्थं पारमेश्वराणि चेति । तत्र भगवतः श्री कृष्णस्य शाल्वयुद्धे मोहादिप्रदर्शनम् जाम्बतीपुत्रप्राप्तये शिवाराधनञ्च लोकानुकृ - ति रूपं चरितम् । तत् श्रीकृष्णेन महाभारते स्वयमनूद्य युधिष्ठिरं प्रति भीष्मसभायां प्रकाशितम् । तदेव च महाभारतकारेणोपनिबद्धम् ।

श्री भागवतस्योपदेष्टा श्री शुकाचार्यस्तु पूर्ण ज्ञानीस लोकानुकृति चरितानि नैव श्रद्धत्ते अपि तु पारमेश्वराण्येव श्रीकृष्णचरितानि मुमुक्षवे परीक्षिते श्रवयति । तस्मात् परमार्थदृष्ट्या लोकानुकृतिचरितं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तेनावास्तविकत्वं बोधयित्वैतन्निराकृतं तपोरूपञ्च द्वितीयं नैवोपनिबद्धम्। श्रीशुकाचार्यस्यैवोक्तश्यच श्रीभागवत उपनिबद्धा, इत्येवं दृष्टिभेदेन कथनं निराकरणञ्चेत्युभयमप्युपपद्यते।

महाभारते श्रीकृष्णः स्वयं वक्ता स च स्वस्य पारमैश्वर्यं निगूहमानः स्वस्य लोकानुकृतिचरितान्यपि श्रावयति। श्रीभागवते च श्रीशुकाचार्यो वक्ता पारमार्थिकदृष्ट्या वा। ते चोभये विधे अप्युक्ती तत्र तत्र संगृह्येते इति को विरोधः।

ननु पारमार्थिकदृष्ट्या शाल्वयुद्धे मोहः शिवाराधनञ्च लोकानुकृतिरूपमायामात्रमित्युच्यतां कामम्, तच्चरितमेव नाभूदित्युक्तिस्तु विरुद्धैवेति चेत्, पारमार्थिक दृष्ट्या प्रतिषेध एव तत्र तात्पर्यमिति पूर्वापरसन्दर्भेण स्फुटं प्रतीयते। शिवस्योपासननिन्दाभासस्तु न हि निन्दा निन्द्यान् निन्दितं प्रवर्तते अपि तूत्कर्षबोधन एव तत्र तात्पर्यं तच्च तत्तदधिकारिणमुद्दिश्य समुचितमेवेति। कृष्णशिवयोर्युद्धमुभयोः क्रीडनमात्रं न तु कस्यापि पराभवः उभयोरेकत्वस्यैवाग्रे प्रतिपादनात्। स्वस्याग्रे स्वपराभवस्य कथैव केति। एतावता न हि सर्वस्यैव श्री भागवतस्य महापुराणत्वनिराकरणं कथमपि संभवति।

श्रीमद्भागवते हि यादृशानि पुराणोपयुक्तानि दार्शनिकानि वैदिकानि च रहस्यानि विवृतानि न तादृशरहस्यकथनमनृषेः संभवतीत्यावश्यमार्षत्वं तस्य स्वीकार्यमेव।

तथैव देवीभागवतेऽपि यादृशानि शक्तिरहस्यानि मन्त्राद्याराधनप्रकाराश्च व्याख्यायन्ते तद् व्याख्यानमपि नानृषेः संभवतीति तस्याप्यार्षत्वे न विवदितव्यं विद्वद्भिरित्युभयमपि महापुराणेषु गणनीयम्।

न चैवं महापुराणानां सङ्ख्याधिक्यं शङ्कनीयम् उभयोर्गणने ऊनविंशतिः पुराणानि स्युरिति। यतो हि पुराणविषयांल्लक्षीकृत्याष्टादश संख्या स्थाप्यते न तु ग्रन्थांल्लदक्षीकृत्य।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विषयाणामष्टादशत्वं हि प्रागुपपादितमस्माभिः पुराणक्रमनिरूपण प्रसङ्गे। तत्रैकैकं विषयमवलम्ब्य ग्रन्था अनेकेऽपि संभवन्तीति न तावता सङ्ख्या वर्धते।

विषयं लक्ष्यीकृत्यैव च ग्रन्थभेदेऽपि भागवतमित्येव मेवनामोभयोर्दृश्यते। व्यवहारसाङ्कर्यनिराकरणाय त्वेकत्र श्रीमदिति विशेषणमपरत्र च देवीति विशेषणं पश्चात् प्रवृत्तमिति न कोऽपि विरोधः।

ग्रन्थभेदे हेतुश्चोपपादित एव, एकं रोमहर्षणेन श्रावितमपरस-ञ्चोग्रश्रवसेति।

उपपुराणेष्वपि भागवतमिति नाम क्वचित् क्वचिदुपलभ्यते। तदाभ्यां भिन्नं किमप्यपरं भागवतं स्यात् – न चेदानीं तदुपलभ्यते। उपपुराणेषु सूतशौनकसंवादरूपे उक्तिप्रत्युक्ती न दृश्येते। इह तूभयत्र ते दृश्येते किं च सर्वत्रैव व्याख्याता पुराणेषु भागवतस्य याऽष्टादशसहस्रमिता ग्रन्थसङ्ख्या व्याख्याता साप्युभयसमानेति नानयोः कस्य चिदप्युपपुराणं-त्वं संभवतीति।

पद्मपुराणद्वैविध्यम्

अथ पद्मपुराणमपि द्विविधं प्रचरति। एकं रोमहर्षणश्रावितम-परञ्चोग्रश्रवसाश्रावितम् तथाहि पुण्यपत्तनान्दाश्रममुद्रितस्य पद्मपुराणा-स्यादिखण्डे—

एकदा मुनयः सर्वे ज्वलज्ज्वलनसंनिभाः।
हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः ॥१॥
कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
आजगाम महातेजाः सूतस्तत्र महाद्युतिः ॥६॥
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसंज्ञकः।
तान्प्रणम्य यथा न्यायं स तैश्चैवाभिपूजितः ॥१०॥
उपविष्टा यथायोगं शौनकाद्या महर्षयः।
व्यासशिष्यं सुखासीनं सूतं वै रोमहर्षणम् ॥११॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

साधु साधु महाभागाः साधु पृष्टं तपोधनाः ।
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञकम् ॥१८॥

पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिम् ।
विश्वाधारं विपुलमतिदं वेदवेदान्तवेद्यम् ॥
शश्वच्छान्तं स्वमतिविषयं शुद्धितेजो विशालम् ।
वेदव्यासं विततयशसं सर्वदाऽहं नमामि ॥ १९ ॥

नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ।
यस्य प्रसादात् वक्ष्यामि नारायणकथामिमाम् ॥२०॥

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पद्मसंज्ञितम् ।
सहस्रं पञ्च पञ्चाशत् षड्भिः खण्डैः समन्वितम् ॥२१॥

तत्रादावादिखण्डं स्याद् भूमिखण्डं ततः परम् ।
ब्रह्मखण्डञ्च तत्पश्चात् ततः पातालखण्डकम् ॥२२॥

क्रियाखण्डं ततः ख्यातमुत्तरं खण्डमन्तिमम् ।
एतदेव महापद्ममुद्भूतं यन्मयं जगत् ॥ २३ ॥

एतत्सर्वमेवमेव श्री वेंकटेश्वरयन्त्रालयमुद्रिते पद्मपुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे समुपलभ्यते । परं खण्डनाम्ना तत्र व्यत्यासः कृतः ।

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पद्मसंज्ञितम् ।
सहस्रं पञ्चपञ्चाशत् सप्तखण्डैः समन्वितम् ॥ २३ ॥
तत्रादौ सृष्टिखण्डं स्याद् भूमिखण्डं ततः परम् ।
तृतीयं स्वर्गखण्डञ्च चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम् ॥ २४ ॥
पातालं पञ्चमं खण्डं षष्ठमुत्तरमेव च ।
क्रियाखण्डं सप्तमं स्यादित्येवं खण्डसप्तकम् ॥ २५ ॥
एवमत्र रोमहर्षणो वक्तेति स्फुटीभूतमेव ।

अथ श्रीवेंकटेश्वरयन्त्रालयमुद्रिते पद्मपुराणे प्रथमत्वेनाभिमते, आनन्दाश्रममुद्रिते तु पञ्चमत्वेनाभिमते क्रियाखण्डापरपर्याये सृष्टिखण्डे उग्रश्रवा वक्तृत्वेनोक्तः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

आरम्भ एव प्रथमाध्याये—

सूतमेकान्तमासीनं व्यासशिष्यो महामतिः ।
लोमहर्षणनामा वै उग्रश्रवसमाह तत् ॥ २ ॥
ऋषीणामाश्रमांस्तात सर्वधर्मान्समासतः ।
पृच्छतां विस्तराद् ब्रूहि यन्मत्तः श्रुतवानसि ॥ ३ ॥
तत्र गत्वा तु तान्ब्रूहि पृच्छतां धर्मसंशयान् ॥ १० ॥
उग्रश्रवास्ततो गत्वा ज्ञानविन्मुनिपुङ्गवान् ।
अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् ।
ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महामुनें ॥ १२ ॥
तस्मै समेत्य पूजाञ्च यथावत्प्रतिपेदिरे ।

सूत उवाच —

पित्राऽहं तु समादिष्टो व्यासशिष्येण धीमता ।
शुश्रूषस्व मुनीन् गत्वा यत्तु पृच्छन्ति तद् वद ॥ १४ ॥
वदन्तु भगवन्तो मां कथयामि कथान्तु काम् ।
पुराणञ्चेतिहासं वा धर्मानथ पृथग्विधान् ॥ १५ ॥
पाद्मं पुराणं सर्वेषां कथयस्व महामते ।
कथं पदमं समुद्भूतं ब्रह्मा तत्र कथं भवेत् ॥ २३ ॥
प्रोद्भूतेन कथं सृष्टिः कृता तान्तु तथा वद ।
एवं पृष्टस्ततस्तांस्तु प्रत्युवाच शुभां गिरम् ॥ २४ ॥
एतदेव च वै ब्रह्मा पाद्मं लोके जगाद वै ।
सर्वभूताश्रयं तच्च पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥ ५३ ॥

प्रथमाध्याये—

पाद्मं तत् पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणीह पठ्यते ।
पञ्चभिः पर्वभिः प्रोक्तं संक्षेपाद् व्यासकारितम् ॥ ५४ ॥
पौष्करं प्रथमं पर्व यत्रोत्पन्नः स्वयं विराट् ।
द्वितीयं तीर्थपर्वस्यात् सर्वग्रहगणसंश्रयम् ॥ ५५ ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तृतीयपर्वंग्रहणे राजानो भूरिदक्षिणाः ।
वंशानुचरितञ्चैव चतुर्थं परिकीर्तितम् ॥ ५६ ॥

पञ्चमे मोक्षतत्वञ्च सर्वज्ञत्वं निगद्यते ।
पौष्करे नवधा सृष्टिः सर्वेषां ब्रह्मकारिता ॥ ५७ ॥

इत्यादि ।

श्री वेंकटेश्वरमुद्रिते पद्मपुराणे तु ५२ श्लोकादग्रे इमे श्लोका अधिका लभ्यन्ते ।

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पाद्मसंज्ञितम् ।
सहस्रं पञ्च पञ्चाशत्पञ्चखण्डैः समन्वितम् ॥ ५४ ॥

तत्रादौ सृष्टिखण्डं स्यात् भूमिखण्डं ततः परम् ।
स्वर्गखण्डं ततः पश्चात् ततः पातालखण्डकम् ॥ ५५ ॥

पञ्चमञ्च ततः ख्यातमुत्तरं खण्डमुत्तमम् ।
एतदेव महापद्ममुद्भूतं यन्मयं जगत् ॥ ५७ ॥

एतदग्रे च पूर्वोक्तः पर्वविभागोऽपि लभ्यते ।

(५९–६२ श्लोकेषु)

अग्रे च नवधा सृष्टिरुक्ता । आनन्दाश्रममुद्रितेऽपि भूमिखण्डे १२५ अध्याये एवमेव पञ्चखण्डविभागो दृश्यते । नारदपुराणेऽपि पद्मपुराण-लक्षणकथनावसरे पञ्चखण्डत्वमेवोक्तम्

यथा पञ्चेन्द्रियः सर्वशरीरीति निगद्यते ।
तथेदं पञ्चभिः खण्डैरुदितं पापनाशनम् ।
पुलस्त्येन तु भीष्माय सृष्ट्यादि क्रमतो द्विज ।

क्वचित् खण्डनामसु भेदोऽपि लभ्यते ।

तदेतत्सर्वं पर्यालोच्येदमेवानुमीयते यदेकं रोमहर्षणेन श्रावितमप-रञ्चोग्रश्रवसा श्रावितमिति पद्मपुराणद्वयमासीत् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तत्र रोमहर्षणश्राविते खण्डविभागः उग्रश्रवसा श्राविते तु पर्वविभाग आसीत्। तत्र द्वयोरन्यतरस्यापि पूर्णपुस्तकं मुद्रकैर्नोपलब्धम्। येन यावल्लब्धं तदेव पूर्णं मत्वा सप्त पञ्च, षट्वा खण्डानि यथेच्छं कल्पितानि।

द्वयोः पद्मपुराणयोर्विभागश्च न ज्ञातो न वा पर्यालोचितः। खण्डानां सन्निवेशोऽपि यथेच्छं कृतः। तादृशा एव च श्लोकाः स्व स्व मुद्रित पुस्तके सन्निवेशिताः। यस्यालोचनेनाश्चर्यमिव भवति यत्केनचिद् विदुषा संशोधनकाले इदं सावधानं पठितमपि नवेति।

तथा हि सृष्टिखण्डं यदारम्भ एव समुचितं तदानन्दाश्रमस्थैः पञ्चमत्वेन निवेशितम्। तस्यैव च क्रियाखण्डमित्यपरं नामाऽपि क्लृप्तम्। उत्तरखण्डं पातालखण्डानन्तरं निवेशयितुमुचितमिति उत्तरखण्डस्यारम्भदर्शनात् स्फुटं प्रतीयते तत्रैवमुक्तम्—

श्रुतं पातालण्डं हि त्वया ख्यातं विदांवर।
अधुना श्रोतुमिच्छामो भगवद्भक्तिवर्धनम्।

परमत्र नेत्रे निमील्यैव मुद्रकैरुभयोर्मध्ये सृष्टिखण्डं निवेशितम्। श्रीवेंकटेश्वरमुद्रितेऽपि तृतीयत्वेन निवेशितं स्वर्गखण्डं सर्वादौ समुचितम्। तत्र पुराणोपक्रमदर्शनाद् रोमहर्षणस्य वक्तृत्वकथनत्त्च। रोमहर्षणोक्तमिदं सर्गखण्डं स्यात्, तत्स्वर्गेतिनाम विरचय्य श्लोकानदृष्ट्वैव तृतीयत्वेन निवेशितम्।

षट्खण्डस्थाने सप्तखण्डविभाग एभिरेव क्लृप्तः।

एवं मुद्रकैः पद्मपुराणस्य महती दुर्दशा कृता। द्विधा विभागोऽपि च तत्रत्यो नाशितः। साम्प्रदायिकतां परस्परं निन्दादिकमप्यत्र-पुराणे बहुतरं लभ्यते।

तच्च सर्वथाऽऽधुनिकैः प्रक्षिप्तमिति संभाव्यते। गौडानां दाक्षिणात्यानाञ्च पाठभेदः क्रमभेदश्चाप्यत्र बहुलं दृश्यते। तत् प्राचीनतमानि पुस्तकान्यन्विष्य पुराणस्यास्य समुद्धारोऽत्यन्तमावश्यक इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वायुशिवपुराणयोर्विचारः

एवं चतुर्थपुराणस्य क्वचिद् वायुपुराणेति नाम्ना क्वचिच्च शिवपुराणेति नाम्ना व्यवहारोऽन्येषु पुराणेषु दृश्यते। तत्राप्ययमेव हेतुः संभवति यदेकं रोमहर्षणोक्तमपरञ्चोग्रश्रवसो भवेत्। अस्य च वायुप्रोक्तत्वाद् वायुपुराणत्वं शिवमाहात्म्यवर्णनाच्च शिवपुराणत्वमित्युभयमप्युपपद्यते। तत्र व्यवहारसाङ्कर्यं निवृत्तये एकस्य वायुपुराणनाम्ना प्रसिद्धिरपरस्य च शिवपुराणनाम्ना प्रसिद्धिर्जाता। तयोश्च क्वचित्पुराणे कस्यचिदपरत्र च द्वितीयस्योल्लेख इति पुराणेषु नामभेदो जातः। यद्यपीदानीं मुद्रितयोर्वायुशिवपुराणयोरुभयत्र रोमर्षणोक्तत्वं पठ्येते। तथापीदानीं मुद्रितं वायुपुराणं न वायुपुराणम् —अपि तु ब्रह्माण्ड- भ्रान्त्या वायुपुराणनाम्ना मुद्रकैर्मुद्रितम् इति श्रीज्वालाप्रसादमिश्रेण स्यीयेऽष्टादशपुराणदर्पणे सुविविच्च निर्णीतम्।

नारदपुराणमत्स्यपुराणयोर्यद् वायुपुराणक्षलणं पठ्यते तस्येदानीं मुद्रिते वायुपुराणे समन्वयो न लभ्यते।

यत्तु ब्रह्माण्डपुराणक्षलणं तत्र पठ्यते तस्य पूर्णः समन्वयोऽत्र मुद्रिते वायुपुराणे दृश्यते। तथा हि ब्रह्माण्डपुराणस्य चत्वारः पादाः प्रक्रियाऽनुषङ्गोपोद्घातोपसंहाराख्या नारदपुराणे निर्दिष्टाः।

अत्रापि च मुद्रिते वायुपुराणे चतुर्थाध्याये

प्रक्रिया प्रथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः।
उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ॥१२॥

इति त एव चत्वारः पादाः किञ्चित् क्रमभेदेन निर्दिष्टाः।

षष्ठाध्यायस्यान्ते च प्रक्रियापाद इत्यपि मुद्रितम्।
विषयसन्निवेशोऽपि ब्रह्माण्डपुराणस्य यथा नारदपुराणे संगृहीतस्तथैव प्रायेणात्र प्राप्यते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यच्च ब्रह्माण्डपुराणनाम्ना श्रीवेंकटेश्वरमुद्रणालये मुद्रितम् तस्य वायुपुराणस्य चानुक्रमणिवाध्यायो द्वितीयाध्यायश्च किञ्चित्पाठभेदेन सर्वथा संवदति । अग्रेऽपि च बहुषु स्थलेषु द्वयोः संवादो दृश्यते । यच्च नारद-पुराणे गयासुरहननम्, नर्मदामाहात्म्यम्, माघादिमासानां माहात्म्यं च वायुपुराणान्तर्गतत्वेनोक्तम्, तदिदं मुद्रिते वायुपुराणे न दृश्यते । चतुर्विंश-तिसाहस्रञ्च वायुपुराणप्रमाणं नारदीये उक्तम्, तावत्प्रमाणमपि मुद्रि-तस्य न दृश्यते ।

ब्रह्माण्डपुराणस्य परिमाणं द्वादशसाहस्रपरिमितं तत्रोक्तम्, तदेव प्रायेण मुद्रितेन वायुपुराणेन संवदति ।

मत्स्यपुराणे च– वायुपुराणस्य श्वेतकल्पप्रसङ्गित्वमुक्तम्—

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
यत्र तद् वायवीयं स्यात्-रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।

अत्र मुद्रिते वायुपुराणे श्वेतकल्पस्य नाम कुत्रापि न दृश्यते । अध्या-यान्तेषु च वायुपुराणनामापि न दृश्यते– केवलं "श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते" इत्येव दृश्यते । ब्रह्माण्डपुराणस्यापि च प्राभञ्जनोक्तत्वं नारदपुराणे स्थापितम् । तस्माद् ब्रह्माण्डपुराणपुस्तकमेव कलिकातास्थ एशियाटिक-सोसाईटीपुस्तकसम्पादकैर्लब्धम्— तत्र च "वायुप्रोक्ते" इति दृष्ट्वा तेषां वायुपुराणत्वभ्रान्तिर्जाता, अन्यच्च समन्वयादिकं पुराणप्रोक्तमनुक्रमणि-कादिकञ्च तैः किमपि नालोचितम्, किन्तु वायुपुराणनाम्ना तत्प्रका-शितम् ।

श्रीवेंकटेश्वरयन्त्रालयाध्यक्षैश्च तत्तादृशमेव स्वीयेऽपि यंत्रालये वायुपुराणनाम्ना मुद्रितम् । सोसाईटीस्थपुस्तकसम्पादकैः गयामाहा-त्म्यमपि स्वातन्त्र्येणनिवेशितम् । परन्तस्य पुराणेन योगो नास्ति । वायु-पुराणे प्रथमखण्डे एव गयासुरहननवृत्तं नारदीये प्रोच्यते, नत्वन्ते । श्री

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वेंकटेश्वरयन्त्रालये यद् ब्रह्माण्डपुराणं मुद्रितम्– तस्य वायुपुराणेन बहुतरस्संवादोऽपि तत्रत्यैः पण्डितैर्नालोचितः ।

इत्थमेव पुराणानां मुद्रकैरत्यर्थं दुर्दशा कृता । तदिदं सर्वं पर्यालोच्य सुस्पष्टमिदं वक्तुं शक्यते— यद् वायुपुराणपुस्तकन्नाद्यावधि प्राकाश्यं गतम् । यत्तु केचित्– शिवपुराणान्तर्गतां वायुसंहितामेववायुपुराणत्वेनाकलयन्ति .तदपि नोपपद्यते, तस्याः वायुसंहितायाः केवलं चतुःसाहस्रीपरिमितत्वात्, वायुपुराणस्य शिवपुराणवच्चतुर्विंशतिसहस्रपरिमितत्वस्य नारदीयादिषूक्तत्वात् । तस्माद् वायुपुराणमुग्रश्रवसा श्रावितं-क्वचित् स्यात्, तदुपलम्भे चात्र निश्चयः कर्त्तुं न शक्येत । इदानीन्तु संभावनामात्रमिदम् यद् वायुपुराणशिवपुराणयोरपि वक्तृभेदादेव भेद इति ।

अथ प्रसङ्गादन्यत्राऽपि यत् पुराणद्वैविध्यं प्राप्यते तदपि सङ्क्षेपेण विवेचयामः ।

विष्णुपुराणं विष्णुधर्मोत्तरञ्चेति द्विधा-तृतीयस्य पुराणस्य प्रसिद्धिः । तत्र विष्णुपुराणलक्षणं मत्स्यपुराणे उक्तम्—

वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।
यत्प्राह धर्मानखिलांस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः ।।
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ।
(मत्स्य पुराण)

अयञ्च– पराशरमैत्रेयसंवादः विष्णुपुराणेति नाम्ना-प्रसिद्धे षडंशात्मके पुराणे लभ्यते । विष्णुधर्मोत्तरे तु उपक्रम एव मार्कण्डेयवज्रयोः संवादो लभ्यते । तस्मान् मत्स्यपुराणमतेन विष्णुधर्मोत्तरं पृथगेव प्रतीयते ।

नारदपुराणे तु षडंशात्मकविष्णुपुराणं प्रथमो भागः, विष्णुधर्मोत्तरन्तु तस्यैवोत्तरांश इत्युभयसम्मिलितमेकमेव पुराणमुक्तम् । उभयत्रापि विष्णुपुराणस्य त्रयोविंशतिसहस्रपरिमिता सङ्ख्योक्ता ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

किन्तु विष्णुपुराणेति नाम्ना प्रसिद्धं षडंशात्मकं पुराणं प्रायेण नवसहस्रपरिमितम्— इत्युभयोः सम्मिलितयोरपि सङ्ख्या षोडशसाहस्रीं नातिशेते।

तस्मादुभे अपि इमे पुराणे पूर्णतया न प्राप्ते, न चोभयत्रापि सूत-शौनक संवाद उपलभ्यते। तस्मादस्मिन् विषये— पूर्णोपलब्धिमन्तरेण नात्र किमपि वक्तुं शक्यते।

नारदपुराणरीत्या विष्णुधर्मोत्तरनामदर्शनेन— चोभयोरेकतममेवा-नुमीयते – परमुभयत्राऽपि सृष्ट्यादिकं पृथक् पृथक् निरूप्यते—इत्यत्रापि वक्तृभेदात् पूर्ववदेव भेदो भवेदित्यपि संभाव्यते।

अन्वेषणेनैव पूर्णपुस्तकप्राप्तावेव निश्चयः स्यात्। आचार्यप्रवरैः श्रीवल्लभाचार्यैस्तु स्वीये तत्त्वदीपनिबन्धे नेदं विष्णुपुराणम्, किन्तु पारा-शरीसंहितेयं भिन्नैव, श्रीभागवतस्यैवेयं शेषभूता, विष्णुपुराणन्तु अद्य-अद्यत्वे न प्राप्यत एवेति निरूपितम्। श्रीशङ्कराचार्याः, श्रीरामानुजा-चार्याश्च अस्मादेव स्वीये भाष्ये पद्यान्युद्धरन्तीति अन्ते पुराणदेश एवायं विषयः एवं नारदपुराणमिति नाम्ना षष्ठस्यापि पुराणस्य ग्रन्थद्वयं दृश्यते।

किन्तु कालिकातास्थ एशियाटिकसोसाइटीसंस्थायां यद् वृहन्ना-रदीयं मुद्रितं तत्तु श्रीवेंकटेश्वरमुद्रणालय मुद्रितस्य नारदपुराणस्य एक-देशभूतमेव।

किञ्चित् पाठभेदं किञ्चिन्न्यूनाधिक्यञ्चापहाय सर्वमपि कलिकाता-मुद्रितं बृहन्नारदीयं मुम्बई मुद्रित-नारदपुराणेऽन्तर्गतं दृश्यते।

तस्मादत्र वृथैव नामभेद इति प्रतीयते। वृहन्नारदीयमित्युपपुरा-णेष्वपि गणितम्, परमिदं कलिकाता— मुद्रितन्तु नारदपुराणाद्पृथग्भूत-मिति नोपपुराणमपि वक्तुं शक्यते। तस्मादत्राप्यस्ति पुस्तकान्वेषणस्या-वश्यकता।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मपुराणस्यापि कश्चिद् भेदो दृश्यते। मत्स्यपुराणे तस्य सङ्ख्या-त्रिदशसहस्रपरिमितोक्ता। नारदपुराणे च दशसहस्रपरिमिता। इह च विस्तृतं गौतमीमाहात्म्यमन्तर्गतं मुद्रितम्। परं नारदपुराणे ब्रह्म-पुराणस्यानुमणिकायां गौतमीमाहात्म्यस्य नामापि न दृश्यते।

ततश्च गौतमीमाहात्म्यरहितस्य दशसहस्रमितं-परिमाणं स्यात्-तत्सहितस्य च त्रयोदशसहस्रमिति संभाव्यते। भवेद्वा ब्रह्मपुराणमपि द्विविधम्।

आदिब्रह्मपुराणनाम्ना एकमितरत् पुराणमुपलभ्यतेऽपि। पाठ-साम्यमपि तस्यास्य बहुत्र दृश्यते।

तदेतदप्यन्वेषणेनैव निश्चेयं स्यात्।

एवं पुराणानां संशोधनस्यावश्यकता प्रसङ्गात् प्रदर्शिता।

उपलभ्यमानानि पुराणानि रोमहर्षणोग्रश्रवोभ्यां सम्पादितानि सङ्कलितानि चेति निर्णीतम्।

तत्र ब्रह्मपुराणवायुपुराणदेवीभागवतलिङ्गपुराणस्कन्दपुराण—कूर्मपुराणेषु रोमहर्षणो वक्ता स्पष्टं नाम्ना सूतपदेन वा निर्दिष्टः।

श्रीभागवतनारदपुराणब्रह्मवैवर्तेति त्रिषु पुराणेषु चौग्रश्रवा स्वनाम्ना रौमहर्षणिनाम्ना वा वक्तृत्वेन निर्दिष्टः।

पद्मपुराणे तु द्वयोरपि वक्तृत्वं पृथक् खण्डेषु निर्दिष्टमिति प्राक् प्रादर्शयाम।

अग्निपुराणमत्स्यपुराणगरुडपुराणेति त्रिषु पुराणेषु केवलं सूतेति-नामैव दृश्यते। तत्र रोमहर्षणो वा वक्ता स्यात्, उग्रश्रवा वेति न निश्चयेन शक्यते वक्तुम्। संदर्भदर्शनात्-सौतिरित्यनुक्त्वा सूतेति कथानाच्च रोमहर्षण एव वक्तेति संभाव्यते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सूतशौनकसंवादरहितानि पुराणानि

विष्णुपुराणविष्णुधर्मोत्तरपुराणमार्कण्डेयपुराणम वागनपुराणेत्यादि षट्सु पुराणेषु तु सूतशौनकसंवाद एव न दृश्यते। यद्यपि विष्णुपुराणवाराहपुराणयोः केषुचित्पुस्तकेषु "सूतउवाच" इति लिखितं परं तत्पुराणान्तराभ्यासवशाल्लेखकैर्मुद्रकैर्वा भ्रान्त्या लिखितमिति प्रतीयते। शौनकेन सूतस्य समागमः शौनकस्य प्रश्नश्च यत्र वर्ण्यते तत्रैव सूतशौनकसंवादः शक्यतेऽभ्युपगन्तुम्। स एष प्रसङ्ग एषु षट्सु नास्ति। अन्येषामेव संवाद आरम्भादेव प्रचलितः, तत्र को हेतुरिति जिज्ञासायामिमे पक्षा उत्तिष्ठन्ते।

(१) इमान्युपपुराणानि स्युः, यतो ह्युपपुराणेषु प्रायेण सूतशौनकसंवादो न दृश्यते।

(२) प्रतिकलियुगं क्रमेण ह्यष्टाविंशतिर्व्यासाः ख्यातपूर्वास्तत्र पूर्वकलियुगजातानां केषाञ्चित् व्यासानां कृतिरूपाण्येतान्यस्मिन्नपि-युगेऽनुवृत्तानि स्युः।

(३) सूतशौनकसंवादांशोऽत्र विलुप्तः स्यात्। एषु विचार्यमाणेषु प्रथमः पक्षस्तावन्न संभवति, यतो हि सर्वेष्वपि पुराणेष्वष्टादशपुराणान्तर्गतत्वेनैवैतानि परिगणितानि, न तूपपुराणेषु। तदा सर्वेष्वपि पुराणेषु परिगणितानामुपपुराणत्वं कथन्नाम संभाव्यताम्।

द्वितीयोऽपि पक्षो विचार्यमाणो नावकल्पते। यतो विष्णुपुराणादिषु कृष्णद्वैपायनस्य शिष्यादीनां रोमहर्षणादीनामपि च वर्णनं स्फुटं दृश्यते। यदि हि कृष्णद्वैपायनात् पूर्वेषु कलियुगेषु संभूतान्येतानि स्युः-तर्हि कृष्णद्वैपायनस्य शिष्यादीनां वर्णनं कथं तत्र प्राप्यते।

ततश्च तृतीय एव पक्षः स्वीकर्तुमापतति। यदत्रासीत् सूतशौनकसंवादः, परं पुराणानामेषां सोंऽशो विलुप्त इत्यद्यत्वे नास्माभिर्दृश्यते। तत्र चेयमप्युपपत्तिर्यत्पुराणानामेषां पुराणान्तरेषु यावत् परिमाणं निर्दिष्टं तावदत्र नोपलभ्यते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विष्णुपुराणस्य हि त्रयोविंशतिसहस्रपरिमितत्वं पुराणान्तरेषूक्तम्, इदानीन्तु विष्णुधर्मोत्तरेण संयोज्यापि प्रायेण षोडशसहस्रपरिमितत्वमेव जायते – इति तत्रांशविलोपः स्पष्टः।

एवं मार्कण्डेयपुराणमपि मत्स्यपुराणादौ नवसाहस्रमुक्तम्। परमद्यत्वे सप्तसांहस्र्या अपि न्यूनं लभ्यते। तस्मात्तत्राप्यस्त्यंशविलोपः।

भविष्यपुराणन्तु अनेकविधमद्यत्वे विभिन्नेषु पुस्तकभाण्डारेषूपलभ्यते। तत्र कस्मिंश्चित्पुस्तके सूतशौनकसंवादक्रमो दृश्यत इत्यष्टादशपुराणदर्पणे श्रीज्वालाप्रसादमिश्रैर्निर्दिष्टम्।

बहुषु पुस्तकेषु यन्न प्राप्यते तदेतदंशविलोपादेव। सङ्ख्या चापि पूर्णा न संघटते।

एवं वामनपुराणस्य दशसहस्रमितत्वं मत्स्यपुराणादिषूक्तम्। तदप्यद्यत्वेऽतिस्वल्पं प्राप्यते। तस्मात्तत्राप्यंशविलोपः स्पष्ट एव। वाराहपुराणस्यापि सङ्ख्या मात्स्ये नारदीये च चतुर्विंशतिसहस्रमितोक्ता, किन्त्वद्यत्वे मुद्रितं पुराणमेकादशसहस्रपरिमाणादपि न्यूनम्। तत्रापि विलोपे न संशयः।

उपलभ्यमानपुराणकालः

अथास्य पुराणानां सम्पादनस्य सङ्कलनस्य वा कः काल इत्यपि मनाग्-विचार्यते। तत्र श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धस्योत्तरार्धेऽष्टसप्ततितमेऽध्याये एतत् पठ्यते– यन्महाभारतयुद्धोपक्रमं श्रुत्वा स्वस्य तटस्थतां ख्यापयन् श्रीबलभद्रः, तीर्थभ्रमणं समारब्धवान्, तत् प्रसंङ्गेन च नैमिषारण्यं गतो ब्राह्मणनामृषीणां मण्डले सिंहासनासीनं रोमहर्षणं सूतं दृष्ट्वा चुक्रोध. कुशेन च तं जघान। अथर्षिभिः "अनुचितं भवता कृतम्" अयं पुराणविद्यापारगो व्याসशिष्योऽभूत्, अस्माभिरपि च पुराणानि श्रोतुकामैर्ब्रह्मासनं दत्तम्। तस्मादस्माकं कार्यं महान् विघ्नो जातः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यद्यप्ययं नासीज्जात्या ब्राह्मणः, परमस्माभिर्ब्रह्मासनेऽध्यारोपित इति तस्य हननाद् भवता ब्रह्महत्या प्राप्ता।

सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासन परिग्रहः।
रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥२२॥

अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम्।
अध्यासीनञ्च तान् विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥

कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः।
धर्मपालांस्तथैवास्मान् वधमर्हति दुर्मतिः ॥२४॥

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च।
सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥२५॥

अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥२६॥

एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः।
वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः।

एतावदुक्त्वा भगवान् निवृत्तोऽसद्वधादपि।
भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत् प्रभुः।

हाहेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः।
ऊचुः सङ्कर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो।

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन।
आयुश्चात्मावलमं तावद् यावत्सत्रं समाप्यते।

अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा।
योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः।

तथैतद् ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन।
चरिष्यति भवांल्लोकसङ्ग्रहोऽनन्यचोदितः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीभगवानुवाच—

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ।
तस्मादस्य भवेद् वक्ता आयुरिन्द्रियसत्वान् ।
किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा वृतोऽहं करवाण्यथ ।
अजानतस्त्वपचितिं यथा संचिन्त्यतां बुधाः ।

एतेन महाभारतयुद्धकाले एव पुराणश्रावणं रोमहर्षणेनोपक्रान्तमिति लभ्यते । शौनकादीनाम् ऋषीणाञ्च सहस्रसंवत्सरात्मकं सत्रं तदात्वे प्रवृत्तमित्यपि पुराणेषूक्तम् ।

वर्षशब्दस्य दिनपरत्वम्

यत्र बहवो यजमाना युगपदेव महता संभारेण महान्तं यज्ञमारभन्ते, तत् सत्रमित्युच्यते– तच्च शतवार्शिकञ्च भवति । परमत्र वर्षपदं दिनवाचकमिति मीमांसायां निर्णीतम् । तानि सूत्राणि सार्थान्युदाहरिष्यामः । (मीमांसादर्शने षष्ठाध्यायस्य सप्तमे पादे)

सहस्रसंवत्सरं तदायुषामसंभवान्मनुष्येषु ॥३१॥

सहस्रसंवत्सरं सत्रं सहस्रायुषां देवगन्धर्वादीनामेवोद्देशेन प्रवृत्तंस्यान्न तु मनुष्योद्देशेन मनुष्याणां तावदायुषोऽभावेन तत्रासंभवादिति–तदर्थः ॥

अथैतन्निराकरोति—

अपि वा तदधिकारान्मनुष्यधर्मःस्यात् ॥३२॥

नहि देवगन्धर्वाद्युद्देशेन प्रवृत्तिरस्य समर्थयितुमुचिता ।

शास्त्रस्य मनुष्यानधिकृत्यैव प्रवृत्तत्वेन शास्त्रीयविधीनां मनुष्यधर्मत्वस्यैवोचितत्वात् ।

यतो मनुष्या एव कार्त्स्न्येन विधिं सम्पादयितुं शक्नुवन्तीति सूत्राशयः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अथ प्रकृत्या मनुष्याणां तावदायुष्ट्वाभावेऽपि रसायनादि सेवनादात्तदीर्घायुषां तत्राधिकारः सेत्स्यतीति पक्षं मनसि निधाय खण्डयति ।

नासामर्थ्यात् (३३) सम्बन्धादर्शनात् (३४) इति सूत्राभ्याम् । रसायनादीनि खल्वग्नेर्वर्धकानि, क्लीवत्वस्य नाशकानि, स्वरवर्ण प्रसादकानि मेधाजननानि च दृश्यन्ते, न त्वेतावदायुः समर्पकाणि । तथा च तावदायुर्वर्धने न तेषां सामर्थ्यमिति लभ्यते ।

अथ स्वरवर्णप्रसादादिदर्शनादेव दृष्टान्ताद् रसायनैस्तावदायुरपि एकत्र हेतुसाध्ययोः सम्बन्धदर्शनमन्तरा साध्यानुमितेरदृष्टत्वात् वृद्धिधिरप्यनुमास्थत इत्यपि न शक्यते वक्तुम् । तावद्दीर्घा युषा च रसायनानां सम्बन्धस्य क्वाप्यदृष्टपूर्वत्वात् ।

ननु च भो दृश्यन्त एव रसायनादीनि सेव्यमानानि शरीरस्थैर्यसम्पादकानि, तथा च निपुणतरं सेव्यमानानि तावत् स्थैर्यं सम्पादकानि अपि स्युर्यावता वर्षसहस्राणि जीवनं सिद्ध्येदिति सामान्यतो दृष्टेनानुमानेन तावदायुः सिद्धिरिति, एतदपि व्यामोहमात्रम्—अभ्यासेन खलु प्रक्रमणशक्तिं कियताऽपि कालेन समन्ते, न तु तदुत्तरमभ्यस्यन्तो योजनप्रक्रमणसमर्थ्यं कदापि ।

तथा च यद् वस्तुनोयावती मात्रा तज्जातीयप्रकृतिनियता सैवोपायैरपिप्राप्यते, न त्वलौकिकी शक्तिरुपायशतेनापीति संसिद्धम् ।

एवञ्चैवंविधेविषये नास्ति सामान्यतो दृष्टस्य प्रामाण्यमिति सूत्राशयो विवृतः शबरस्वामिना, तदन्तरमेतामनुपपत्तिं समाधातुं प्रवृत्तं मतान्तरमुपन्यस्यति भगवान् जैमिनिः—

यथैकः पुरुषस्तावत्कालिकं सत्रं न समापयितुम् ईष्टे, तर्हि कस्मिंश्चित् कुले समारब्धं सत्रं तद्वंशीया अन्ये पूरयिष्यन्तीति भगवान् कार्ष्णाजिनिरनुमन्यते ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अपि वा कृत्स्नसंयोगादेकस्यैव प्रयोगः स्यात् ॥ इति ॥

अयमाशयः—कर्मजन्यं किञ्चिदपूर्वपदवाच्यं वस्तु कर्तर्युत्पद्यते। तदेव च कालान्तरे स्वर्गादिफलविशेषसम्पादकं भवति। स चायमपूर्वस्तत्तत्प्रकरणस्थश्रुति प्रतिपादित यावत् कर्मकलापस्य वैगुण्यपरिहार पूर्वकमनुष्ठान एव, न तु न्यूनस्याधिकस्य विगुणस्य वा कर्मणोऽनुष्ठान इति मीमांसका अभिमन्यते।

तथा चैकप्रकरणप्रतिपादितस्य कर्मकलापस्य विभज्य तत्कुलीनानैकपुरुषैरनुष्ठाने सति क्वायमपूर्वं उत्पद्येत। क्व वा स्वर्गादिफलविशेषान् कल्पयेदिति।

न च कृतस्य कर्मणो वैफल्यमन्येनानुष्ठितस्य कर्मणोऽन्येन फलप्राप्तिर्वा शक्यतेऽग्युगन्तुं विचारशीलैः, तस्मादेष पक्षः साधीयान्।

एवं पूर्वपक्षं मतान्तरनिराकरणञ्च प्रतिपाद्य सिद्धान्तः सूत्र्यते—

विप्रतिषेधात्तु गुण्यतरः स्यादिति लाबुकायनः ॥३७॥

एवं तावत्परस्परश्रुतिविरोधः संप्रसक्तः।

तथा चात्र सहस्रसंवत्सरयागविधायिनी श्रुतिः——

पञ्चपञ्चाशतस्त्रिवृतः सम्वत्सराः, पञ्चपञ्चशतः पञ्चदशाः, पञ्चपञ्चादशाः सप्तदशाः, पञ्चपञ्चाशतश्चैकविंशाः विश्वसृजामयनं सहस्रसम्वत्सरम्।

इति समुपदर्शितसहस्रसम्वत्सरसत्रविधायिन्यां श्रुतौ पञ्चपञ्चाशच्छन्दस्य सम्वत्सरशब्दस्य वाऽन्यतरस्य गौणत्वमर्थात् प्रसिद्धेतरार्थाभिधायकत्वमेष्टव्यम्इति लाबुकायन आचार्यो मन्यते इति सूत्राशयः। अत्र च आचार्य ग्रहणं पूजार्थनात्मनः प्रतिषेधार्थम् इत्याह भगवाञ्छबरस्वामी। ततोऽन्यतरशब्दस्य गौणत्वापरपर्याये प्रसिद्धेतरार्थाभिधायकत्व इष्यमाणे कस्यैतदुक्तमित्याह "इत्युक्तं भवति सम्वत्सर शब्दो

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चपञ्चाशच्छैन्दस्य नियत विचालित्वात्" इति त्रावाय।

संख्यावाचकत्वादितरार्थंपरत्वं न युक्तिमत्, नियतसङ्ख्या वाचक शब्देषु लक्षणादिवृत्यन्तरस्याप्रसरात्।

संवत्सरशव्दस्तु न नियतपरिमाणवाची, सावनचान्द्रनाक्षत्र सौरादिभदेन विभिन्नपरिमाणेष्वपि सम्वत्सरशब्दस्य निष्प्रत्यूहं व्यवह्रियमाणत्वात्, यो वा मासः स सम्वत्सरः इत्यादिश्रुतिषु मास दिनादेरपि संवत्सरशब्देन श्रूयमाणत्वाच्च।

तथा च विचालिनोऽनियतार्थंकस्य संवत्सरशव्दस्यैवात्रा थर्न्तिरपरत्वं युक्तमिति। तत्कोऽसावत्र संवत्सरशब्दार्थं इति सूत्रयति।

सा प्रकृतिः स्यादधिकारात् ॥३६॥

एतत्सूत्रप्रकृतिमते गवामयने मासानां प्रकृतत्वान्भासेऽपि संवत्सर शब्दस्योक्तश्रुतौ श्रूयमाणत्वाच्चाऽत्रापि संवत्सर शब्देन मास एव गृह्यतामिति सूत्राशयः।

एवमिदं सूत्रं व्याख्यायोत्तरसूत्रमवतारयति भाष्यकारः नैषोऽपि हि पक्षो युज्यते, अत्राऽपि स एव दोषः, न तावज्जीवनमस्ति यावतैतदवकल्प्येत – दाराग्निकालसोमपूर्वत्वापेक्षयेति। तत्रैतस्मिंश्च क्रियमाणे परिसमाप्त एवायुः पर्युपयुक्तं स्यात्तथा चाध्ययनादेवादृष्टं कल्प्यते।

एवं तर्हि द्वादशाह प्रकृतिरिति पञ्चपञ्चाशतो द्वादशाहा भविष्यन्तीति तथा च दृश्यते—

द्वादश वै रात्रयः संवत्सरस्य प्रतिभा इति तत्र स दोषो न भविष्यति—नैवम्, तत्र संवत्सरशब्दस्य साक्षात् प्रतिमा शब्देन संयोगात्। अपि च पञ्चपञ्चाशतस्त्रिवृत इत्युक्तम्। त्रिवृच्छन्दश्च द्वादशाहे दिवसे दृष्ठः—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

न द्वादशरात्रे तस्मान्मैवमिति एतदुत्तरं परमसिद्धन्तिमूतं भगवतो जैमिनेः सूत्रम् -

अहानि वाभिसङ्ख्यत्वात् ॥४०॥ इति

एतच्च व्याचष्टे भगवाञ्छबरस्वामी ।

वा शब्दः पक्षं व्यावर्तयति—न चैतदस्ति पञ्चपञ्चाशतोद्वादशरात्राः, इति । अहान्येव त्रिवृच्छब्देनाख्यायन्ते । तस्मादहस्सु संवत्सरशब्द इति । अथवाशब्दः पक्षान्तरं व्यावर्तयति न पञ्चपञ्चाशतो मासाः, किं तर्हि दिवसाः, द्वादशाहे त्रिवृदहः प्रकृतं तत्र लंवत्सरशब्दोदृश्यते ।

आदित्यो वा सर्वकृतवः, स यदैवोदेत्यथ वसन्तो यदा सङ्गवोथ ग्रीष्मो यदा मध्यन्दिनो थ वर्षा यदा पराह्णोऽथ शरत् यदास्तमेत्यथ हेमन्तशिशिराविति सर्वानतूंनहनि संपादयति, सर्वे च ऋतवः संवत्सरः, तस्मादहः संवत्सरशब्देनोच्यते इति । एतच्च भाष्यं प्रकृतानुपयोगित्वान्न साकल्येनेह व्याख्यायते ।

इतीत्थं सहस्रसंवत्सरसत्र विधायिन्यां श्रुतौ संवत्सर शब्दस्य विचालित्वमाश्रित्य श्रुत्यन्तरविरोधः समाहितो भगवता जैमिनिना ।

कात्यायनश्रौतसूत्रेऽपि सहस्रसंवत्सर सत्रे संवत्सरशब्दस्य दिनपरत्वमेवोररीकृतम् ।

इत्थञ्च वर्षक्रमादपि न्यूनः समयः सहस्रसंवत्सर सत्रेऽपेक्ष्यते । महाभारतयुद्धकाले च यदि शौनकादिभिः सत्रमारब्धम् तर्हि युधिष्ठिरराज्यारनन्तरं परीक्षितोऽपि राज्यसमाप्तिकाले शुकाचाचार्येण श्री भागवतं परीक्षिते श्रावितम् । तदपि च शौनकादीनां सत्रे उग्रश्रवसः श्रावितमभूदनन्तरञ्चजनमेजयराज्ये जनमेजयाय वैशम्पायनेन यन्महाभारतं श्रावितम्, तदप्युग्रश्रवसी शौनकादिसत्रे श्रावितमितीयन्तं कालं कथं सत्र प्रवृत्तिरिति जायते शङ्का—परमेकवारं सत्रं समाप्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुनः क्रमेण बहूनि सत्राणि शौनकादिभिरनुष्ठितानि स्युः दीर्घञ्च, जीवनं शौनकस्य भवेदिति संभाव्यते ।

तेन जनमेजयराज्यपर्यन्तं क्रमेण सत्राणां प्रवृत्तिरनुमीयते, तत्रैव च महाभारतस्य सर्वेषाञ्च पुराणानां श्रावणं समजायेति स्वीकार्यं स्यात् ।

अथ वायुपुराणनाम्ना मुद्रिते ब्रह्माण्डरूपेणास्माभिः स्थापितपूर्वे च पुराणे पद्यानीमानि दृश्यन्ते ।

असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि
प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे ॥ वायु०प्र०अ०१० ॥
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रन्तु ईजिरे।
नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोद्यसः ।
दीक्षितास्ते यथा शास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः ॥१३॥

तेनासीमकृष्णराज्यकाले कुरुक्षेत्रे शौनकादीनां सत्रे रोमहर्षणेन पुराणमिदं श्रावितामिति फलति ।

असीमकृष्णश्चायं पुराणेषु भविष्यवंशे युधिष्ठिरानन्तरं पञ्चमः षष्ठो वोल्लिखितः । तर्हि तावत्कालपर्यन्तं कथं शौनकादीनां स्थितिः, कथं वा महाभारतयुद्धकाल एव बलभद्रेण निपातितस्य रोमहर्षणस्यासीमकृष्णराज्यकाले पुराणश्रावणमिति महती विश्रृङ्खलेयमापतति ।

तत्रेदमेव वक्तुं शक्यते—यच्छौनकवंशजाः, तत्पुत्रपौत्राद्या अपि शौनकपदेनैव व्यपदिष्टाः स्युर्यथाऽन्यत्रापि ऋषीणां नामसु बहुधा तदेव नामानुवृत्तं दृश्यत इति वंशप्रकरणे निरूपयिष्यामः ।

तथैव रोमहर्षणवंशजा अपि पुराणप्रवीणा रोमहर्षणनाम्नैव ख्याताः स्युस्तत्र केनचिद् रोमहर्षणवंशजेन कुरुक्षेत्रे सत्रं प्रकुर्वते शौनकवंशजाय कस्मैचित् पुराणमिदं श्रावितं भवेत् । नान्या कापि गतिः । शौनकस्यातिदीर्घजीवनस्वीकारेऽपि महाभारतकाल एव हतस्य रोमहर्ष-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

णस्यासीमकृष्णराज्ये पुराणश्रावणानुपपत्तेस्तदवस्थत्वात्। यदि ह्यसीमकृष्णकाले रोमहर्षणस्य स्थितिरूपगम्येत–तर्हि श्री भागवतोक्तस्य बलभद्रकर्तृकरोमहर्षणहननस्याप्रामाण्यं प्रसज्येत।

यदि तु बलभद्रकर्तृको रोमहर्षणवधः स्वीक्रियते तदाऽसीमकृष्णराज्ये स्थितिर्नाभ्युपगन्तुं शक्येत्–इत्युभयतः पाशा रज्जुः।

तस्मादुक्तविधा कल्पनैवात्र गतिः। भवतु नाम यथाकथञ्चित्, अथाप्युपलभ्यमानानामपि पुराणानामेवंविधः संघटनकालो वर्षाणां चतुः साहस्रीतो न्यूनः कथमपि न संभवतीति। तथा हि रोमहर्षणोग्रश्रवोभ्यामेतानि पुराणानि पर्षदि समर्पितानि,–पर्षदा च पुनस्संपाद्य न्यूनाधिकतामपि च तत्र यथोपयोगं कृत्वा प्रकाशितानीमानि।

अतएव सर्वेषु पुराणेषु सर्वेषां नामानि परिमाणादिकमेकस्मिन्नपरस्य विषयाणामप्युल्लेखः, मात्स्ये नारदीये च सर्वेषां पुराणानां विषयतालिकावर्णनमित्यादि सर्वमुपपद्यते। अन्यथा पुराणानां पूर्वापरभावेऽभ्युपगम्यमाने नैतत् सर्वं समञ्जसं स्यात्–इत्याद्याधुनिकैतिहासिकमते प्रदर्शितपूर्वेऽपि, ताः पर्षदोऽपि तत्समानकालिक्य एव संभाव्यन्त इति–स एव कालः किञ्चिदुत्तर एव वा काल एषां सम्पादनस्यानुमीयत इति सर्वमेतदुक्तपूर्वं पर्यालोच्यतां विद्वद्भिः।

पुराणप्राचीनता

इदं चासांशयं शक्यते वक्तुम्, यत् संस्कृतवाङ्मये यावान् ग्रन्थराशिरद्यत्वे उपलभ्यते, तत्र सर्वत्रैव प्रायेण पुराणपदोल्लेखः, पौराणिकविषयाणामुल्लेखो वा लभ्यत एव। तत्र मन्त्रब्राह्मणोपनिषदात्मके वेदे, अनादिभूतायाः पुराणविद्याया उल्लेखः प्रथम एव प्रकरणे स्पष्टं प्रदर्शितो व्याख्यातश्च। अश्वमेधप्रकरणे इतिहासपुराणव्याख्यानमपि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

शतपथब्राह्मणे, तत् प्रतिपदकश्रौतसूत्रेष्वपि च प्रदर्शितमित्यपि तत्रैव

स्पष्टीकृतम्। अथ वैदिकवाङ्मयादर्वाचीने लौकिकसंस्कृतवाङ्मयेऽपि पुराणचर्चा दिङ्मात्रेण प्रदर्श्यते।

अत्र सर्वत्र साम्प्रतमुपलभ्यमानानां पुराणानामेवोल्लेखः संभाव्यते। भगवतो व्यासादनन्तरं वेदरूपायाः पुराणसंहितायाः प्राप्तेरसंभाव्यमानत्वादिति। भवेयुः कानिचिदन्यानि पुराणपुस्तकानि पूर्वम् यानि नाद्यत्वे लभ्यन्त इति कल्पनापेक्षया "दृष्टं वरमदृष्टतः" इति न्यायेन उपलभ्यमानानामेव तत्र तत्र ग्रहणस्यौचित्यात्। तत्रायुर्वेदधनुर्वेदगांधर्ववेदस्थापत्यवेदाख्याश्चत्वार उपवेदा मन्यन्ते। तेष्वायुर्वेदस्यैवातिप्राचीना ग्रन्था दृष्टिपथमायान्ति। आयुर्वेदस्य च प्रधानभूते ग्रन्थे चरकसंहितायां चिकित्सास्थानेऽष्टमेध्याये—राजयक्ष्मप्रकरणे—

दिवौकसां कथयतामृषिभिर्वा श्रुता कथा।
कामव्यसनसंयुक्ता पौराणी शशिनं प्रति॥ १॥
रोहिण्यामतिसक्तस्य शरीरं नानुरक्षतः।
आजगामाल्पतामिन्दोर्देहः स्नेहपरिक्षयात्॥ २॥

दुहितृणामसंभोगाच्छेषाणां च प्रजापतेः।
क्रोधो निःश्वासरूपेण मूर्तिमान् निःसृतो मुखात्॥ ३॥
प्रजापतेर्हि दुहितॄरष्टाविंशतिमंशुमान्।
भार्यार्थं प्रतिजग्राह न च सर्वास्ववर्तत॥ ४॥

गुरुणा तमवध्यासं भार्यास्वसमवर्तिनम्।
रजोऽन्धमबलं दी ं यक्ष्मा शशिनमाविशत्॥ ५॥ इत्यादि—

सेयं चन्द्रस्य शापप्राप्तिकथा नैकेषु पुराणेषू एवमेवोपलभ्यते। अत्र पौराणीतिपदमपि स्पष्टं चरके।

तृतीयाध्यायेऽपि—
ऋचः पाशुपतेर्याश्च शैव्य आहुतयश्च याः।
यज्ञसिद्धपदास्ताभिर्हीनां नैव स इष्टवान्॥ १८॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अथोत्तीर्णव्रतो देवो बुद्‌वा दक्षव्यतिक्रमम् ।
रुद्रो रौद्रं पुरस्कृत्य भावमाविददात्मनः (॥१६॥)

स्पृष्ट्‌वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान् प्रभुः ।
बाणं क्रोधाग्निसंतप्तमसृजत् सत्रनाशनम् [।२०१।]इत्यादि-

दक्षयज्ञध्वन्सकथापि समुपलभ्यते। इयं चरकसंहिता च भारतीयैः शिष्टैरतिपुरातनी गण्यते। ऐतिहासिका विद्वान्सश्चापि ख्रिष्टाब्दात् द्वित्रशताब्दी पूर्वंभवामेनां मन्यन्ते। यतोहीयं चरकेण प्रतिसंस्कृता, चरक इति व्याकरणमहाभाष्यकर्तुः पतञ्जलेरेव नामेति प्रायेण सर्वसम्मतम्। व्याकरणमहाभाष्यकारस्य पतञ्जलेश्च समयः पुष्यमित्रराज्यकाले यीशुख्रिष्टात् पूर्वं द्वितीयायां शताब्द्यामित्याधुनिकैरप्यैतिहासिकैर्निर्णीतम्। तेन सहस्रद्वयमितेभ्यो वर्षेभ्यः प्रागेव साम्प्रतिकानां पुराणानां सत्ता स्पष्टं प्रतीयते। इतोऽपि प्राक्तन्यां सुश्रुतसंहितायामपि पौराणिकविषया इमे लभ्यन्ते। सुश्रुतसंहितायाः सूत्रस्थाने प्रथमाध्याये-

रुद्रेण यज्ञस्य शिरश्छिन्नम् – ततो देवा अश्विनावभिगम्योचुः भगवन्तौ नः श्रेष्ठतमौ युवां भविष्यथः, भवद्‌भ्यां यज्ञस्य शिरः सन्धातव्यमिति। तावूचतुरेवमस्त्विति। अथ तयोरर्थे देवा इन्द्रं यज्ञभागेनासादयन्, ताभ्यां यज्ञस्य शिरः संहितमिति श्रूयते (गथाङ्क-१६–१४)। विषयोऽयं पुराणोक्तां दक्षयज्ञविध्वन्सकथामेवाधारीकृत्य निबद्ध इति न कस्यचित् पुराणविदः संशय उदियात्। कथायां किञ्चिद् वैलक्षण्यमपि आक्षिप्येत् चेत् एवं विधासु वैज्ञानिकीषु कथासु परस्परं किञ्चिद् वैलक्षण्यं तु पुराणेष्वपि परस्परं भवत्येव। मूलरूपेण कथा एकैवेति पुराणेभ्य एवेयं गृहीता। टीकाकृता डल्हणेनापि श्रूयते इति पदं व्याचक्षाणेन पुराणादिष्वपि श्रूयते इति व्याख्यातम्, एवं सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रे-

राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः।
तस्मात्तं राजयक्ष्मेति केचिदाहुर्मनीषिणः॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

इत्यादिना पुराणोक्ता चन्द्रस्य राजयक्ष्मप्राप्तिकथाऽनूदिता या चरकेऽपि दृष्टा। ज्वरप्रकरणेऽपि च—

"ज्वरमादौ प्रवक्ष्यामि स रोगानीकराट् स्मृतः।

रुद्रकोपाग्निसंभूतः" इत्यादिना वाणासुरयुद्धे रुद्रेण ज्वर उत्पादित इति भागवतोक्तकथाऽनूद्यते। एवमायुर्वेदस्य प्राचीनतमयोर्ग्रन्थयोः पुराणपरिचयः स्पष्टः। धनुर्वेदस्य ये केचिद् ग्रन्था उपलभ्यन्ते ते तु पुराणान्येवाधारीकृत्य निर्मिताः। संगीतवेदः प्राचीनो नोपलभ्यत एव स्थापत्यवेदस्यापि पुराणेष्वंशा दृश्यन्ते। वेदाङ्गानि षट्। तत्र शिक्षास्तु अतिसंक्षिप्ताः। कल्पेऽश्वमेधप्रकरणे श्रौतसूत्रेषु यत् पुराणश्रवण विधानं तत् पुराणवेदविषयकमिति प्रागुक्तमेव। गृह्यसूत्रेष्वपि तु अथ स्वाध्यायमधीते ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीतिहासः पुराणानि-इत्यमृताहुतिभिः। [आश्व० ३।३।१।]। इतिहासपुराणान्यमृतस्यकृत्याः [।४।६।], आयुष्मतां कथां कथयन्तो माङ्गल्यादीनीतिहासपुराणानि [।४।३।], इत्यादिना सर्वतः प्राचीने आश्वलायनगृह्यसूत्रे पुराणवाचनकीर्तनश्रवणादिविधानमुपलभ्यन्ते। ताः साम्प्रतिकपुराणविषयिण्य एव संभाव्यन्ते। अस्य समयमाधुनिका ऐतिहासिका अपि यीशुख्रिष्टतः पूर्वां चतुर्थीं पञ्चमीं वा शताब्दीं मन्वते इति ततः प्रागपि पुराणसत्ता सुस्पष्टं सिद्धा।

व्याकरणे च यीशुख्रिष्टतः प्राग् द्वितीयशताब्दीभवेन ततोऽपि पूर्वेण वा महाभाष्यकृता पतञ्जलिना चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना, एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यो नवधाऽथर्वणो वेदः वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावान् शब्दस्य प्रयोगविषयः इति स्पष्टमेव शब्दप्रयोगविषयेषु इतिहासः पुराणञ्च परिगणिते। तत्र इमानि साम्प्रतिकान्येव पुराणानि तस्य परिचितानीति संभाव्यते। एतावच्छाखाविभागोत्तरमपि पुराणवेदस्योपलब्धेरसंभाव्यत्वात्। व्याकरणसूत्रकृतो भगवतः पाणिनेश्च

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

समय इतोऽब्दानां सहस्रत्रितयात् पूर्वमिति पाणिनीयपरिचये दृढाभियुक्तिभिः साधितमस्माभिः । यीशुख्रिष्टतः प्राक् सप्तमी पञ्चमी वा शताब्दी तस्य समय इति तु आधुनिका ऐतिहासिका अपि मन्वते । तस्यापि च 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्'', ''गवियुधिभ्यां स्थिरः'', ''ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च,'' ''एजेः खश्'' इत्यादि युधिष्ठिरजनमेजयादिपौराणिकनाम सिध्यर्थं सूत्रयतः पुराणपरिचयः स्पष्टमेव प्रतीयते । ''महान्व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालमारभारतहैलिहिलरौइवप्रवृद्धेषु'' ३।२।१ इत्यनेन च सूत्रेण पाणिनिना भारतशब्दे परे महच्छब्दस्य प्रकृतिस्वरो विहितः । तेन महाभारतपदस्यापि परिचयस्तस्य स्पष्ट एवेति पाणिनितोऽपि पूर्वं साम्प्रतिकानां पुराणानां महाभारतस्याऽपि च सत्ता स्फुटीभवति । निरुक्ते च ''देवापिः शन्तनुश्चेतिकौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः'', ''विश्वामित्रः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव'', इत्यादिना पौराणिककथापरिचयः स्पष्टं दृश्यते । अस्य च समयं यीशुख्रिष्टतः प्राक् नवमीं शताब्दीमाधुनिका ऐतिहासिका अपि मन्यन्ते । वयन्त्वतिपुरातनं ग्रन्थमेनमभ्युपगच्छामः ।

अथ ज्यौतिषे नाम वेदाङ्गे लगधकृतं ''वेदाङ्गज्यौतिषं'' सर्वतः पुरातनं मन्यते । अत्र धनिष्ठाया मध्यभागे सूर्यस्योत्तरायणमुक्तमिति संपातपरिवर्तनगणनेन यीशुख्रिष्टतः चतुर्दशशताब्दीपूर्वभवत्वमस्य निश्चिन्वन्ति ज्योतिर्विदो विद्वांसः । अयमतिसंक्षिप्तो ग्रन्थ इति पौराणिकाः प्रसङ्गा अत्र प्रायेण नोपलभ्यन्ते, अथापि अत्र पञ्चाब्दमरिमितयुगकल्पना या दृश्यते सा पुराणोक्तयुगे विस्तरं संक्षिप्यैव व्यहारार्थं कल्पिता संभाव्यते । मङ्गलश्लोकादिकमपि च तत्र दृश्यत इति पुराणपरिचयस्तत्कर्तुरपि शक्यः संभावयितुम् । अत्र च अष्टादशमुहूर्तं (३६ घटी) पर्यन्तं ग्रीष्मे दिवसबुद्धिरुक्ता । शिशिरे च द्वादशमुहूर्तं (२४ घटी) पर्यन्तं ह्रासः । ''घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदागतौ । दक्षिणे तौ विपर्यासः षण्मुखस्पर्शेन तु (८२ श्लो) इति पुराणेष्वपि तथा लभ्यते । अस्मिन् मध्यप्रान्ते तु नैवं संभवति । तस्माद्देशान्तरे दृष्टं यन्मानं पुराणे-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

धूक्तम्, तदेव लगघनीकायितमितिप्रतिभाति। साधयिष्यते च वेदाङ्ग-ज्यौतिषस्य पुराणेभ्यो र्वाक्तनत्वमग्रे ज्यौतिषप्रकरणे।

अथ ज्यौतिषे नाम वेदाङ्गे, उपलभ्यमानेषु ग्रन्थेषु सूर्यसिद्धान्तः सर्वतः पुरातनः, भारतीयाः शिष्टाश्चास्यातिपुरातनत्वमभ्युपगच्छन्ति। आधुनिका ऐतिहासिका अपि यीशुखिष्टतः प्राक्तनमेवैनं मन्यन्ते। तस्य सर्वोपि विषयो नारदपुराणेन सह संवदतीति तत्रापि पुराणपरिचयः स्पष्टः। अन्याश्च ज्यौतिषसंहिता गर्गनारदादिपौराणिकपुरुषनाम्नैव प्रसिद्धाः। आधुनिका वराहमिहिरभास्कराचार्यप्रभृतयस्तु साम्प्रतिकानां पुराणानां विषयानालोचयन्तीति ततः प्राग्भवत्वकथनस्य-नैवावश्यकता। छन्दः शास्त्रमपि शेषोपज्ञम्, शेषश्च पुराणेष्वेव भूमिधारकत्वेनोक्त-इति तच्छास्त्रादपि पुराणत्वं पुराणानामकथितमेव सिद्धम्। अथोपाङ्गेषु, धर्मशास्त्रे सर्वतः प्राचीना मनुस्मृतिः। तत्र—

"स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्रे धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च॥"

(मनु० ३अ० २३२श्लोक)

इति श्राद्धे पुराणश्रावणविधिः स्पष्टमुपलब्धः। तानि च श्रावणीयानि सम्प्रत्युपलब्धान्येव भवितुमर्हन्तीति नात्र विवादावसरः।

किञ्च

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति॥

(मनु०अ०९श्लो०६६)

इति वेनराज्यप्रसङ्गः स्पष्टं मनुना स्मृतः। सोऽयं प्रसङ्गः पुराणेष्वेवोपलभ्यते। इयमस्मद् दृष्ट्या कल्पादिभवापि यीशुख्रिष्टतः प्राक् चतुर्थ्यां शताब्द्यां संग्रथितेति साम्प्रतिकैरैतिहासिकैरप्यभिमता। इतोऽपि प्राक्तनत्वेन समकालिकत्वेन वा सम्प्रतिकैरैतिहासिकैरभिमते

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

आपस्तम्बधर्मसूत्रे तु पुराणश्लोकाः पुराणनाम चाप्युद्धृतानि दृश्यन्ते। अथ पुराणे श्लोकावुदाहरन्ति।

अष्टाशीति सहस्राणि ये प्रजामीषिरर्षयः।
दक्षिणेनार्यम्णः पन्थानं ते श्मशानानि भेजिरे।
अष्टाशीति सहस्राणि ये प्रजां नेमिरर्षयः।
उत्तरेणार्यम्णः पन्थानं तेऽमृतत्वाय कल्पते।

(आपस्तम्बधर्मसूत्रम् द्वितीयप्रश्ननवमपटलः-३-४)

इमौ श्लोकौ ब्रह्माण्डपुराणे ६५ अध्याये १०३-१०४ श्लोकसंख्याङ्कितावुपलभ्येते। तत्र किञ्चित् पाठभेदस्तु लेखकमुद्रकादिप्रमादकृत एव संभाव्यते। पद्पुराणे सृष्टिखण्डेऽपि चैवंविधाः श्लोका दृश्यन्ते।

"आभूतसंप्लवास्ते स्वर्गजितः। पुनः सर्गे बीजार्थाः भवन्तीति" भविष्यत्पुराणे। (आश्व० द्वितीयप्रश्ने नवमपटले ४-५)। अत्र भविष्यपुराणनामाऽपि गृहीतम्। तेन चोपलभ्यमानान्येव पुराणानि एवं विधैरेव नामभिस्तस्मिन् काले स्थितान्यासन्निति स्फुटीभवति। भविष्यपुराणस्य तु शुद्धं संस्करणमद्यावधि न मुद्रितमिति पाठसामञ्जस्य विषये नात्र किमपि वक्तुं शक्यते। अन्यास्वपि स्मृतिषु पुराणनाम लभ्यते। यथाव्यासस्मृतौ—

मीमांसते च यो वेदान् षड्भिरङ्गैः सविस्तरैः।
इतिहासपुराणानि स भवेद् वेदपारगः।४।४४

गौतमधर्मसूत्रे च—"स एष बहुश्रुतो भवति लोके वेदवेदाङ्गविद् वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलः" (गौतम०८।२), "तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यङ्गानि उपवेदाः पुराणम्(११-१) इत्यादिना पुराणाध्ययनस्य प्रशंसा दृश्यते। गौतमधर्मसूत्रं यीशुख्रिष्टात् पूर्वं षष्ठशताब्दीभवमिति आधुनिका ऐतिहासिका निर्णयन्ते। अति प्राचीनत्वेन मन्यमाने आश्वलायनगृह्यसूत्रे तर्पणप्रयोगे "सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्य—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भारतमहाभारतधर्माचार्यास्तृप्यन्तु" इति पुराणोक्तानां व्यासशिष्याणां भारतमहाभारताचार्यस्य च स्पष्टं नामोपलभ्यते। तथैव यीशुख्रिष्टतः- प्राक् षष्ठ्यां पञ्चम्यां वा शताब्द्यां बौधायनधर्मसूत्रस्य च कालो यूरोपीयैस्तदनुयायिभिर्भारतीयैश्च निर्धारितः। तत्र बौधायनगृह्यसूत्रे "देशाभावे द्रव्याभावे साधारणं कुर्यान्मनसा वाऽर्चयेदिति-तदाहभगवान्

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।

इति महाभारतान्तर्गतभगवद्गीता वचनं स्पष्टमुद्धृतं दृश्यते ।

विनायक, महाबाहो विघ्नेश भवदाज्ञया ।
कामा मे साधितास्सर्वे इदं बध्नामि कङ्कणम् ।

इतिपुराणेष्वेव प्रसिद्धस्य विनायकस्य नाम्ना कङ्कणवंधनविधानं दृश्यते । एवम्—

प्रच्छाद्य तु तृणैश्शुद्धैर्दूर्वाभिश्च विशेषतः ।
विष्णोर्नामसहस्रं वा शैवं वाथ तथा जपेत् । (१।२२।८)

इतिविष्णुसहस्रनाम्नां शिवस्य सहस्रनाम्नाञ्च जपोऽपि तत्र विधीयते। विष्णोः शिवस्य च सहस्रनामानि महाभारते पुराणेषु च लभ्यन्ते। पौराणिकैर्विष्णोः शिवस्य वा नामभिस्तर्पणमपि तत्र विहितम्।

किञ्च बौधायनधर्मसूत्रे महाभारतोक्ताया ययातिगाथाया श्लोकोऽप्युद्धृतः—

स्तुवतो दुहिता त्वं वै याचतः प्रतिगृह्णतः ।
अथाहं स्तूयमानस्य ददतो प्रतिगृह्णतः ॥ २।२।२६

इदं पद्यं किञ्चित् पाठभेदेन महाभारते आदिपर्वणि (७८।१०) ययातिर्चारते समुपलभ्यते—

याचितस्त्वं हि दुहिता स्तुवतः प्रतिगृण्हतः ।
सुतोहं स्तूयमानस्य ददते प्रतिगृण्हतः ॥ इति,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अयं पाठभेदस्तु लेखकमुद्रकप्रमादादिना संभाव्यत एव। ततश्च बोधायनसूत्रात् पूर्वभवत्वं स्फुटमेव सिद्ध्यति। महाभारते च पुराणानामुल्लेखात् पुराणानि तत्पूर्वभवानि समकालिकानि वेति—अग्रे वक्ष्यते।

याज्ञवल्क्यस्मृतौ तु चतुर्दशसु विद्यासु धर्मस्कन्धेषु च प्रथममेव पुराणं परिगणितमित्युक्तं प्राक् प्रथम एव प्रकरणे। एवमन्यास्वपि स्मृतिषु द्रष्टव्यम्। धर्मशास्त्रस्य निबन्धग्रन्थास्तु पौराणिकवचनैरेव परिपूर्णाः सन्तीति सर्वैर्ज्ञायते एव। द्वितीये उपाङ्गे न्याये वात्स्यायनकृते न्यायभाष्ये द्वितीयाध्याये वेदप्रामाण्यसमर्थके "मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्-प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्" इति सूत्रभाष्ये—य एव मंत्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणधर्मशास्त्रस्य च" इत्यादिना पुराणे-तिहासयोरपि प्रामाण्यं विवृतम्। वेदानां पुराणानाञ्च विषयविभागोऽपि न्यायभाष्ये दर्शित इति द्वितीये पुराणोपयोगप्रकरणे दर्शितमस्माभिः। अयं हि न्यायभाष्यकृद्वात्स्यायनः कौटिल्यापरपर्यायश्चाणक्य एवेति वहवोऽभिप्रयन्ति। तेनापि यीशुख्रिष्टतः प्राक् चतुर्थ्यां शताब्द्यां पुराण-सत्ता विस्पष्टं सिध्यति। मीमांसायामपि प्रथमाध्यायस्य स्मृतिपादे स्मृतिप्रामाण्याधिकरणे पुराणानामपि प्रामाण्यं साध्यते। भट्टपादैस्त्वत्र पुराणेषु संभाव्यमानाः शङ्का अप्यनूद्य सम्यङ् निराकृताः। शाबरभाष्येऽपि च स्मृतिपादे प्रथा प्रवर्तनं पुराणोक्तमेव विचारितम्-शिष्टाचारप्रकरणे च होलिकाद्याः पुराणोक्ता एव विचारिताः।

एवमन्येष्वपि दर्शनेषु पुराणप्रसङ्गः सर्वत्रैव प्रायेण दृश्यते। उपलभ्यमानेषु साङ्ख्यसूत्रेषु या आख्यायिका दृष्टान्तत्वेनोक्ताः, ताः सर्वा अपि प्रायेण पुराणोक्ता एव। सांख्यकारिकासु च पञ्चशिखाचार्य-रचिते सृष्टिविषये तत्राऽपि आख्यायिका आसन्नित्युक्तम्। तेन सृष्टिः, तत्र प्रणेतुः पञ्चशिखाचार्यस्यापि पुराणपरिचयः सिध्यति। योगदर्शने च "भुवनज्ञानञ्च सूर्यसंयमात्" इति सूत्रभाष्ये यो भुवनानां सन्निवेश उक्तः स पुराणान्येवाधारीकृत्येति तद्विदः सम्यक् परिचेतुं शक्नुवन्ति। इदञ्च योगदर्शनभाष्ये दर्शनभाष्येषु सर्वतः पुरातनमिति सर्वैरभिमन्यते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वेदान्तसूत्रेषु तु "स्मृते" "स्मृतिः" इत्यादिपदैः पुराणवचनान्येव सर्वैरपि भाष्यकृद्भिर्गृहीतानि। तेन तत् सूत्रकृतः पुराणपरिचयः, पुराणेषु प्रामाण्यबुद्धिश्चाकथितैव सिद्धा। वेदान्तभाष्यकाराश्च श्रीशङ्करभगवत्पादाः, महत्यारभट्या देवताधिकरणे देवताविग्रहसाधने पुराणप्रामाण्यं समर्थयन्ते।

किञ्च—

सौराष्ट्रसिन्धुसौवीरमवन्ती दक्षिणापथम्।
एतानि ब्राह्मणो गत्वा पुनस्संस्कारमर्हति॥

(बोधा० १।१२।६,)

इति भारतस्य विभिन्नेषु, प्रान्तेषु ब्राह्मणानां गमनमपि तत्र निषिध्यते। एतानि देशनामानि पुराणेभ्य एव संगृहीतानि स्युः। इयमवन्ती वङ्गदेशपूर्वभागे स्थिता। तत्तद्देशेषु यातायातनिषेधादिकमपि पुराणोपज्ञमेवेति बोधायनसूत्रादपि पुराणानां प्राग्भवत्वं स्फुटमेव सिद्ध्यति।

इतिहासपुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेण संभवन्मंत्रार्थवादमूलत्वात् प्रभवति देवताविग्रहादि साधयितुं प्रत्यक्षमूलमपि संभवति। भवति हि-अस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षम्। तथा च व्यासादयो देवताभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते। यस्तु ब्रूयादिदानीन्तनानामिव पूर्वेषामपि नास्ति देवतादिभिर्व्यवहर्तुं सामर्थ्यमिति स जगद्वैचित्र्यं प्रतिषेधेत्। इदानीमिव च नान्यदापि सार्वभौमक्षत्रियोऽस्तीति ब्रूयात्। ततश्च राजसूयादिचोदना उपरुन्ध्यात्। इदानीमिव च कालान्तरेऽप्यनवस्थितप्रायान् वर्णाश्रमधर्मान् प्रतिजानीत, ततश्च व्यवस्थाविधायिशास्त्रमनर्थकं स्यात्। तस्माद् धर्मोत्कर्षवशात् चिरन्तनादेवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुरिति श्लिष्यते, अपि च स्मरन्ति स्वाध्यायादिष्टदेवता संप्रयोग इत्यादि। अन्ये च साम्प्रदायिका भाष्यकाराः पुराणश्लोकानेव पदे पदे उदाहरन्तीति तेषां पुराणविश्वासो घंटाघोषेणेव घोष्यते। अथभक्ति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सूत्राणि शाण्डिल्यकृतानि नारदकृतानि चोपलभ्यन्ते, तत्र शाण्डिल्येन भगवद्गीतामेवाधारीकृत्य भक्तिमीमांसाकृता, अन्येषां पुराणानां वचनान्यपि च तत्र तत्रोद्धृतानि। नारदेन च व्रजगोपिका एव भक्तौ दृष्टान्तीकृता इति ताभ्यां सूत्राभ्यां पूर्वभवत्वं पुराणानां न कोऽपि प्रत्याख्यातुमीशीत।

अथान्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति याश्चतस्रो विद्या आख्यायन्ते, तत्र त्रय्यां न्यायदर्शनापरपर्यायायामान्वीक्षिक्याञ्च पुराणसम्बन्धो दर्शित एव। वार्ता विद्यायास्तु स्वतंत्रा ग्रन्था अद्यत्वे संस्कृतवाङ्मये नोपलभ्यन्ते, पुराणेष्वेव सा विद्या यत्र तत्र प्रकीर्णा लभ्यते।

दण्डनीतौ च कौटिलीयमर्थशास्त्रं पुरातनम्। तत्राऽपि विद्यासमुद्देशे—"सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः"(१पृ०-५ अ०१-२५) इतीतिहासवेदस्य वेदनाम्ना विद्यासु परिगणनं कृतम्। अत्रेतिहासवेदपदेन महाभारतमेवगृहीतं संभाव्यये। अन्यस्य पूर्वोक्तस्येतिहासपुराणवेदस्य कौटिल्यकाले समुपलब्धेरसंभाव्यत्वात्। अग्रे च प्रथमप्रकरणे पञ्चमाध्याये १३-१४ गद्यपद्यवृद्धसंयोगप्रकरणे "पश्चिममितिहासश्रवणे। पुराणमिति वृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रञ्चेतिहासः"— इतीतिहासवेदस्य विवरणं कृतम्। तत्र पुराणानामपि सन्निवेशः कृत एव। इतोऽपि प्राक्तना शुक्रनीतिःसंभाव्यते यतो हि कौटिल्य एव स्थाने स्थाने "औशनसाः" इति पदेन शुक्राचार्यं स्मरति। तत्र तु पुराणानां पौराणिकस्य च स्पष्टमेव नाम निर्दिश्यते, इत्येव न अपि तु पुराणानां लक्षणान्यपि निर्दिश्यन्ते। तथाहि शुक्रनीतौ—

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रपुराणानि त्रयीदं सर्वमुच्यते ॥ (१-१५४)

पठनं पाठनं कर्तुं क्षमास्त्वभ्यासशालिनाम्।
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA
श्रुतिस्मृतिपुराणानां श्रुतज्ञास्ते प्रकीर्तिताः ॥ (२-१७७)

साहित्यशास्त्रनिपुणः संगीतज्ञश्चैव सुस्वरः।
सर्गादिपञ्चकज्ञाता स वै पौराणिकः स्मृतः॥ (२-१७८)
मीमांसातर्कसांख्यानि वेदान्तो योग एव च।
इतिहासपुराणानि स्मृतयो नास्तिकं मतम्॥ (४-२६६)
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं यस्मिन् पुराणं तद्धि कीर्तितम्॥ (४-२६४)
धर्मतत्वं हि गहनमतः सत्सेवितं नरः।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां कर्म कुर्याद् विचक्षणः॥ (३-३८)
श्रुतिस्मृतिपुराणानामभ्यासः सर्वदा हितः॥ (३-१५०)

तथा च दण्डीनीति ग्रन्थेष्वपि पुराणपरिचयः स्फुटं प्राप्यत एव।

अथ काव्यादीनि तु प्रायेण पुराणकथा एवाधारीकृत्य निर्मिताऩीति ततः प्राक्तनत्वकथनं पिष्टपेषणमात्रम्। वाणभट्टरचितायां कादम्बर्यां यद्यपि पुराणकथा नाधारीकृता, तथाऽपि पुराणदृष्टाप्सरोगंधर्वादिकथास्तत्राधारभूताः सन्त्येव। कादम्वर्याञ्च तत्तद्वर्णनेषु पौराणिकपुरुषाणां पौराणिककथानाञ्च परिचयः पदे पदे प्राप्यते। कविकुलगुरोः कालिदासभ्य समयः आधुनिकैः पञ्चम्यां षष्ठ्यां वा शताब्दां निर्धारित आसीत्- परमिदानीं यीशुख्ष्टात् सप्तपञ्चाशतोऽब्देभ्यः पूर्वमासीदेव कश्चिद् विक्रमादित्यः तस्यैव च सभापण्डितो बभूव कालिदास इति सुप्रसिद्धा ऐतिहासिकाः प्रसाधयन्ति।

अत्रैका दृढा युक्तिरपि लभ्यते-कालिदासेन हि नाटकत्रयं रचितम् "नाटकं ख्यातवृत्तं स्याद्" इत्यालंकारिकाणां समयः। तस्मान्नाटकानि कविभिः प्रायेण पुराणोक्तान्येव चरितान्याधारीकृत्य रचितानि कानिचित्त तत्सामयिकीं प्रसिद्धिमालोक्यापि मालतीमाधव-रत्नावलीप्रभृतीनि। कालिदासेन अभिज्ञानशाकुन्तलं विक्रमोर्वशीयञ्च महाभारतपुराणोक्तचारिताधारेण विरचिते। परं मालविकाग्निमित्रस्याधारः पुराणेषु न दृश्यते। तस्मात्तत् स्वकालिकप्रसिद्धिमाश्रित्यैव रचितमिति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वक्तव्यं स्यात् । अग्निमित्रश्चायं नाटकनायकः पुष्यमित्रसमकालिको यीशुख्रिष्टतः प्राग्द्वितीयतृतीयशताब्दीभव एव ऐतिहासिकैर्मन्यते ततस्तत् प्रसिद्धिः शतं वर्षाणि ततो द्विगुणं कालं वा संभवेत् । तेन कालिदासोऽग्निमित्रापेक्षया द्विशतवर्षेभ्यो नार्वाक्तन इती स्पष्टमेव वक्तव्यं स्यादिति ।

कालिदासेन च रघुवंशकुमारसंभवयोरभिज्ञानशाकुन्तलस्य च रचना पौराणिककथा आधारीकृत्यैव कृतेति न तद् विवरणापेक्षम् । यद्यपि रघुवंशोक्तेषु राजसु पुराणोक्तवंशानुक्रमविरोधं समुद्भाव्य कालिदासपरिचितानि पुराणानि अन्यान्येवेति केचित् प्रकल्पयन्ति, तदेतत् वंशप्रकरणे स्फुटं समाधीयेत् । किमन्यत् एकादशीव्रतमाहात्म्य-कथामाधारीकृत्य कालिदासेन मेघदूतस्य रचना कृता-इति तस्य पुराण-परिचयविषये किमु वक्तव्यं स्यात् । एतस्मादपि पुरातनः कविर्भासः यस्य समयं यीशुख्रिष्टात् प्राक्तनीं चतुर्थीं शताब्दीमैतिहासिका मन्यन्ते । श्रीमता गणपतिशास्त्रिणा तु ततोऽपि बहुपूर्वजत्वं प्रसाधितम् यतोहि भासनाटकस्य प्रतिज्ञायौगन्धरायणस्य-"नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं-दर्भकृतोत्तरीयम् तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत' इति पद्यं कौटिलीये अर्थशास्त्रे सांग्रामिकप्रकरणे (१० अधि० ३ अध्या०) अत्र हि श्लोको भवतः इत्युक्त्वा समुद्धृतम् । तेन कौटिल्यात्प्राक्तनत्वं भासस्य सिद्ध्यतीति तेनाऽपि रामायणकथामाधारीकृत्य प्रतिमानाटकम् श्रीकृष्णचरितमाधारीकृत्य बालचरितम् महाभारतकथामाधारीकृत्य च पाञ्चरात्रम् दूतवाक्यादीनि नाटकानि विरचितानि ।

"स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः", "उभे बहुमते लोके" "नास्ति निष्फलता रणे ।" इति भगवद्गीतापद्यस्य "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गंमि"त्याद्येच्छायापि स्पष्टं दृश्यते ।

तेन तस्यापि समुपलभ्यमानपुराणपरिचयः सुस्पष्टः । मयूरकविरपि च कालिदासात् प्राक्तनो मन्यते । तेन सूर्यस्तुत्यर्थं शतकं निर्मितमिति तस्याप्याधारः पुराणान्येव ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भरतमुनिप्रणीतस्य च नाट्शास्त्रस्य समयमद्यापि स्पष्टतया ऐतिहासिका न निर्णयन्ति। अथाप्यति प्राचीनत्वं तस्य सर्वैर्मन्यत एव। तत्रापि च पुराणपरिचयो दृश्यते। तथा हि कैशिकी वृत्तिः कथमभिनेयेति भरतमुनिना प्राथितो ब्रह्मा मञ्जुकेश्या अप्सरसस्तदर्थं निर्दिष्टवेशेति नाट्यशास्त्रे उक्तम्। इमा अप्सरसः पुराणेभ्य एव परिचीयन्ते। नटानां कुशीलवेति नाम कुतो जातमित्युपपादनाय च रामस्य सुतौ कुशलवौ पूर्वमातोद्यप्रचारं गायनप्रचारञ्च कृतवन्तौ। तद्वदातोद्यादिकं वादयन्तीति नटाः तन्नाम सम्बन्धात् कुशीलवा उच्यन्ते इत्यपि नाट्यशास्त्रे उक्तम्। "कुशीलववदातोद्यविधः कुशीलवः स स्यात्" (नाट्यशास्त्रम् ३६ अ०) इति। तेन नाट्यशास्त्रप्रणेतुः पुराणपरिचयः सुस्पष्टः। किञ्च गुणाढ्यकृता पैशाच्यां प्राकृतभाषायां निबद्धा बृहत्कथा विक्रमस्य प्रथमायामेव शताब्द्यामुद्भूतेति सर्वेप्यैतिहासिका मन्यन्ते। सा बृहत्कथा यद्यप्यद्यत्वे नोपलभ्यते अथापि तत्कथाख्यापकः कथा-सरित् सागरः, बृहत्कथामञ्जरी-नामकौ ग्रन्थावुपलभ्येते। यद् गौरीशङ्करयोः संवादरूपेण सा कथा निबद्धा, पुराणेषु भविष्यवंशे उक्त उदयनो राजा तस्य सुतो नरवाहनदत्तश्च तस्यां मुख्यो नायकः, अन्यान्यपि च पौराणिकान्याख्यायिकादीनि तत्रान्तर्गतानीति तत्रापि पुराणपरिचयः सम्यक् प्राप्यते।

तदित्थं संस्कृते प्राकृतवाङ्मये सर्वासां विद्यानामतिपुरातनेषु ग्रन्थेषु पुराणोल्लेखः प्रदर्शितः। तेन वेदातिरिक्तोपलभ्यमानसर्वग्रन्थापेक्षया अद्यत्वे समुपलभ्यमानानां पुराणानां प्राचीनत्वं सुस्फुटीभवति। ये च केचन विवेचकाः महाभारतं प्राचीनं मन्यमाना अपि पुराणानां ततोऽत्यर्वाचीनत्वं साधयितुमागृह्णन्ति तान् प्रतीदं ब्रूमः—यन्महाभारते दृश्यते सुस्फुटं पुराणनिर्देशः। नैतावदेव किन्तु अष्टादशपुराणनिर्देशोऽपि। किञ्चाष्टादशपुराणानि कृत्वा व्यासेन महाभारतं रचितमित्यपि तत्र पठ्यते। एवं सत्यपि कथं पुराणानां तदपेक्षयाऽर्वाचीनत्वं सिध्येत्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तथा हि —

पुराणं हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम् ।
कथ्यन्ते ये पुराऽस्माभिः श्रुतपूर्वाः पितुस्तव ।
(आदि पर्व ५-२)

साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया ।
इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितञ्च यत् ॥
(आदि पर्व ६२/५३)

इदं वंशमहं पूर्वं भार्गवं ते महामुने ।
निगदामि यथायुक्तं पुराणाश्रयसंयुतम् ॥
(आदि पर्व ५/६७)

अष्टदशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
पश्चाद् भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥
(आदि० अनुक्रमणिका)

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
(आदि पर्व २-१६४)

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत् फलं भवेत् ।
तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ॥
(स्वर्गारोहणअ० ६)

ये च भाष्यविदः केचिद्ये च व्याकरणे रताः ।
अधीयन्ते पुराणानि धर्मशास्त्राण्यथापि वा ॥
(दान धर्म अ० ६०)

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गोवेदश्चिकित्सितम् ।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥ (अनुशासन)

रामायणञ्च यद्यपि पुराणेभ्यः प्राचीनतमं वयमभ्युपगच्छामः, तथापि पुराणवेदादागतानां पूर्वयुगीयव्यासनिर्मितानां पुराणानां वा निर्देशस्तत्रापि दृश्यत एव । तथा हि—

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् ।
श्रूयतां यत्पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम् ॥ (बालकाण्ड ६/१)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एतेन पुराणेषु भविष्यदाख्यानमपि भवतीति स्पष्टं प्रसिध्यति। यतो हि सुमन्त्रेण महाराजं दशरथं प्रत्येवमुच्यते-यद् भवतां पुत्रप्राप्तिः कथं स्यादिति पुराणेषु मया श्रुतमिति। एवञ्चाग्रे दशरथस्य भाविनी पुत्रप्राप्तिः पूर्वमेव पुराणेषु निर्दिष्टा इति भविष्यदाख्यानं सुस्पष्टीभवति।

अथागमशास्त्रन्तु वेदपुराणादिवदनाद्येव मन्यते। परं तस्य मूलभूता ग्रन्थाः प्रायेण नोपलभ्यन्ते. उपलभ्यमाना अपि वा गुप्ता एव, न प्रचलिताः। निबन्धास्तु य इदानीं प्राकाश्यं गताः, ते प्रायेण वाक्यपदीयनिर्मातुहरेः श्रीमदाचार्वाभिनवगुप्तपादाच्चार्वाचीना एव। श्रीमदभिनवगुप्तपादस्य ध्वन्यालोकव्याख्याकर्तुः, श्रीहरेश्च महाभाष्य-व्याख्यातुः पुराणपरिचयोपपादनं पिष्टपेषणमेव भवेत्। महाभाष्या-पेक्षयाऽपि पुराणानां प्राचीनतायाः पूर्वमुपपादित्वात्, शब्दप्रयोगविषय-विस्तारे महाभाष्यकृता पस्पशायां पुराणनाम गृहीतम्। अन्यत्रापि च स्थाने-स्थाने प्रसङ्गात्पौराणिक्य आख्यायिकाः- स्मृताः—"धर्मेण स्म कुरवो युध्यन्ते" इत्यादानि पौराणिकपुरुषनिदर्शनान्यपि तत्र लभ्यन्त एव। अथ मुख्यतन्त्राणामपि यानि वचनानि तत्र तत्रोद्धृतानि, तत्र पुराण-पदं पुराणविषयाश्चोपलभ्यन्ते। यथा—

कृते श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसंभवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसंभवः॥

इति कुलार्णवतन्त्रे न केवलं पुराण नाम गृहीतम् - अपितु आगमात् प्राग् द्वापरे पुराणोक्तानाचारान् ब्रुवता तेषां प्राक्तनत्वमप्यागमात् स्पष्टैरक्षरैरुक्तम्। द्वापरान्ते पुराणानां संघटनमस्माभिरुपपादितमिति प्रकीर्णंभ नेन प्रसृतेषु तेषु निरूपिता आचारा द्वापरे प्रचलन्ति स्मेति न विरुद्धम्। कलिद्वापरयोः सन्धिभूते कलियुगारम्भेऽपि द्वापरशब्देन व्यवहर्तुं शक्यत एवेत्यपि विचार्यं सुधीभिः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

आगमेभ्यः प्राक्तनत्वं तु तेषु युगक्रमेण सुस्पष्टमेव जातम्।

"विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये"

इति महानिर्वाणतन्त्रेऽपि कलावेवागमानां महत्वप्रदर्शनेन पुराणसमकालिकत्वं ततोऽनन्तरत्वं वागमप्रसारस्य स्पष्टं सिद्ध्यति।

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां तथार्चनम्।
साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च॥

षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद विदुर्बुधाः॥

इति वाराहीतन्त्रे च पुराणं पञ्चलक्षणमित्यस्यानुकृत्यैवागमस्य-सप्तलक्षणत्वप्रतिपादनं भासते। तन्त्रोक्तौ सृष्टिप्रलयौ च पुराणानामेव मुख्यतया विषयो सर्वैराचार्यैरभिमतात्रिति पुराणेभ्य एव तयोः संग्रहण-मागमेषु संभाव्यत एव। वैष्णवागमेषु प्रधाने नारदपाञ्चरात्रे च ये चत्वारो व्यूहा वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धनाम्ना निरूपिताः, ते संकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाः पुराणेभ्य एव नाम गृहीत्वा संनिवेशिता इति स्पष्टमेव। किं च नारदपाञ्चरात्रे भागवतब्रह्मवैवर्तविष्णुपुराण-भगवद्गीतादीनां नामापि स्पष्टमुपलभ्यत इति पुराणानां ततः प्राक्तनत्वे को विवादः।

किं च शैवाः शाक्ताश्च सर्वेप्यागमाः प्रायेण शिवपार्वतीसंवाद-रूपाः, भैरवभैरवीसंवादरूपा वा। तत्र शिवो यद्यपि परब्रह्मतया श्रुतिषु बहुधाऽम्नातः, परं पार्वतीसम्बन्धस्तस्य पुराणेष्वेवावगम्यते, भैरवभैरव्यावपि च पुराणेष्वेव विवृतावित्यागमप्रसारादपि प्राक्तनत्वं पुराणप्रचारस्य सुशकमेवानुमातुम्। अन्योन्यविषयसांकर्यात् समान-कालिकत्वं वा प्रतिपद्यतेति सुधिय एव विवेचयन्तु। कात्यायनीतन्त्र-चिदम्बरसंहितादिषु मार्कण्डेयपुराणान्तर्गतसप्तशत्याः पाठक्रमादि-कमुपलभ्यत इति तेषां पुराणादर्वाचीनत्वं स्फुटमेव।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"जैनबौद्धग्रन्थापेक्षया प्राचीनता विचारः"

अथ वेदविप्रतिपन्नानां जैनानां बौद्धानां च ग्रन्था उपलभ्यन्ते, तदपेक्षयापि पुराणानां प्राचीनत्वमर्वाचीनत्वं वा मनाग् विविच्यते । तत्रातिप्राक्तना ग्रन्था जैनानां प्राकृतभाषायां बौद्धानां च पालीभाषायामुपलभ्यन्ते । ततश्च प्राकृतप्रसारानन्तरं ते प्रादुर्भूताः । पुराणानि तु संस्कृते निबद्धानीति पुराणप्रसार-काले संस्कृतप्रसार एव शक्यतेऽनुमातुम्, तेन च पुराणानां प्राक्तनत्वं भाषादृष्ट्यैव सुतरां प्रसिद्ध्यति ।

"प्रासङ्गिकभाषाविचारः"

यद्यपि संस्कृतापेक्षया प्राकृतस्य प्राचीनत्वमपि कैश्चन युरोपीयैर्विद्वद्भिरुद्घुष्टम्, परं तत्र मूलं प्राकृतसंस्कृतेति नाम्नोः पर्यालोचनमेव । प्रकृत्योत्पादिताः पदार्था एव प्राचीना भवन्ति, संस्कृतास्तु प्राकृतेषु दोषमार्जनातिशयाधानादिना संपाद्यन्त इति पुराणलक्षणप्रकरणे विस्तरेण व्याख्यातमस्माभिः । तथा च भाषापि या प्रकृत्योत्पादिता स्वभावसिद्धा सैव प्राक्तनी भवितुमर्हति, संस्कारैस्तु सा संस्कृततां नीयत इत्येव तेषां विदुषां दृष्टिः । परमयं विचारो मूलत एव निर्निमित्तिकः, यतो हि अद्य संस्कृतनाम्ना व्यपदिश्यमानाया भाषायाः संस्कृतमितिनाम न प्राक्तनेषु ग्रन्थेषूपलभ्यते । निरुक्तकृद्यास्को भगवान् पाणिनिश्च भाषाशब्देनैवेमां व्यवहरतः । "नेति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्", "उभयमन्वध्यायम्", (निरु० १ अ० १ पा०) "भाषायां सदवसश्रुवः", संख्याशिखीति भाषायाम्" (पा०सू ३।२।१०८, ४।१।६२)। इत्यादीनि तद्वाक्यानि पर्यालोच्यन्ताम् । एतेषां व्यवहारेणेदमेव प्रतीयते- यत् तदात्वे भाषाद्वयमेव प्रचलितमासीत् । छन्दोभाषा (वैदिकीभाषा) लोकभाषा चेति । तत्र या लोकभाषा, सैवाद्यत्वे बहुषु भाषान्तरेषु प्रादुर्भूतेषु संस्कृतानां शिष्टानां विदुषां भाषेति, सुव्यवस्थिता भाषेति च संस्कृतभाषानाम्ना व्यवह्रियते । वैदिकभाषापेक्षयापि भाषायामस्यां नात्यन्तं विभिन्नता, यतो हि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भगवता पाणिनिना उभयोरेकमेव व्याकरणं निबद्धम्, केषुचित् परिमितेष्वेव तु सूत्रेषु 'छन्दसि' 'इति' भाषायामिति च वैलक्षण्यमुभयोर्भाषयोः प्रदर्शितम्। तस्मात्केषुचिदंशेषु वैलक्षण्यमेवोभयोः, नतु सर्वात्मना भिन्नत्वम्। यद्यपि वाल्मीकीये रामायणे सुन्दरकाण्डे हनुमतः सीतया सह संवदनविचारे—

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

इति अस्या भाषायाः कृते संस्कृतपदमुपलभ्यते। परमशिक्षितप्रायाणां वानरादिजातीनां भाषापेक्षया सुव्यवस्थितत्वमेव तत्र संस्कृतत्वं विवक्षितमिति मानुषीदेन सुस्पष्टं भवति। अशिक्षितापेक्षया शिक्षितानां द्विजातीनां भाषायाः सुव्यवस्थितत्वमेवोत्तरश्लोकेऽप्युक्तम्। तस्मान्न तत्र संस्कृतं भाषान्तरं प्रतीयते अपितु अशिक्षितभाषापेक्षया सुव्यवस्थितत्वमेव तत्र संस्कृतपदंव्यवहारहेतुः। तत एव वानरोऽपि हनुमान् तां व्यवहर्तुं शक्तोऽभूत् सुशिक्षितत्वादिति सुश्लिष्टमेतत्। पशुपक्ष्यादीनामपि भवति काश्चित्संकेतिता भाषाः, परं न तत्र पदवाक्यानामपि विभागो दृश्यते। इन्द्रेण मनुष्येषु पदवाक्यविभागः प्रक्लृप्त इति शतपथब्राह्मणे समाम्नातम्। इन्द्रश्चायं ज्ञानस्याधिष्ठा वहुत्र श्रुतः। तथा च प्राकृत एवायं पदवाक्यविभागो मनुष्येष्विति श्रुतितात्पर्यम्। अयमेव भाषायाः प्रथमः संस्कारः, तत एव 'मानुषीमिह संस्कृताम्" इति मनुष्यभाषायाः पश्वाद्यपेक्षया वैलक्षण्येन संस्कृतत्वं रामायणे प्रतिपादितम्। मनुष्येऽप्यशिक्षितापेक्षया शिक्षितभाषायां वैलक्षण्यं द्विजातिरिव संस्कृताम् इत्युत्तरश्लोक उक्तम्। इदमशिक्षितभाषापेक्षया शिक्षितभाषायां वैलक्षण्यं तु आङ्गलहिन्दीभाषादिषु सर्वत्रैव भवति। न तावता भाषान्तरत्वं कोऽपि तत्र व्यवहरति। यत्तु पुराणेषु क्वचिद् द्विजातिभिन्नानां संस्कृतभाषणमेव निषिध्यते तत्तु

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रक्षिप्तमेव अन्यस्मृतिपुराणवचनविसंवादात् प्राक्तन व्यवहारविसंवादाच्च। आस्तामयप्रकृतविषयविस्तरः।

संस्कृतमेव सर्वादिभूता सर्वतः प्राक्तनी च भाषेत्येवास्माकमत्र प्रतिपिपादयिषितम्। अशिक्षितभाषाया एव प्राकृतत्वम् तस्याश्च भाषान्तरत्वमेव ये केचन् विद्वांस आग्रहेण प्रतिपादयेयुः, तन्मतेऽपि प्राकृतनाम्नी काप्यव्यवस्थिता भाषा संस्कृतापेक्षया प्राक्तनीसिद्ध्येत् न तु अद्यत्वे या भाषा प्राकृतत्वेन मन्यन्ते – याश्च जैनबौद्धादिग्रन्थेषु व्यवहृताः तासां भाषाणां संस्कृतात्प्राक्तनत्वं कोऽपि भाषाविचारविचक्षणो ऽभिधातुं शक्नुयादनुन्मत्तः। सर्वाणि च प्राकृतव्याकरणानि प्रकृतिः संस्कृतम् तस्मादागतं प्राकृतम् इत्येव प्राकृतशब्दं व्युत्पादयन्ति, संस्कृत शब्देभ्य एव च प्राकृतशब्दान् साधयन्ति।

"दैवी वाग् व्यवकीर्णेयमशक्तैरभिधातृभिः"

इति तत्रभवान् हरिः संस्कृतशब्दोच्चारणासामर्थ्यमेव विभिन्नभाषोत्पत्तौ निदानमाह। महाभाष्यकारो भगवान् पतञ्जलिरपि एकैकस्य शब्दस्य बहवोपभ्रंशाः इत्यादि प्रतिपादयन् विभिन्नानां प्राकृतभाषाणां संस्कृतजन्यत्वमेवाभिव्यनक्ति। तस्मात्कालक्रमेणाशिक्षितजनताभिवृद्धावेव प्राकृतापभ्रंशादिभाषाप्रादुर्भाव इति निर्विवादमेवेदम्।

या च भाषा यस्मिन् कालेऽधिकजनप्रिया भवति तस्यामेव प्रचाराकाङ्क्षिभिर्ग्रन्था निबध्यन्त इत्यपि स्वाभाविकम्। संस्कृतस्य विरलप्रचारकालेऽप्यद्यत्वे ये केचन विद्वांसः संस्कृतभषायां ग्रन्थान् निबध्नन्ति ते तु संस्कृतभषायाः पूज्यत्वेन तत्सेवनबुद्ध्या ग्रन्थस्थैर्याभिकाङ्क्षया अद्यापि भारतस्य विभिन्नेषु प्रान्तेषु संस्कृतं सर्वत्रैव कैश्चन बुध्यते ननु एकप्रान्तीयाभाषाऽन्यप्रान्तीयेन मनागपि बुध्यते इति भावनया वा न तु बहलप्रचारबुद्ध्या।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

स्थैर्यंबुद्धिमेवाग्रेसरीकृत्य जैनैर्बौद्धैश्चापि बहवो ग्रन्थाः संस्कृतभाषायां निबद्धाः त एव च तेषामद्यापि सुस्थिराः। प्राकृतभाषानिबद्धास्तु अतिविरलप्रचाराः विलुप्तप्राया वेति सर्वं एव विदन्ति। भवतु नाम। जैनबौद्धग्रन्थनिर्माणकालः प्राकृतभाषाबहुल आसीत्। पुराणनिर्माणकालस्तु संस्कृतभाषाबहुल एवेति भाषादृष्टौ पुराणानां जैनबौद्ध ग्रन्थापेक्षया प्राचीनत्वं सुस्पष्टम्।

अथ विषयापेक्षया तेषामेवोपलभ्यमानप्राकृतसंस्कृतग्रन्थापेक्षया च विचार्यम्। तत्र जैनानां नन्दीसूत्रे प्राकृतनिबद्धे शास्त्रगणनायां पुराणमपि परिगणितम्।

तेन स्पष्टमेव पुराणानां ततः प्राचीनत्वम्, न च तदात्वे प्राक्तनानां पुराणानां सत्ता संभाव्यत इतीमान्येव पुराणानि तस्मिन् ग्रन्थउल्लिखितानीत्येव मन्तव्यं स्यात्। अस्य च कालो यीशुख्रिष्टतस्तृतीयाशताब्दी मन्यते। ततोऽपि प्राक्तनें अनुयोगद्वारा नामके ग्रन्थेऽप्यस्ति पुराणनामोल्लेखः। जैनानामपि च सन्ति पुराणानि प्राक्तनिबद्धानि पुरातनानि, संस्कृतनिबद्धानि च, ततोऽर्वाक्तनानि पउमचरियनामकं पुराणं सर्वतः प्राचीनं मन्यते, तत्राप्यस्ति रामरावणकथा बहुष्वंशेष्वस्मत्पुराणसंवादिनी। केवलं तत्र रामस्य रावणस्यापि च जैनत्वमुपवर्णितम्, इत्येव विशेषः प्राधान्येन लभ्यते। तेन च स्वीयस्य जैनसिद्धान्तस्यातिप्राचीनतां महत्तां च ख्यापयितुमस्मत्पुराणेभ्यः सा कथानूदिता, जैनत्वं च तदानीन्तनैषु रामादिष्वारोपितमिति सर्वेपीतिहासविचारका एतदनुमिनुयुः। वैपरीत्यन्तु न संभावयितुं शक्यम्—अस्मत्पुराणेषु वंशपरम्परानुक्रमेण सपरिकरस्य रामचरितस्य निरूपणात्, कस्यचित् संप्रदायविशेषस्य रामादिष्वनारोपणाच्च। जैनत्वारोपेण जैनधर्मप्रभावनैव तत्र लक्ष्यभूतेति स्फुटमेव प्रतीयते। एवमन्येष्वपि तेषां पुराणेष्वस्मत्पुराणप्रथितानां कृष्णादीनामन्येषां च राज्ञां चरितानि प्रत्यभिज्ञायन्ते। द्वितीयशताब्दीभवत्वेनाङ्गीक्रियमाणे 'अङ्गविज्जा' नाम्नि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्राकृतग्रन्थे च देवा देव्यश्च य उक्ताः, तेषां नामान्यपि अस्मत्पुराणदेवदेवीनामभिः संवदन्ति, संस्कृतग्रन्थेषु सर्वतः प्राचीने तत्त्वार्थसूत्रे च चतुर्थाध्याये देवयोनिवर्णनं तत् स्थानादिवर्णनं च दृश्यते। तदपि पुराणेभ्य एवोद्धृत्य स्वसिद्धान्तेन कंचिद्विशेषं संनिवेश्य कृतमेवानुमीयेत्। तस्मिंस्तत्त्वार्थसूत्रे प्रतिबन्धकानां कर्मणां क्षयादुपशमाद्वा ये क्षायिकाः औपशमिकाः क्षायौपशमिकाश्चात्मनो भावा अतिविस्तरेण व्याख्याताः, ते योगदर्शनस्य विवरणभूता एव लक्ष्यन्ते, योगदर्शने च भुवनज्ञानं पुराणेभ्य एवोद्धृतमित्युक्तमेव प्राक्, ततः प्राचीनत्वं पुराणानाम्। अथ यथास्माकं पुराणेषु सत्यत्रेताद्वापरकलियुगरूपेण कालव्यवस्था विस्तरेण दृश्यते, तथैव जैनानां प्राक्तनेषु ग्रन्थेष्वपि कालव्यवस्था कृता, अस्माकं युगव्यवस्थायामध्यात्मतत्त्वानां धर्मस्य च क्रमिको ह्रास एव वर्णितः। अन्ते तु कलावत्यन्तं ह्रासे काचन दिव्यशक्तिराविर्भूय पुनः सर्वमपि समाजमुत्कर्षसीम्नि आरोपयति, पुनस्ततो ह्रासाख्यं पतनमारभ्यत इति वर्णितम्। तत्र संशोधनं विधातुं जैनग्रन्थेषु अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी चेति कालचक्रस्य भेदद्वयं परिकल्प्य अवसर्पिण्यामध्यात्मतत्त्वानां धर्मसुखादीनां च ह्रासः। उत्सर्पिण्यां च क्रमिकी वृद्धिरुपगता। प्रत्येकं च तयोर्द्वयोर्भेदत्रयं परिकल्प्य सुषमा-सुषमा, सुषमा-दुषमा, सुषमा-दुषमा इति अवसर्पिण्यां दुषमा-दुषमा, दुषमा, दुषमा-सुषमा चेत्युत्सर्पिण्यां भेदा उक्ताः, इति चतुर्णां स्थाने षड्भेदाः प्रक्लृप्ताः। सेयं सर्वाप्यस्मत्पुराणानां संशोधनपूर्विकानुकृतिरिति स्पष्टमेव प्रतीयते। तेन जैनवाङ्मयाऽपेक्षयोपलभ्यमानानामस्मत्पुराणानां प्राक्तनत्वं स्फुटमेव। एवं बौद्धानां ग्रन्था अपि विचार्यन्ते। तत्राश्वघोषनिबद्धं बुद्धचरितं संस्कृते प्राक्तनम्। यूरोपीया विद्वांसः प्रायेण कालिदासादपि प्राक्तनमश्वघोषं मन्यन्ते। केचित्तु यीशुख्रिष्टतोपि द्वित्रशताब्दी पूर्वभवत्वमस्य संभावयन्ति। तेन तु बुद्धचरितेऽनुपदं पौराणिक्यः कथाः समुपनिबद्धाः। प्रथम एव सर्गे—

"ऊरोर्यथोर्वस्य पृथोश्च हस्तान्मान्धातुरिन्द्रप्रतिमस्य मूर्ध्नः।
कक्षीवतश्चैव भुजांसदेशात्तथाविध तस्य बभूव जन्म॥" (१।२९)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"सारस्वतश्चापि जगाद नष्टं वेदं पुनर्यं ददृशुर्न पूर्वम्।
व्यासस्तथैनं बहुधा चकार न यं वशिष्ठः कृतवानशक्तः ।।(१।४७)

यच्च द्विजत्वं कुशिको न लेभे तत्साधनं सूनुरवाप राजन्।
वेलां समुद्रे सगरश्च दध्रे नेक्ष्वाकवो यां प्रथमं बबन्धु ।। १।४९ ।।

इत्यादिना।

अग्रेऽपि च—
नाशो वधो बन्धुषु नाप्यदाता नैवाव्रतो नानृतिको न हिंस्रः।
आसीत्तदा कश्चन तस्य राज्ये राज्ञो ययातेरिव नाहुषस्य ।। २।११ ।।

ऋष्यशृङ्गं मुनिसुतं तथैव स्त्रीष्वपण्डितम्।
उपायैर्विविधैः कान्ता जग्राह च जहार च ।। ४।१९ ।।

ययातिश्चैव राजर्षिर्वयस्यपि विनिर्जिते।
विश्वाच्यां सरसा सार्धं रेमे चैत्ररथे वने ।। ४।७८ ।।

इत्यादिषु प्रतिपदं पौराणिकान्याख्यानानि दृष्टान्तविधयोपात्तानि-यान्येष्वेवोपलभ्यमानेषु पुराणेषु विवृतानि लभ्यन्ते। अहो, अश्वघोषस्य प्राचीनत्वमुपगम्यापि पुराणानि तु गुप्तराज्यकालादर्वाक्तनान्येवेति अद्याप्यैतिहासिकप्रवरा हठपरायणा इति बलवान्मोहमहिमा। भगवतो बुद्धस्योपदेशेष्वपि च पौराणिकाख्यानप्रतिभासस्तेन दर्शितः।

इत्यविद्या हि विद्वांसः पञ्चपर्वा समीहते।
तमो मोहं महामोहं तामिस्रद्वयमेव च। (१२।३३)

इति योगभाष्यस्य विषयाः स्पष्टमनूदिताः। किञ्च श्रीमता-बुद्धदेवेन साकं येषां प्राक्तनानां तपस्विनां राजमन्त्रिप्रभृतीनां च संवादास्तत्रोपनिबद्धाः, तत्रापि प्रतिपदं पौराणिकपुरुषाणां दृष्टान्ता उद्ध्रियन्ते—

भुक्त्वापि राज्यं दिवि देवतानां शतक्रतौ वृत्रभयात् प्रनष्टे।
दर्पान्महर्षीनपि वाहयित्वा कामेष्वतृप्तो नहुषः पपात।
(बु०च०११।१४)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ध्रुवानुजौ यौ वलिवज्रबाहू वैभ्राजमाषाढमथान्तिदेवम्।
विदेहराजं जनकं तथैव पाकद्रुमं श्येनचितश्चराज्ञः।
(स०९।२०)

एतान् गृहस्थान् नृपतीनवेहि नैश्रेयसे धर्मविधौ विनीतान्।
उभेऽपि तस्माद्युगपद् भजस्व वित्ताधिपत्यं च नृपश्रियं च (९।२१)

इत्यादि।

किञ्च बुद्धदेवस्योपदेशेष्वपि स्वर्गनरकादिवर्णनं तेन वहुधा विवृतम्। तत्राऽपि पौराणिकपुरुषदृष्टान्तश्च स्वर्गनरकादिवर्णनं चेदं पुराणेष्वेव विस्तरेण लभ्यते इति श्रीमतो बुद्धदेवस्यापि पुराण-परिचयः सिद्ध्यति—

पच्यन्ते पिष्टवत्केचिदयस्कुम्भीष्ववाङ्मुखाः।
दह्यन्ते करुणं केचिद्दीप्तेष्वङ्गारराशिषु।
(बु०च०१४।१३)

पुरुषो यदि जानीत मात्सर्यस्येदृशं फलम्।
सर्वथा शिबिवद्दद्याच्छरीरावयवानपि।
(१४।३०)

किञ्च बुद्धदेवस्यापि बुद्धत्वप्राप्तेः प्राग्यादृशी तपश्चर्या तेन वर्णिता तीर्थयात्रादिकं च यद्वर्णितं तत्सर्वं पुराणोपज्ञमेवेति अश्वघोषनिवद्धं बुद्धचरितं यदि प्रामाणिकं तर्हि श्रीमतो बुद्धदेवादपि प्राचीनत्वं पुराणानां सुप्रसिद्धत्येव। तेषां प्राकृतनिवद्धेषु सुत्तादिष्वपि श्रीमतो बुद्धदेवस्य चरिते पुराणकथा संबन्धः प्रतीयते। तथाहि सुत्तनिपाते वृषलसुत्ते वर्णव्यवस्था-मधिक्षिपता श्रीबुद्धदेवेनोक्तम्—"चण्डालेनापि मतङ्गेन श्रेष्ठपदं प्राप्त-मिति प्रसिद्धमितिहासे"। सेयं मतङ्गकथा महाभारतेऽनुशासनपर्वणि (२७।२९) अध्यायेषु विस्तरेणोपलभ्यते। तत्र हि ब्राह्मणताप्राप्तये घोरं तपस्यता मतङ्गेन ब्राह्मणत्वं तु न प्राप्तम्। किन्तु श्रेष्ठत्वं प्रतिष्ठादिकं च लब्धं दृश्यते। संयुत्तनिकाये च बुद्धदेवस्य यक्षेण संवादो महाभारते

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वनपर्वणि उपलभ्यमानं यक्षयुधिष्ठिरसंवादमनुकरोति। सुत्तनिवासे सेठसुत्ते (६१) च ब्रह्मेन्द्रमहेश्वरादिदेवानां स्वर्गनरकपातालादिलोकानां च सत्तां भगवान् बुद्धो मन्यते स्म इत्युक्तम्। पाथिकसुत्तो (दी० नि० ३।१) मल्लानामेकत्रं प्रजातन्त्रे बुद्धदेवस्य भार्गवगोत्रेण परिव्राजकेन संवाद उपनिबद्धः। तत्र ये ब्रह्माणं जगत्कारणं मन्यन्ते तेषामुपहासो भगवता बुद्धेन कृतः, अयं ब्रह्मा विमानाधिरूढः कश्चित्प्राणिविशेष उक्त इति पुराणप्रोक्तो ब्रह्मा तत्रोपहसितः स्यात्। केवटसुत्ते दीग्घनिकाये (१।११) चापि जगत्कर्तुर्ब्रह्मण उपहासो बुद्धदेवेन कृत इत्युक्तम्। अत्रान्येषां महाराजिकदेवानामपि नामानि लभ्यन्ते। एवं ब्रह्मसुत्तो मज्झिमनिकाये (१।५।६) भगवान् बुद्धः स्वयं ब्रह्मलोके गत्वा ब्रह्मलोकस्य ध्रुवत्वं मन्यमानं ब्रह्माणं निर्भर्त्स्य लोद्धकस्याध्रुवत्वं ख्यापयामासेत्युक्तम्। विज्जसुत्ते दीग्घनिकाये (१।१२) च वसिष्ठब्राह्मणः कर्मभिर्यागादिभिर्ब्रह्मलोकप्राप्तिं जगाद तं भगवान् बुद्धः प्रत्याचख्यौ इत्याद्युक्तम्। एभिर्बहुभिः प्रमाणैर्भगवतो बुद्धदेवस्य पुराणपरिचयः सिद्ध्यति। तेन भगवतो बुद्धात् प्राक्तनानि पुराणानीति सुस्पष्टमेव। भगवतो बुद्धस्य च निर्वाणं ईशुख्रीष्टात् प्राक् पंचम्यां शताब्द्यां यूरोपीया अपि मन्यन्ते। भारतीयदृष्ट्या ततोऽतिपुरातनो बुद्धकाल इति ततः प्राग्भवत्त्वे महापुराणादीनामस्मदुक्त एव समयः समायाति। महाभारतपुराणादीनां च समकालिकतायाः प्राक् प्रतिपादितत्वात्। महाभारतमीमांसाकारः श्रीचिन्तामणिविनायकवैद्यो लोकमान्यः श्रीबालगंगाधरतिलकमहाभागश्च स्वीये गीतारहस्ये बहुधा युक्तिभिर्महाभारतस्य भगवतो बुद्धात् प्राक्तनत्वं प्रसाध्यापि केवलं महाभारते वनपर्वणि (१६० अ० ६८ श्लो०) भविष्यकथने देवस्थानेषु।

"एडूकचिह्ना पृथिवी न देवगृहभूषिता।"

इति पाठदर्शनेन बुद्धदेवादर्वाचीनत्वं महाभारतस्य घोषितवन्तौ। यतो हि एडूकं नाम अस्थ्यङ्गितानि कुड्यानीति। इयं चास्थ्नां कुड्येषु चयनप्रक्रिया बौद्धेष्वेव दृष्टेति तयोर्मतम्। बौद्धसभ्यतायामिमानि डागोवा इत्युच्यन्ते। तेषां वर्णनं यदा महाभारते प्राप्तम्-तदा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

महाभारतस्य बुद्धकालादर्वाचीनता स्फुटीभूतैवेति, सैषा महतामपि महतीभ्रान्तिः। अन्यानि दृढतराणि प्रमाणान्युपेक्ष्य केवलमेकशब्ददर्शन-मात्रेणेतादृशव्यत्यासकरणं सर्वथा साहसमात्रमिति। दृश्यते चाद्यापि श्रुत्यनुयायिषु भारतीयेष्वियं प्रथा। राजस्थानप्रान्ते हि स्ववंशीयमृत्योरन-न्तरमेतादृशानि गृहाणि प्रसादा वा निर्मीयन्ते येष्वन्तस्तेषामस्थीनि कति-चित् स्थाप्यन्ते। अन्येषामपि विशिष्टानां धनिकानां तथाविधानि गृहाणि निर्मीयन्ते, यानि "छतरी" इति तस्मिन् प्रान्त उच्यन्ते। पूजाप्रबन्धोऽपि तत्र भवति। तस्माद् बौद्धेभ्य इयं प्रथा गृहीता इत्यत्र न किमपि दृढं प्रमाणम्।

भासकविना "प्रतिमा" नाटके अयोध्यानगर्या बहिस्तथाविधस्य प्रासादस्य वर्णनं कृतम्, यत्र दिलीपप्रभृतीनां राज्ञां प्रतिमाः प्रतिष्ठिता आसन्। महाराजदशरथस्य मरणादनन्तरं मातुलकुलात्परावृतेन भरतेन तत्र कञ्चित्कालं विश्राम्यता दशरथस्य प्रतिमां तत्र दृष्टैव व तन्मरणवृत्तमनु-मितम् तत्रत्येन पूजकेन भरतं ब्राह्मणं मत्वा तत्र प्रणाम निषेधोऽपि कृतः। तेन भासकाले चैत्यप्रासादनिर्माणप्रथा स्पष्टीभवति। वाल्मीकीये रामायणे चापि चैत्यप्रासादवर्णनं बहुधा दृश्यते। महाभारतेऽपि "देवा-लयेषु चैत्येषु" एडूकचिह्ना पृथिवी भविष्यतीत्येवोक्तम्। तेन चैत्येषु तथाविध कुड्यनिर्माणप्रथा प्रागप्यासीत्। परं शिष्टानां ब्राह्मणादीनां तत्र पूजा प्रणामादिकं नोचितं मन्यते स्म। तत एव चैत्यवन्दननिषेधा-दिकं धर्मग्रन्थेषूपलभ्यते। तदेतदग्रे मनुष्याणामल्पज्ञत्वे भूतप्रेतादिषु विशेषेण विश्वासे च प्रचलितं भविष्यतीत्येव महाभारततात्पर्यम्। इतः परमपि विचार्यमाणे आश्वलायनगृह्यसूत्रे (४।५ क) अस्थि संचयविधाने अस्थीनि संचित्य "यत्र सर्वत्र आपोनाभिष्यन्देरन् अन्या वर्षाभ्यः, तत्र गर्ते अवदध्युः, एतस्य उत्तरेण पांसूनवकिरेत्। अवकीर्योत्तराम् उत्तोस्तना-मीति कपालेनापिधाय। यथानवेक्षान् प्रत्याव्रज्या उपस्पृश्य श्राद्धमस्मै-वधुः" इति अस्थ्नामुच्चस्थाने गर्ते निधानम्, तस्य गर्तस्य पांसुभिः प्रच्छादनम्, उपरिप्रस्तरकपालादिविधानं च विहितम्। तदेव क्रमेण

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

भित्तिप्रासादनिर्माणरूपतां गतम्, इति स्पष्टमनुमीयते। "आश्वलायन-गृह्यसूत्रं" च बौद्धमतप्रचारात् बहुपूर्वकालिकम्, तत्र शूलगवादिषु अनुस्त-रण्यादिषु च बहुलं हिंसाविधानदर्शनात्। गृह्यसूत्रादिषु च यद्विधीयते, तद्वेदमूलकमेवेति "विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसतिह्यनुमानम्" इति मीमांसायां सिद्धान्तितम्। तस्मादनादिमूलैवेयं सिद्ध्यति। पूर्वं तत्र पूजादिकं निषि-द्धमासीत्। किन्तु कालेन मनुष्याणां भूतप्रेतविश्वासाधिक्ये इमे एव प्रासा-दाद्याः पूज्या भविष्यन्तीत्यनुमाय महाभारते भविष्यकथने निन्दारूपेण तत्कथनम्। तस्माद् भारतीयेषु वैदिकेष्वेव एडूकप्रथा जन्म, नतु बौद्ध परभवत्वं तेनानुमेयम्। न च बौद्धेषु प्रसिद्धस्य डागोबा शब्दस्य एडूक-शब्देन कोऽपि संबन्धो भाषाविज्ञानरीत्या सिद्ध्यति।

किंच महाभारते भविष्यकथनमेतत्। भविष्यकथनन्तु सर्वेष्वेव पुराणेषु लभ्यते, यत्र तादृशान्यपि भविष्याण्युक्तानि, यानि अत्यर्वा-चीने काले प्रवृत्तानि अद्यापि न जातानि वा। तत्र द्वयी गतिः— ये योगद-र्शनस्य विभूतिपादोक्तरीत्या भविष्यार्थज्ञानमपि योगचर्यया संभवतीति विश्वसन्ति ते तु पूर्वमेव ऋषिमुनिप्रभृतिभिर्भविष्यं विज्ञाय तन्निर्देशः कृतः, न तु तत्काले तादृशी प्रवृत्तिरासीदिति मन्यन्त एव। ये तु भविष्य-ज्ञाने न विश्वसन्ति,— ते तादृशा अंशाः पुराणादिषु पश्चात् कैश्चिद्विद्वद्भिः प्रक्षिप्ता इत्येव ब्रूयुः, पुराणान्येव तादृशवृत्तसंघटनोत्तरं निर्मितानीति तु न केनापि मन्तुं वक्तुं वा शक्यते, दृढतरप्रमाणान्तरविरोधापत्तेरिति। सैव द्विविधा गतिर्महाभारतस्य भविष्यकथनेप्यनुसर्तव्या। तत्रैव प्रकरणे—

आन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च यवनाश्च नराधिपाः।
कम्बोजा बाह्लिकाः शूरास्तथाऽभीरा नराधिपाः॥

इत्यप्युक्तम्। न ह्येषां सर्वेषां भारते राज्यप्रतिष्ठानन्तरं महा-भारतग्रन्थनिर्माणं वक्तुं शक्यते— वक्ष्यमाणवैदेशिकप्रमाणानामपि विरोध-प्रसङ्गात् तत्रैव च—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

करभारभयाद्विप्राः भजिष्यन्ति दिशो दश ।
आश्रामानुपलप्स्यन्ति फलमूलोपजीविनः ॥

इति यद्वर्णितम्— तत्तु वर्तमानानां भारतस्य दशामनुध्यायेति वक्तव्यं स्यात् । नह्येदृशः करभारः पूर्वं कदापीतिहाससिद्धः । एवम्

पञ्चमे वाथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते ।
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च प्रयास्यन्ति नरास्तदा ॥
(श्लो० ४६)

इति त्वद्यापि न जातम् । यदि कदाचिदेवं विधो व्यतिकरो भविष्यति तदा तदुत्तरभवा पुरुषास्तदुत्तरकालिकमहाभारतनिर्माणं स्थापयिष्यन्ति । तस्माद् भविष्यकथने यद्यदुक्तम्– ततः परभवत्वकल्पनं पुराणादीनामुपहासास्पदमेवेति ।

तस्मादेडूकचिह्ना पृथ्वीति दर्शनमात्रेण सर्वस्य महाभारतस्यार्वाचीनत्व प्रकल्पनमतिसाहसमेव । महाभारतपुराणादिकं स्वरूपतो श्रीमतो बुद्धात् प्रागेव संघटितमासीत् । क्वचित् क्वचिदंशप्रक्षेपः पश्चादपि जातः इत्येव मन्तव्यम्, यत्र तस्यांशस्य पुरा प्रचलितत्वाभावो दृढतरेण प्रमाणेन सिद्धः स्यात्, इदं च पुराणेषु दृष्टं भविष्यवंशादिकमस्मामिरस्य ग्रन्थस्य तृतीये खण्डे इतिहासस्कन्धाभिधे विस्तरेण विचार्यतेत्यत्र न विक्रियते ।

इह तु जैनबौद्धादिवाङ्मयादपि पुराणानां प्राक्तनत्वमेव सिषाधयिषितम्, तच्च बहुधोपपादितमेव । अन्यदपि किञ्चिदुच्यते ।

लोकमान्येन श्रीबालगंगाधरतिलकमहोदयेन स्वीये गीतारसस्ये, श्रीमदाचार्यनरेन्द्रदेवमहाशयेन च स्वीये बौद्धधर्मदर्शने सुत्तनिपाते मुनिसुत्ते धम्भिकसुत्ते वोसेलसुत्ते चोक्तनां भगवतो बुद्धस्य शिक्षाणां बुद्धीनां भगवद्गीतामूलत्वं प्रसाधितम् विस्तृतया लोचनया । बौद्धधर्मेजैनधर्मे च भागवतधर्मापराभिधात् भक्तिमार्गात् बहवोंऽशा गृहीता इत्यपि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

बहुत्र स्पष्टीकृतम् । डाक्टर केर्नमहोदयेन १८९६ खिूस्ताब्दे बौद्धधर्म-विचारमधिकृत्य ग्रन्थो लिखितः, तेनापि बौद्धानां महायानमार्गे कर्मयोग-विषयका विचाराः श्रीमद्भगवद्गीतात एव गृहीताः, तत एव च निवृत्ति-प्रधाने बौद्धधर्मे प्रवृत्तिमार्गस्यापि समावेशो जात इति स्वीकृतम् । बौद्धेन विदुषा श्रीतारानाथेनापि एतदेव स्वीकृतम्, यन्महायाने प्रवृत्ति प्रवेशो भगवद्गीतामाधारी कृत्यैवेति ।

जातक कथास्वपि "भगवान् कृष्णो न जातिप्रथां बहुमन्यते स्म, तत एव मातङ्गी जाम्बवती तेन विवाहितेत्यादि जाम्बवतीविवाहकथा भागवतोक्ता विकृतीकृत्योद्धृता । वियलस्टार कृते "पद्मचरिते" च बले वैराग्यकथापि पौरणिककथाया एव रूपान्तरम् । अनामकजातके च श्रीसमह्यापिचरितंविकृतीकृतमुपलभ्यते। तस्माद् बौद्धवाङ्मयात् पुराणानि प्राक्तनानि । पुराणेभ्यस्ते तेंऽशा बौद्धवाङ्मये गृहीता इति स्पष्टं सिद्ध्यति ।

यत्त्विदमुच्यते पुराणेषु बौद्धजैनविरक्तप्रसिद्धाः श्रमणक्षपणकादि शब्दाः श्रूयन्त इति बौद्धजैनेभ्योऽर्वाक्तनत्वमेव पुराणानामनुक्तमपि सिद्ध्यतीति । जैनबौद्धादिमतानि नास्तिकमतानि, तदनुयायिविवरणं चापि पुराणेषु दृश्यमानमर्वाचीनत्वमनुमापयतीति, तदपि न विचारसहम् । एषां शब्दानामवस्थाविशेषबोधकतया प्रागपि प्रसिद्धिसंभवात् । बौद्धजैनाचार्यै सिद्धान्ताः परिगृहीताः, त उपनिषत्स्वेव स्थाने संकेतिता उपलभ्यन्ते ।

"असद्वा इदमग्र असीत् ततो वै सदजायत ।"

(तै० उ० ब्रह्मानन्दवली ७ अनु)

इति बौद्धाभिमतोऽसद्वाद उपन्यस्तः । क्वचितु असद्वादमुपन्यस्य तन्निराकरणमपि श्रूयते "तद्ध्येक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्, तस्मादसतः सज्जायते । कुतस्तु खलु सौम्यैवं स्यादिति हो वाच कथमसतः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सज्जायतेति, सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्॥ (छन्दोग्योप०६ प्रपा० २ ख० १०२) इत्यादि बहुत्रासद्वादोपक्षेपः। "को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्, कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।" इत्यादिना ऋग्वेदस्य सुप्रसिद्धे नासदीयसूक्त एवानिर्वचनीय वादो मन्त्रेऽपि श्रूयते। क्षणिक वादो जगतो दुःखरूपतावादश्चोपनिषत्सु सर्वत्रैव सुलभः।

"किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता - जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।
कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।"

संयोग एषां नत्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः।

(श्वेताश्वरोप० १।१-२)

स्वभावमेके कवयो वदन्ति, कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः॥

(श्वेताश्वर ६।१)

"सच्चासच्चाभवत्", तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदु अन्तिके॥

(ईशोपनिषत्)

इत्यादिषु स्वभाववादोऽनैकान्तवादश्चाप्युपन्यस्तः। वस्तूनां रूप परिवर्तनं च। "अपागादग्नेरग्नित्वम्" इत्यादिना उद्दालक श्वेतकेतुसंवादे छान्दोग्योपनिषदि बहुधा विवृत्तम्।

"स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति।"
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः।
इत्यादौ जीवस्य शरीराकारानुविधायित्वमपि विक्रियते।

कर्मबन्धश्चाप्यत्रान्यत्र च स्फुटः। किमन्यद्—

"विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्यवानुविनश्यति,
न प्रेत्यसंज्ञास्ति।" (छान्दोग्योप ४अ०४।१२)

इति सर्वथा नास्तिकवादोप्युपन्यस्तो दृश्यते। अग्रे निराकृत इत्यन्यदेतत्। तदेवं क्रमिक बौद्धशृङ्खलापतितानि उपनिषत्सु पूर्वपक्ष-रूपेणोपन्यस्तानि मतान्येवोपजीव्य चार्वाकजैनाचार्यैः स्व स्व दर्शनेषु

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तान्युपबृंहितानि मतानि तु आस्तिक नास्तिकानां सर्वाण्यप्यनादिकालादेव प्रचलितानीति तद्विवरणेन न पुराणादीनामर्वाचीनत्वकल्पनाऽयुक्तमती। बहवः संन्यासभेदा अनादिकालादेव प्रचलन्तीति तन्नामदर्शनादपि ग्रन्थसमयकल्पना न साधीयसी। बौद्धसंन्यासिषु प्रसिद्धः श्रमणशब्दः शतपथब्राह्मणेऽपि दृश्यते—

"श्रमणे अश्रमणः, तापसो अतापसः"

(शतप० १४ का० ७ अ० १ ब्रा० २२ क)

इति। सुषुप्तिदशामुपक्रम्येदमुक्तम्, तदा सर्वेभिमाना निवर्तन्त इति। एवं क्षपणशब्दोऽपि शाङ्खायनारण्यके दृश्यते। श्रीगुरुचरणैः स्वग्रन्थेषु क्रियाद्वैतवादिषु श्रमणशब्दः श्रमशब्दस्य क्रियावाचकत्वात् तं श्रमं मुख्यमातिष्ठमानाः श्रमणा इति, ज्ञानैकाद्वयवादिषु च ब्राह्मणशब्दः, ब्रह्मशब्दस्य ज्ञानवाचकत्वादिति स्फुटं निरूपितम्। इवं क्षपयन्ति कर्ममलानीति क्षपणका इति शब्दोऽयमपि यौगिक एव। पुरातना एव शब्दा इमे इति अन्येषु दृढेषु सत्सु तादृशशब्दमात्रदर्शनेन कस्यचिद् ग्रन्थस्यार्वाचीनत्वकल्पना सर्वथैव निःसारा।

यच्च दपन्ति जैनबौद्धप्राक्तनग्रन्थेषु महाभारतपुराणादिनाम न दृश्यते इति तेषां ततो अर्वाचीनत्वं ख्यापयति इति। तदपि कुशकाशावलम्बनमात्रम्। महाभारतपुराणादिसिद्धान्तानां सकेतस्तेषां ग्रन्थेषु लभ्यत इति विस्तरेण प्रत्यपीपदाम। नामोल्लेखस्तु प्रतिपक्षिभिः प्रतिपक्षिणां कुतः क्रियेत् ? खण्डनीयत्वेन नामोल्लेखः संभाव्येत, प्रमाणत्वेन वा। तत्र जैनबौद्धादीनां याज्ञिकहिंसयैव सह मुख्यो विरोध इति यज्ञप्रतिपादका वेदा एव तैः खण्डनीयत्वेन गृहीताः। महाभारतपुराणादीनि तु सृष्ट्यादिस्थापकानि, तेषां दार्शनिकप्रक्रियायामेव निराकरणं जैनबौद्धादिभिः क्रियते, तत्र च दार्शनिका ग्रन्थाः सूत्राद्याः पूर्वपक्षत्वोनानूमन्तं पुराणादिषु तत्प्रतिपादनं तु गौणमेव मन्यत इति न तन्नामोल्लेखः वंशेतिवृत्तादिभ्यः पुराणादिप्रतिपादितेभ्यस्तु तत्तद्विरोध इति खण्डनीयत्वेन नाम ग्रहणं न

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्राप्तम् प्रामाणत्वेन नामग्रहणन्तु प्रतिपक्षग्रन्थानां कथमेव संभवेत्। न च तदात्वे सर्वे ग्रन्थाः सर्वेषां सुलभा आसन्निति तन्मतानुवादस्तन्नाम ग्रहणं च न सुकरमासीत्। यथा तेषां प्राचीनग्रन्थेषु पुराणादिग्रन्थानां नामाग्रहणम् तथा पुराणादिषु तद्ग्रन्थानामपि नामाग्रहणमिति केन कस्य प्राचीनत्वमर्वाचीनत्वं वा समर्थ्यताम् सिद्धान्तसंकेतस्तु उभयोरप्युभयत्र खण्डनीयत्वेन कञ्चिद् प्राप्त्यत्वेन वा दृश्यत एव। अर्वाक्तनेषु ग्रन्थेषु तु नाम ग्रहणमपि दृश्यत एवेति।

ये तु केषुचित् पुराणेषु भगवतो बुद्धस्यावतारेषु गणना दृश्यते सा भविष्यद् रूपेणव दृश्यते। भविष्यकथनं च पुराणानामत्र तृतीय इतिहासखण्डे विचार्येत। जैनानां प्रधानस्य तीर्थंकरस्य ऋषभदेवस्यावतारत्वं यद्भागवत उक्तम्, स ऋषभदेवस्त्वति पुरातनः सत्ययुगीय इति तत्रैव स्पष्टम्। एतस्याभिप्रायमबुद्ध्वा कलौ केचनार्यसिद्धान्तान् प्रवर्तयिष्यन्तीति तु भविष्यकथनमेव। तस्माज्जैनबौद्धेभ्योऽर्वाक्तनत्वं पुराणानां न कयापि युक्त्या द्रढीभवति दृढप्रमाणविरोधे ता युक्तय उपेक्ष्या एवेति।

ज्योतिषाधारेण विचारः

अथ ज्योतिषाधारेणापि महाभारतपुराणादिसमयविचारः कैश्चिद् विद्वद्भिः पाश्चात्यैर्भारतीयैश्च कृतः। तस्याप्यालोचनमत्र प्रासङ्गिकम्। तत्र त्रिशुवद्वृत्तक्रान्तिवृत्तयोः संपातबिन्दुः क्रमेण पूर्वस्थानात् प्रचलतीति सर्वैरेवाऽभ्युपगतम्। एषा गतिश्च पश्चिमाभिमुखी भवति, अर्थात् येन क्रमेणास्माभिर्नक्षत्राणां गणना क्रियते, तद्वैपरीत्येन संपातविन्दुः प्रचलति, अश्विनीमतिक्रम्य रेवत्याम्, रेवतीमतिक्रम्योत्तरभाद्रपदायामित्यादि। द्वासप्तत्यावर्षैरेकांश :परिमिता तद्गतिरद्यत्वे पाश्चात्यैर्निश्चिता। एकैकं नक्षत्रं च विंशतिकलाधिकान् त्रयोदशांशानभिव्याप्नोति। तेन षष्ठ्यधिकया नवशत्या वर्षाणां संपातविन्दुरेकं नक्षत्रमतिक्रामति। संपातबिन्दुश्च यदा यस्मिन् नक्षत्रे भवति, तदेव

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

नक्षत्रामादौ परिगण्यते स्म पुरेति आधुनिकैः सिद्धान्तितम् । अद्यत्वे या अश्विनीमारभ्य नक्षत्रगणना प्रचलति सा वराहमिहिराचार्येण प्रवर्तितेति बहवो मन्यन्ते । वराहमिहिरकाले अश्विन्यारम्भे संपातविन्दुरासोत् उत्तराषाढाया द्वितीयचरणे चोत्तरायणप्रवृत्तिरासीदिति तेन स्वग्रन्थे लिखितम् । अद्य तु (२०१५ वैक्रमेऽब्दे) उत्तराभाद्रपदाया प्रथमचरणे चतुर्थेंशे संपातविन्दुः, मूलनक्षत्रस्थतृतीयचरणारम्भे चोत्तरायणं भवति । तेन वराहमिहिरकालादद्य यावद् रेवतीनक्षत्रस्य १३।२०, अंशा, उत्तरभाद्रपदायाश्च प्रायो दशांशा इति संभूय त्रयोविंशति-परिमितानंशान् किञ्चिदधिकान् संपातविन्दुः प्रचलितः । तेनार्द्धाधिका षोडशशताब्दी वराहमिहिराचार्यादनन्तरं व्यतीतेति निश्चीयते । वेदाङ्गज्योतिषे च धनिष्ठाया आरम्भ उत्तरायणमुक्तम्, ततश्च भरण्या दशमेंशे संपातविन्दुः सिद्धः । उत्तरायणादेकस्मिन् चतुर्थेंशे खगोलस्य गतौ संपातविन्दुर्भवति, तेनोत्तरायणस्य संपातविन्दोश्च पादोन-नक्षत्रसप्तकव्यवधानं भवतीति सुनिश्चतोऽर्थः । ततश्च वेदाङ्ग-ज्योतिषनिर्माणकालादद्य यावत् कियदूनात् सप्तचत्वारिंशदंशात् प्रचलितः संपातविन्दुरिति तेषां द्वासप्तत्या गुणने षष्ट्युत्तरा चतुस्त्रिंशच्छती वर्षाणां (३४६०) वेदाङ्ग ज्योतिष निर्माणस्य व्यतीतेति सिद्ध्यति ।

तमेतमेवं विधया प्राप्तं कालमैतिहासिकाः परमप्रमाणभूतं मन्वते । एवमेव महाभारते नक्षत्रगणना कृत्तिकातोऽनुमीयते ।

अनुशासनपर्वणि हि (६४ अ०) युधिष्ठिरं प्रति भीष्मो नारद-देवकीसंवादरूपेण नक्षत्रदानकल्पमुपदिशन् कृत्तिकायां दानफलमादौ भरण्यां चान्ते ब्रवीति । एवं तस्मिन्नेव पर्वणि ९ अध्याये च नक्षत्रेषु श्राद्धफलानि प्रतिपादयन्नपि कृत्तिकादिभरण्यन्तमेव श्राद्धफलमाह । तेन कृत्तिकायां तदात्वे संपातविन्दुः स्यादित्यनुमीयते । कृत्तिकायां कस्मिन्नंशे संपातविन्दुरासीदिति तु न तत्र स्पष्टमुल्लिखितम्, परं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

स्थानद्वये श्रवणादीनि नक्षत्राणीत्यपि दृश्यते। अश्वमेधपर्वणि तदनन्तरे अनुगीतापर्वणि ४४ अध्याये कयोश्चिद् गुरुशिष्ययोः संवादरूपेण भगवान् कृष्णोऽर्जुनं ब्रह्मतत्त्वं बोधयति। तत्र गुरुःशिष्यं प्रति ब्रह्माण ऋषीन् प्रत्युपदेशमाह। तत्र प्रसङ्गेनेदमुच्यते ब्रह्मणा—

यदादिमध्यपर्यन्तं ग्रहणोपायमेव च।
नामलक्षणसंयुक्तं सर्वं वक्ष्यामि तत्वतः॥ १॥

अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासाः शुक्लादयः स्मृता।
श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादयः॥ २॥

भूमिरादिस्तु गन्धानां रसानामाप एव च।
रूपाणां ज्योतिरादित्यः स्पर्शानां वायुरुच्यते॥ ३॥

गायत्री छन्दसामादिः प्रजानां सर्ग उच्यते।
गावश्चतुष्पदामादिर्मनुष्याणां द्विजातयः॥ ७॥

सर्वेषां भक्ष्यभोज्यानामन्नं परममुत्तमम्।
द्रवाणां चैव सर्वेषां पेयानामाप उत्तमाः॥ १०॥ इत्यादि।

अत्र नक्षत्राणां श्रवणादित्वं स्पष्टमुक्तम्। एवमादिपर्वण्यपि ७१ अध्यायेन विश्वामित्रस्य कार्यप्रसङ्गे—

प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार सः।
गुरुशापहतस्यापि त्रिशङ्कोः शरणं ददौ॥ ३४॥

इति नक्षत्राणां श्रवणपूर्वकत्वं विश्वामित्रेण स्थापितमित्युक्तम्। अत्रोभयत्र श्रवणस्यादित्वं संपातेन तु न व्यवस्थापयितुं शक्यते, अत्यधिककालप्रसक्तेः। किन्तु उत्तरायणं श्रवणनक्षत्रे भवेदिति लोकमान्यो महाविद्वान् श्रीबालगंगाधरतिलकमहोदयः स्वीये गीतारहस्ये, चिन्तामणिविनायकमहोदयश्च महाभारतमीमांसायां मन्येते। वेदाङ्गज्योतिषे धनिष्ठायामुत्तरायणमुक्तमिति एकनक्षत्रसंपातस्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

गतिः । ततः षष्ट्यधिकनवशतवर्षानन्तरं महाभारतग्रन्थनिर्माण-कालस्ताभ्यां सिद्धन्तितः । श्रीतिलकमहोदयः शकसंवत्सरात् पञ्च-शताब्द्याः पूर्वम् इतः ३३८० वर्षपूर्वमहाभारतग्रन्थनिर्माणकालं मन्यते चिन्तामणिविनायकमहाशयस्तु इतोऽपि सार्द्धशतकमपकृष्य यीशुखिृष्टतः २५० वर्षेभ्यः प्राक् (इत. २३०८ वर्षेभ्यः प्राक्) तद्ग्रन्थनिर्माण-मनुमिनोति । परमत्रेदं विचार्यम् यदि श्रवणस्यादावुत्तरायणं स्यात्-तर्हि ततः पादोनसप्तनक्षत्रान्तरिते आश्विन्यास्तृतीयचरणान्त एव संपात-विन्दुः स्यादिति कृत्तिकायां संपातविन्दुः कथमुपपद्येतेति महतामपि महती भ्रान्तिरियं प्रतीयते । वेदाङ्गज्योतिषे हि धनिष्ठाद्यावुत्तराय-णमुक्तमिति भरण्यास्तृतीयचरणान्ते चतुर्थचरणारम्भे वा संपातविंदुः सिद्ध्यतीति सन्निहितत्वात् कृत्तिकानक्षत्राणामादौ कथंचिद् गणयितुं शक्यते । अश्विन्यामेव संपाते तु अन्ततो भरणीतो नक्षत्रगणना संभवेत् । कृत्तिकातस्तु नक्षत्रगणना या महाभारते उपपादिता, ताभ्या-मपि चाभ्युपगता - सा नैव संभवेत् । चिन्तामणिविनायकमहाश-यस्तु अपकर्षपक्षपातिनो मते श्रवणादावुत्तरायणमपि नायाति प्रत्युतोत्तरा षाढायाश्चतुर्थचरणे गच्छतीति न सूक्ष्मविचारकेणापि तेनार्वाचीनता साधिताभिनिविष्टेन विचारितमित्याश्चर्यमेव । वस्तुतस्तु महाभारतस्य प्रकरणान्तरपर्यालोचनया महाभारतकाले कृत्तिकान्ते रोहिण्यारम्भे रोहिण्याः कतिषु चिदंशेष्ववशिष्टेषु वा संपातविन्दुः सिद्ध्यति इति ज्योतिर्विदाभरणे राजस्थानीयेन श्रीमल्लिनाथमहोदयेनाधुनैव सिद्धा-न्तितम् । तथा हि महाभारतवनपर्वणि मार्कण्डेयसमस्याप्रकरणेति रहस्यमय (अ० २३०) स्कन्दोपाख्याने इमे श्लोकाः दृश्यन्ते ।

श्रिया जुष्टं महासेनं देवसेनापतिं कृतम् ।
सप्तर्षिपत्न्यः षड्देव्यस्तत् सकाशमथागमन् ॥ १ ।

ऋषिभिः सप्तभिस्तस्य धर्मयुक्ता महाव्रताः ।
दृष्टमागत्य चोचुस्ता देवसेनापतिं प्रभुम् ॥ २ ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वयं पुत्र परित्यक्ता भर्तृभिर्देवसम्मितैः ।
अकारणाद्रुषा तैस्तु पुण्यस्थानात् परिच्युता ॥ ३ ॥

अग्रे इन्द्रः स्कन्दमाह—

अभिजित् स्पर्द्धमानात्तु रोहिण्याः अनुजा स्वसा ।
इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तुं वनं गता ॥ ८ ॥
तत्र मूढोस्मि भद्रं ते नक्षत्रं गगनाच्युतम् ।
कालं त्विमं परं स्कन्द ब्रह्मणा सह चिन्तय ॥ ९ ॥
धनिष्ठादिस्तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः ।
रोहिणी ह्यभवत्पूर्वमेवं संख्या समाभवत् ॥ १० ॥
एवमुक्ते तु शक्रेण त्रिदिवं कृत्तिका गता ।
नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद् वह्निदैवतम् ॥ ११ ॥

पौराणिकपद्धत्या आख्यायिकारूपेयमुक्तिः । अस्या आशयमुद्घाटयति मल्लिनाथमहाभागो ज्योतिर्विद्, तमाधारीकृत्येत्थं व्याख्यातुं शक्यते-यत्पूर्वं देवयुगे अभिजितोऽपि नक्षत्रमध्ये गणनासीत् । अत एव तैत्तिरीयब्राह्मणस्य तृतीयकाण्डे द्वितीयेऽनुवाके नक्षत्रयोगे नक्षत्रान्तराणामिवाभिजितोऽपि याज्यानुवाक्या उक्ताः, ब्रह्मा चास्याधिष्ठाता देव उक्तः । अन्यत्रापि च नक्षत्रगणने अभिजिन्नाम उत्तराषाढाश्रवणयोर्मध्ये समाम्नातमस्ति । यत्र संपातविन्दुः तत्प्रधानं नक्षत्रं तु राजेव प्रजाजन गणनायां नक्षत्रसंख्यायां न गण्यते स्म । अथापि बहवोऽभिजितं नक्षत्रेषु गणयन्ति, परं तस्यांशान् पृथङ् न कल्पयन्ति । प्रत्यहं मध्यान्हे तस्य भोगं कल्पयन्ति । महाभारतेऽपि मध्यान्हेऽभिजिद्व्यवहारो दृश्यते यथोक्तमादिपर्वणि (अ० १२३)—

ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्तौ मुहूर्तेऽभिजितेऽष्टमे ।
दिवा मध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेति पूजिते ॥६॥

समृद्धयशसं कुन्ती सुषाव प्रवरं सुतम् ।
जातमात्रे सुते तस्मिन् वागुवाचाशरीरिणी ॥७॥ इति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

गणना त्र तस्य श्रवणात्पूर्वं क्रियते । किन्तु महाभारतकाले रोहिण्या अनन्तरं तस्य गणना प्रचलितासादित्यनुमीयते । अतएव सा कनीयसी स्वसेत्युक्ता । रोहिण्या अनन्तरमभिजितो गणनाया अद्यतनव्यवहारसामञ्जस्येन इयमेव युक्तिर्भवेत् यद् रोहिण्यां संपातविन्दुरासीत्, तैस्तत्रैव मध्याह्नः कल्प्यते स्म । यद्यपि संपातविन्दुस्थाने देवान्तं दिनोदयकल्पनं युक्तम् । ये हि प्राणिनो यावत्कालं सूर्यं पश्यन्ति तावत् तेषां दिनम् अदर्शनकाले तु रात्रिरित्यस्मद् दृष्टान्तेनैव सुप्रसिद्धम् । खगोलं हि अर्द्धमण्डलं दृश्यं भवति, अर्द्धन्तु अदृश्यामिति, अस्मद् दृष्टान्तेनैव स्पष्टम् । चन्द्रमण्डलस्योर्ध्वभागे अर्थादस्मद् दृश्यभागापेक्षया परभागे पितरस्तिष्ठन्तीति चन्द्रमण्डलसबंन्धविचारेण पञ्चदशदिनानि परभागस्थैः सूर्यो दृश्यते, पञ्चदशदिनानि च न दृश्यते इति पितृणामहोरात्रो मासिको भवत्यस्मदपेक्षया, अमावस्यादिने हि सूर्याचन्द्रमसौ सहैवोदयविन्दो तिष्ठतः सहैव चास्तविन्दौ गच्छत इत्यस्मत् संमुखीने चन्द्रभागे सूर्यरश्मयो नागच्छन्ति परभागेन व्यवहितत्वात् । तस्मात्तस्मिन् दिने चन्द्रमण्डलं नास्माभिरवलोक्यते । परभागस्थितास्तु तस्मिन् दिने सूर्यं स्वशिरः स्थितं पश्यन्तीति स तेषां मध्याह्न कालः । परतस्तु गतितारतम्येन अस्मत् संमुखीने भागे सूर्यरश्मयः क्रमेणाधिकाधिकांशे पतन्तीति चन्द्रस्य कलावृद्धि वयं पश्यामः । यावदंशेऽस्मत्संमुखीने भागे रश्मयः पतन्ति, तावदंशे परभागे ह्रसन्ति, अर्द्धगोलस्यैव दृश्यत्वात् कृष्णाष्टम्यां परभागस्थानां सूर्यस्तिरोहितो भवेत् । पूर्णिमायां यदास्मत्संमुखीनोऽर्द्धभागः पूर्णः प्रकाशते, तदा परभागे न मनागपि प्रकाश इति पितृणामर्द्धरात्रः स कालः । क्रमेण शुक्लाष्टम्यां पुनः सूर्यदर्शनं तेषामित्यादिगणितदृशोन्नेयम् । एवं सुमेरौ स्थितानां देवानामर्धमण्डलस्य दृश्यतया यावदुत्तरगोलार्द्धे सूर्यस्तावत्सूर्यदर्शनम्, दक्षिणगोलार्धस्थितस्य त्वदर्शमिति देवानामहोरात्रोऽस्मदपेक्षया वार्षिकः । एवं विचारे वासंतिकविषुवतसम्पातविन्दुमतिक्रम्येव सूर्यं उत्तरगोले गच्छतीति सम्पातविन्दो देवानां दिनोदयः । शारदसम्पातविन्दोरनन्तरं दक्षिणगोले दृश्ये तु सूर्ये न तेषां

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्यदर्शनमिति मत्वा रात्रिरित्येव सिद्ध्यति। परमर्द्धरात्रादनन्तरमेव दिवसारम्भो गणनीय इत्येव जनसमाजे प्रचलति प्रथा। पाश्चात्या अपि अर्धरात्रादनन्तरमेव वारं तिथिं च परिवर्तयन्ति। इमामेव प्रथामनुसृत्य पितृणां कृष्णपक्षो दिनम्, शुक्लपक्षस्तु रात्रिरिति व्यवह्रियते। देवानां च मकरसंक्रमणदिनै एव अर्थादुत्तरायणारम्भे दिवसारम्भो व्यवह्रियते। यदा चार्द्धरात्रे दिनोदयः मध्याह्ने च रात्र्यारम्भो मन्येत, तदा प्रातरेव मध्याह्नस्वीकारोऽप्यापतति, संपातविन्दौ तया दृष्ट्या देवानां मध्याह्नकल्पनं युक्तिमद् भवति। ततश्च रोहिण्यां सम्पातविन्दौ तत्र मध्याह्नकल्पने तत्कालभवस्याभिजितस्तदुत्तरं गणनं प्रचलितमासीत्। साभिजिद् रोहिण्या ज्येष्ठा भवितुं गतेत्यस्या उक्तेरयमेवाभिप्रायो यदतः परं कृत्तिकाया अन्ते सम्पादतविन्दुरागत इति कृत्तिकाया अनन्तरं रोहिण्याः पूर्वमभिजितो गणना युक्तियुक्ता भवतीति पूर्वं गणनात् सा राहिण्या ज्येष्ठ-भगिनीत्वं प्राप्ता स्यात्। परं "वनं गतौ नक्षत्रं गणनाच्च्युतम्" इत्यादिना अभिजितो गणना नक्षत्रेषु निर्वर्तिता इत्यपि सूच्यते। गणना कथं पूर्णा स्यात्, इति प्रश्नस्य च "रोहिणी पूर्वमभवत् तेन संख्या समाभवत्" इति समाधानं कृतम्। अस्यायमभिप्रायो यत् संपातविन्दुस्थतया सर्वश्रेष्ठत्वेन रोहिण्याः पूर्वं गणना नासीत्, इदानीन्तु कृत्तिका सर्वज्येष्ठा जातेति रोहिण्यपि नक्षत्रेषु गणनीया जातेति। षड्ऋषीणां पत्न्य आगत्य स्कन्दमूचुः– वयं निरपराधा ऋषिभिः परित्यक्ता इत्युक्तेरप्यभिप्रायोऽयमुन्नेतुं शक्यो यद् युधिष्ठिरे पृथिवीं शासति सप्तर्षयो मघास्वासन्निति। यथोक्तं वराहमिहिराचार्येणापि —

"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।"

वृहत्संहितायाम् (३अ० श्लो० ०)

श्रीमद्भागवतेऽप्युक्तम्—

तेनैते ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्सप्त शतं नृणाम्॥ (स्क०१२ अ०२)

ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः॥ (श्लो० २८)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ॥
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ (श्लो० ३१)

ततश्च रोहिण्याद्याः आश्लेषान्ताः षट् ताराः सप्तर्षिभिस्त्यक्ता इति तेनापि पूर्वं रोहिण्या एवादित्वेन गणनासीदिति सिद्ध्यति। अन्यथा सप्तऋषिभिस्त्यक्ता भवेयुरिति षण्णामेव त्यक्तस्य कथनमनुपपन्नं स्यात्। एतेन विचारेण रोहिणीं परित्यज्य संपातस्तदात्व एव कृत्तिकाया अन्ते आयात इति स्फुटीभवति। शक्रेणैवमुक्ते कृत्तिकाः त्रिदिवं गताः— इत्यस्याभिप्रायः कृत्तिकासंपातस्थाने प्राप्तेति स्फुट एव। तत एव कृत्तिकामारभ्य नक्षत्रेषु दानादिविधिः पूर्वोक्त उपपद्यत एव। पूर्वोक्तं राजप्रजान्यायमुपेक्ष्य संपातविन्दुस्थस्यापि नक्षत्रस्य नक्षत्रसंख्यायां गणना तदात्वे देवैः प्रवर्तिता - इत्यप्यनेन संदर्भेणानुमीयते। वर्षारम्भगणना च तस्मात् कालादेव द्वैविध्येन प्रवर्तते, उत्तरायणादिना, संपातादिनेति। अत एव ब्रह्मणा धनिष्ठानक्षत्रस्यादित्वमुक्तम्। इन्द्रेण तु कृत्तिकाया एवादित्वं व्यवस्थापितामिति द्वयमपि संगतं भवति। ततश्च वेदाङ्गज्योतिष-काले भरण्या दशस्वंशेषु संपातः, महाभारतकाले तु कृत्तिकाया अन्ते इति वेदाङ्गज्योतिषकालस्य महाभारतग्रन्थकालस्य षोडशांशान्तरित-संपातकत्वात् सार्धैकादशशतकाब्दव्यवधानं सिद्ध्यति। वेदाङ्गज्योतिष-निर्माणकालात् द्वादशमितेभ्योऽब्देभ्यः प्राक्, इतश्च समयात् षष्ट्यधिक पञ्चशतोत्तरचतुःसहस्राब्दमितेभ्योऽब्देभ्यः प्राङ् महाभारतग्रन्थनिर्माण-कालः सम्पातगणनाप्रक्रियया स्फुटीभवतीति विवेचयन्तु विद्वांसः।

एवं तर्हि ब्रह्मणा धनिष्ठाया आदित्वं कथं व्यवस्थापितम्? तत्रैवोत्तरायणं चेद्वेदाङ्गज्योतिषसमकालिकत्वमेव प्राप्तमिति शङ्क्येत तदा सर्वस्यास्य सङ्गतिं कर्तुं धनिष्ठाया अन्ते तदात्व उत्तरायणं कल्प्यम्। कृत्तिकायास्तृतीयचरणान्ते च सम्पात इति तदपि वेदाङ्गज्योतिषापेक्षया अब्दानां षष्ठ्यधिकनवशतीतः पूर्वं तु महाभारतग्रन्थकालः सिद्ध्यत्येव। "धनिष्ठादिस्तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः" इत्युक्तिभङ्ग्या च

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

शतभिषजः आदिमचरण उत्तरायणं दृष्ट्वा शतभिषजं गतप्रायमवलोक्य ब्रह्मणा घनिष्ठाया आदित्वं व्यवस्थापितमिति वा कल्प्यताम्। वर्षाणां चतुःसहस्रीतोऽर्वाक् तु महाभारतग्रन्थकालः कथं वानया प्रक्रियया नेतुं न शक्यत इति विचार्यम्। मल्लिनाथमहाशयस्तु महाभारतयुद्ध-समकालतामेव ग्रन्थनिर्माणस्य व्यवस्थापयितुं रोहिण्या अर्धाधिकभागान्तरं तदा सम्पातः। अर्द्धाधिकं भागं व्यतीतं विलोक्य देवैः कृत्तिकाया आदित्वं व्यवस्थापितमित्यभिप्रैति। अत्र युक्तायुक्तत्वे सुधीभिरेव विचार्यताम्। कथमप्यास्ताम्। श्रुतावभिजिदपि नक्षत्रेषु गण्यते। महाभारतेऽपि क्वचिद् गण्यते। एकत्र तु तस्य गणनानिवृत्तिरपि सूचिता। वेदाङ्ग-ज्योतिषे च तन्न गण्यते इत्येतावतैव वेदाङ्गज्योतिषात्प्राचीनत्वं तु महाभारतस्य सिद्धमेवेति न केनाप्यपलपितुं शक्यम्।

अथ श्रवणस्यादित्वं यन्महाभारते स्थानद्वय उक्तम्, तस्य का गतिरित चेदत्रास्मन्मत इदं प्रतिभाति - आदिपर्वणि तावद्विश्वामित्रेण श्रवणपूर्वकाणि नक्षत्राणि कृतानीति लभ्यते। तदिदं विश्वामित्रकाले श्रवणस्यादित्वं सूचयेत् न तु महाभारतग्रन्थनिर्माणकाले। विश्वामित्रश्च वैदिकेषु महर्षिषु प्रधानभूत इति तस्य कालो बहुवर्षसहस्रान्तरित आस्तिकजनतादृष्ट्या बहुलक्षवर्षान्तरितो वा सम्भावयितुं शक्यते। ततश्च भवद्दृष्ट्या तस्मिन्काले श्रवणे सम्पातो वा उत्तरायणं वा भवेत्। तथैव तेन नक्षत्रगणना प्रचारिता स्यात् सैव च महाभारतेऽनूदिता स्यात्। तेन महाभारतग्रन्थनिर्माणकालगणनायां न किमपि सिद्ध्यति। तथैवानु-गीतायामपि भगवता श्रीकृष्णेन गुरुशिष्यसम्वादोऽर्जुनं प्रति श्रावितः। काविमौ गुरुशिष्यौ, कस्मिन्काले वा तादृशः सम्वादोऽभूदिति किमपि तत्र नोक्तम्। गुरुणाऽपि ब्रह्मणा ऋषीन् प्रत्युपदेशः श्रावितः। स उपदेशः सर्गादिकाले वा सत्ययुगादिषु वा सम्भवति इति तस्मिन्काले श्रवणस्थं सम्पातं वा उत्तरायणं वा बोधयेत्, न तु महाभारतग्रन्थनिर्माणकाले सा घटना सम्भवति। कलौ ब्रह्मणा सह मनुष्याणामृषीणां संवादासंभवात्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वोऽपि ग्रन्थकृत् स्वसामयिकीं परिस्थितिमेव प्राचीनतारूपेण निर्दिशति इति तु आधुनिकानामेव कल्पना। तथा सति पुराणेषु मिथ्या कल्पना - प्रसूतत्वारोपात् न तावदास्तिकजनैः साभ्युपगन्तुं शक्यते। पुराणेतिहासास्तु यस्मिन्काले या घटना घटते स्म तात्कालिकीमेव तां ख्यापयन्ति, न तु स्वकालिकत्वेन तां परिवर्तयन्ति। मार्कण्डेयसमस्यापर्वणि तु भगवतो मार्कण्डेयस्य युधिष्ठिरेणैव संवाद इति तस्य महाभारतकालसम्बन्धः शक्यते कल्पयितुम्। तेनापि देवयुगीया घटनैवानूदितेति चेत् सुन्दोपसुन्दन्यायहतमुभयमपि महाभारतकालनिर्णये साधकमस्तु।

श्रवणे उत्तरायणकल्पनया तु महाभारतग्रन्थस्यार्वाचीनत्वकल्पना न संभवतीत्येतदेवास्माकं तात्पर्यम्। किञ्च अनुगीतापर्वोक्ते ब्रह्मण-उपदेशे आदिपदं न सर्वत्रारंभभवत्वबोधकमित्यपि तत्प्रकरणपर्यालोचनया स्फुटीभवति। "भूमिः गन्धानामादिः", "आपो रसानामादिः", तेजोरूपाणामादिः, इत्यादिषु पूर्वोदाहृततत्प्रकरणपद्योक्तेषु आश्रयत्वमेवादिशब्दार्थः। सांख्यप्रक्रियायां तन्मात्रासंसर्गश्चैव पूर्वभवत्वेन भूम्यादीनां गन्धादिजन्यत्वेन पूर्वभवत्वस्यासभंवात्। "गावश्चतुष्पदामादिः", "द्विजातयोमनुष्याणामादिः" "भक्षभोज्यानामन्नमादिः" इत्यादिषु च तत्प्रकरणोक्तेषु पूर्वमुद्धृतेषु आरम्भभवत्वरूपोऽर्थो नैव संभवतीति श्रेष्ठत्वमेवादिशब्दार्थआस्थेयो भवति। "ययादिमध्यपर्यन्तं ग्रहणोपायमेव च, सर्वंवक्ष्यामीति", उदाहृतपूर्वे प्रतिज्ञापद्येऽपि आरंभ भवं वक्ष्यामीति नोक्तम्? अपि तु परिचयदानमेव प्रतिज्ञातम्। परिचयस्तु आश्रयाश्रयिभावनिरूपणेन उत्तमत्वबोधनेनापि च संभवत्येव। तथा च श्रवणनक्षत्रस्योत्तमत्वप्रतिपादनायापि श्रवणादीनि ऋक्षाणीत्युक्तं स्यादिति सम्भाव्यते, उत्तमत्वं च श्रवणस्य विष्णुदेवतत्वेनोक्तं स्यात्। तस्मात् संदिग्धमेवेदं प्रमाणं न कालनिर्णयायालम्। किञ्चान्यदपि विचार्यम्, धनिष्ठायामुत्तरायणकालं व्यवस्थापयति वेदाङ्गज्योतिषे माघ मास उत्तरायणकालतयोक्तः।

"प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA
सर्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोस्सदा॥" (वेदा० ज्यो० श्लो० ७)

महाभारतेपि अनुशासनपर्वणि भगवता भीष्मेण स्वनिर्वाणकाले माघशुक्लपक्षे उत्तरायणमुक्तम्। स हि उत्तरायणप्रतीक्षयैव शरशय्यायां शयान आसीत्। शयानेनैव युधिष्ठिरं प्रत्युपदेशः कृतः। अन्ते चेदानीं शरीरं त्यक्ष्यामि, उत्तरायणकालः प्राप्त इति बोधयता तेनोक्तं—

"माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥ इति ॥
(अनुशासन पर्व० अ० १६७ श्लो० २८)

अत्र टीकाकारः श्रीनीलकण्ठः त्रिभागशेषो मास इति व्याख्याय अष्टमीं तिथिं वदति - माघशुक्लाष्टम्यां भीष्माष्टमीतिथित्वख्यातिं परिरक्षितुम्। त्रिभागशेषः पक्ष इति योजनायान्तु दशमी, एकादशी वा संभवति। ततश्च माघशुक्लाष्टमीसन्निधाने वोत्तरायणं लभ्यते। यदि तु श्रवणनक्षत्रादावुत्तरायणं स्यात्, तर्हि वेदाङ्गज्योतिषोक्तापेक्षया पक्षात्पूर्वं प्रवृत्तः स्यादिति माघशुक्लपक्षकथनं नोपपद्येत। महाभारतस्य पूर्वभवत्वं तु शक्यते वक्तुम्। वेदाङ्गज्योतिषे माघकृष्णपक्षे अन्ततो माघशुक्लप्रतिपदि वा उत्तरायणम्, महाभारतकाले तु माघशुक्लदशम्यामिति। तदुक्तं वेदाङ्गज्योतिषे—

प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थं दशमं चैव द्वियुग्मं बहुलेप्यृतौ। श्लो०६।

अस्य व्याख्या तत्रैव दृष्टव्या समीक्षकैः। तदेवमन्ततो दशदिनान्तरे स्थिते ७२० वर्ष पूर्वभवत्वं तु महाभारतस्य सिद्ध्यत्येव। तदित्थं श्रवणारम्भ उत्तरायणं प्रकल्प्य तदनुसारेण महाभारतग्रन्थकालनिर्धारणं श्रीचिन्तामणिविनायकप्रभृतीनां न समञ्जसमिति वर्षाणां चतुः सहस्रीतः प्रागेव महाभारतग्रन्थनिर्माणकालोऽनेकाभिः पूर्वोक्तयुक्तिभिः सिद्ध्यति। स एव पुराणानामपि कालः, एककर्तृकत्वात्, महाभारते पुराणनामोल्लेखदर्शनाच्चेत्युक्तपूर्वमस्माभिः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अत्राधुनिका ज्यौतिषाधारेणेत्थं प्रत्यवतिष्टन्ते यद्वेदेषु महाभारते च मेषादिराशीनां नाम कुत्रापि नोपलभ्यते। पुराणेषु तु प्रायेण सर्वत्रैव मेषवृषादिराशिगणना दृश्यते। तेनानुमीयते - मेषादिराशिकल्पनेयं न भारतीया, भारते तु पूर्वं नक्षत्रगणनैव प्रचलितासीत्। राशिकल्पनेयं यवनेभ्यो भारतीयैः शिक्षिता, गृहीता च। यवनाश्च यूनानीपदवाच्या ईजिप्टपदाभिधेया मिश्रदेशवासिन उच्यन्ते। तैः संपर्को भारतीयानां यद्यपि एलैग्जैण्डरस्य भारताक्रमणानन्तरं जातः, परं सोऽतिस्वल्पः। एलेग्जैण्डरो हि भारतस्यान्तः प्रवेष्टुं न शशाक, पञ्चनदप्रान्तस्य बहिः प्रदेशादेव स निवृत्तः। अनन्तरं क्रमेण यवनानामाक्रमणानि भारते प्रवृत्तानि, तस्माद् द्वित्रशतवर्षानन्तरं भारतीयानां यवनैरधिकः संपर्कोऽभूत्। तस्माद् यीशुख्रिष्टतः प्राग् द्वित्रिशताब्दीमध्य एवेयं राशिगणना भारते प्रवृत्ता, तदुत्तरं च पुराणानां निर्माणमिति महाभारतनिर्माणादत्यपकृष्टः पुराणनिर्माणकालः।

किञ्च मेषादिराशिकल्पनया सहैव नक्षत्रगणनापि - अश्विन्यादि-प्रवृत्ता, सैव प्रायेण पुराणेषु सर्वेषूपलभ्यते। तेनानुमीयते—पुराणनिर्माण-काले आश्विन्यामेव संपातबिन्दुरायात इति। ततश्च वराहमिहिरकाले एव इतः सार्द्धषोडशशताब्द्याः पूर्वं यीशुख्रिष्टस्य तृतीयायां चतुर्थ्यां वा शताब्द्यां पुराणनिर्माणकालः सिद्ध्यति। वराहमिहिराचार्यकाले अश्विन्या आरम्भे प्रथमचरणान्ते वा संपातविन्दुः, पुराणनिर्माणकाले तु अश्विन्या अन्तेऽपि यदि मन्येत, तदपि ततः पञ्चशताब्दीतः पूर्वमेव पुराण-निर्माणं सिद्ध्येत्। ततः पूर्वं तु स कालो नैव नेतुं शक्य इति।

अत्र प्रतिब्रूमः—

राशिकल्पना यवनेभ्यः शिक्षितेति कल्पनैव तावन्निसारा। यतो हि वेदमन्त्रेष्वपि खगोलस्य द्वादशविभागाः श्रूयन्ते—

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उतच्चिकेत।
तस्मिन् साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्नचलाचलासः॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

(ऋ० स० १६४।४८)

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः॥
(ऋ० सं० १।१६४।१२)

इत्यादिषु बहुषु ऋक्संहितामन्त्रेष्वेव खगोलाख्यद्युमण्डलस्य द्वादशभागाः श्रूयन्ते। प्रथमे हि मन्त्रे चक्राकारस्य द्युमण्डलस्य प्रधिस्थानीया द्वादशभागाः, तत्र त्रीणि नभ्यानि केन्द्रस्थानीयानि यैः संवद्धेन सूर्ये ग्रीष्मवर्षाशीतसमयपरिवर्तनं भवति। षष्ट्युत्तराणि त्रीणि शतानि च शङ्कुस्थानीयानि, यानि ज्योतिर्विदो शशशब्देन व्यवहरन्ति ते सर्वे स्पष्टमेवोक्ताः। द्वितीयमन्त्रे च द्युलोकं परितो यस्य चक्रस्य स्थितिः, तत्र द्वादशाराः अरा स्थानीया द्वादशभागा उक्ता एव। तत्र विंशत्युत्तरसप्तशतरूपा भागाश्च तत्पुत्रत्वेन निरूपिताः। सूर्यः प्रत्यहोरात्रमेकमंशमतिक्रामति, तत्रापि दृश्यादृश्यभेदेन भागद्वयम्, एकेन च रात्रिरस्माभिरनुभूयत इति संभूय विंशत्युत्तरसप्तशतभागा आम्नाताः। ते च द्युमण्डले सूर्यसंबन्धेनैवोत्पाद्यन्त इति दिव्रः कृतपदबोधितस्य सौरप्रकाशमण्डलस्य वा पुत्रत्वेनोक्ताः। सूर्य एव चाग्निपदेन संबोधितः। अस्य सूक्तस्यारम्भ एव "अस्य वामस्य पलितस्य होतुः" इति मन्त्रे भौमान्तरिक्षदिव्या अग्नयो भ्रातृत्वेनोक्ता इति त्रयाणामपि अग्निपदेनोपादाने न काप्यनुपपत्तिः। तृतीयेऽपि मन्त्रे द्यौः पितः, पृथिवी-मातः इत्यादि मन्त्रेषु पितृशब्देन प्रसिद्धस्य द्युलोकस्यैव द्वादशाकृतयः स्पष्टमुक्ताः। पञ्चपादाश्च - हेमन्तशिशिरयोः समासेन पञ्चर्तवः अर्थात् तत्तदृतु संपादका भागा एव बोधिताः। तत्र एकस्मिन्नर्द्धे जलभागः। तत्र प्राप्ते जल वर्षणं भवति, अपरस्मिंश्चप्रकाशः सप्तचक्रपदेन चात्र सप्तरूपसमष्टिरूपा रश्मय एव निर्दिष्टा इत्यप्रकृतत्वान्नेह विस्तार्यते।

ये तु केचन द्वादशमासरूपेणैव द्वादशप्रधयः इत्यादिशब्दान् व्याचक्षते, तेषां चक्रस्य प्रधयो द्वादश, तत्र शतत्रयषष्टिश्च शङ्कवः। द्यौः परिचक्रम "प्रथमे अर्द्धे अपरे दर्घ" इत्यादिशब्दानां स्वारस्यं नास्ति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एभिर्हि शब्दैरेकस्य चक्रस्येमे भागा इत्येव स्फुटीभवति । वैज्ञानिकीं प्रक्रियां सर्वत्राश्रयता निरुक्तकृता भगवता यास्केन तु यन्निरुक्तस्य चतुर्थाध्यायान्ते "सप्तयुञ्जन्ति रथमेकचक्रम्" इत्यादिमन्त्रव्याख्याने "संवत्सरमाह उत्तरमर्द्धर्चम्" इत्युक्तम् तदुपोद्बलकतया चोक्तानां मन्त्राणामंशा न उद्धृता, तस्याः संवत्सराग्निमण्डलनिरूपण एव तात्पर्यमवसेयम् । संवत्सराग्निमण्डलमिदं जगदुत्पादकतया श्रीगुरुचरणैर्विद्यावाचस्पतिमहाभागैः स्वग्रन्थेषु बहुधा व्याख्यातम्, तस्य सर्वस्मिन् द्युमण्डले व्याप्तिर्निरूपिता, ऋतुमण्डलम्, मासमण्डलम्, अहोरात्रमण्डलम् इत्यादीनि मण्डलानि च तदवयवतयैव निरूपितानि । अस्माभिरपि संकेतरूपेण संवत्सराग्निरयं प्रागुक्तः । अग्रे च विद्यास्कन्धे स्पष्टं व्याख्यास्यते । सूर्यमण्डलात् क्रमेणाग्निमण्डलमिदं प्रादुर्भवति, अनेनैव च ऋतुपरिवर्तनादिकं जायते । स एव संवत्सराग्निः संवत्सरपदेन भगवता यास्केन संकेतितः । तस्मात् खमण्डलस्य द्वादशभागा एव मन्त्रेषु संकेतिताः । किं च खमण्डलस्य द्वादशभागकल्पनामन्तरेणद्वादशमासकल्पनापि नोपपद्यते । एकैकस्य भागस्य सूर्यमण्डलभोग एवैकः सौरो मासो भवति ।

सूर्यचन्द्रयोः समागममेकमभिलक्ष्य तु चन्द्रमासगणना लोके प्रचरति । अत्र प्रायेणैकादशानां दिनानामन्तरं भवतीति अनयोर्द्वयोर्वैषम्यमपनेतुमेव तृतीये वर्षेऽधिमासः क्लृप्तः । सेयमधिमासप्रक्रियापि श्रुतिषु स्पष्टं श्रूयते-ऋग्वेदसंहितायां वारुणे सूक्ते—

"वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः, वेदाय उपजायते" इत्याम्नातम् । भगवान् वरुणो देवः प्रजोत्पादकान् द्वादशमासान् जानाति, उत्पादयति, प्राप्नोति वा । यश्च उपजायते—अधिकः प्रादुर्भवति त्रयोदशो मासः । तमपि जानात्यभिव्याप्नोति वा । अत्र उपजायते इति पदेन अधिकमासातिरिक्तः कोऽपि ग्रहीतुं न शक्यते । याजुष्यां तैत्तिरीय संहितायां तु —

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"अस्ति त्रयोदशो मास इत्याहुः" (तैत्ति० सं० ६ ५)

इति स्पष्टमेवोक्तम्। इयं चाधिकमासकल्पना खमण्डलस्य द्वादशभागकल्पनामन्तरेण कथमपि नोपपद्यत इति जानन्ति ज्योतिर्विदः। तस्मात् खमण्डले द्वादशभागकल्पना तु भारते अनादिकालादेव प्रसृतासीदित्यकामैरपि विवेचकैः स्फुटमुपगन्तव्यं स्यात्, सप्तविंशति भागकल्पनापि नक्षत्रनाम्ना वेदेषूपलभ्यत एव। तस्मादुभयरूपोऽपि विभागोऽनादिरेव। क्वचित्केनचिद् व्यवहारः कृतः, वेदेषु महाभारते वेदाङ्गज्योतिषे च सप्तविंशत्या विभागैरेव नक्षत्रपदवाच्यैर्व्यवहारः।

पुराणादिषु आधुनिकेषु ज्योतिषग्रन्थेषु च द्वादशविभागरूपेणापि व्यवहारः द्वादशसु भागेषु स्थितस्य तारामण्डलस्य मेषवृषादिरूपेण संन्निवेशं प्रकल्प्य तत्तन्नामकरणं पश्चात् प्रवृत्तमित्यपि यथा गृह्येत, तर्हि भारतीयैरेव विद्वद्भिः कस्मिंश्चित् कालेऽतिपुरातन एव स प्रवर्त्तितः स्यात्। द्वादशभागकल्पनान्तरं नास्मिन् विषये तादृशं महत्वमवशिष्यते-यदर्थं यवनेभ्यः शिक्षितमिति कल्पना समाश्रीयते।

अथवा यवनैरेव वेदप्रसिद्धान् द्वादशभागानुपजीव्य तत्र संनिवेशकल्पना, नाम कल्पना च कृता स्यात्, सेयं भारतीयैरप्यनुमोदिता स्यादित्यपि संभाव्यते। बोधायनगृह्यसूत्रेऽपि (२।१२।१) स्थिरराशौ-इति न केवलं राशिनाम, किन्तु तत्र चरस्थिरविभागोऽपि दृश्यते- शुभ लग्ने (४।२०।२) इति लग्नकल्पनापि दृश्यते- या मेषादिरूपेणैव प्रचलति। बौधायनसूत्रकालश्च यीषुख्रिष्टतस्त्रिचतुरशताब्दीभ्यः पूर्वः पञ्चशताब्दी पूर्वोऽपि वा बहूनां संमत इत्युक्तम्।

"यवनविषये विचारः"

यवनसंपर्कोऽपि भारतीयानाम् "एलेग्जैण्डराक्रमणानन्तरं जातः-इत्यमप्यैतिहासिकानामाधुनिकानां प्रकल्पनं भारतीयवाङ्मयमनालोच्यैव प्रवृत्तम्, भारतीयानामेव केषाञ्चिद् यवनशब्दव्यवहार्यताभूदिति भार-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तीयात् प्राचीनाद् वाङ्मयाद् विस्पष्टं सिद्ध्यति। इतिहासादतिप्राक्तने काले सत्ययुगपदवाच्ये एव महर्षिभी राजभिश्चानाचाररताः केचिच्चातुर्वर्ण्यात् पृथक् कृताः। त एव देशान्तरेषु निवसन्तस्तत्रत्या अपभ्रंशभाषाश्चानुशीलयन्तो म्लेच्छयवनादिशब्दैर्व्यपदेशमाप्ताः। 'म्लेच्छो हवा एष यदपशब्दः" इति व्याकरणमहाभाष्यकारेण प्रथमाह्निक एव स्पष्ट—मुक्तम्। तथा चापभ्रष्टभाषाभाषित्वमेव म्लेच्छशब्द। प्रवृत्तिनिमित्तं सिद्ध्यति– "म्लेच्छा हिं यवनास्तेषु सम्यक्शास्त्रमिदं स्थितम्" इत्यादीनि ज्योतिःशास्त्रग्रन्थेषु दृश्यमानानि वाक्यानि च म्लेच्छानामेव यवनशब्दवाच्यतां प्रतिपादयन्ति। ऐतरेयब्राह्मणे सप्तमपञ्चिकायां षष्ठखण्डे हरिश्चन्द्रोपाख्याने श्रूयते यद् यदा भगवता विश्वामित्रेण विद्यां दत्वा देवस्तुतिं कारयित्वा आजीगर्तो वधाद् रक्षितः, स च विश्वामित्रस्यैव स्वयं दत्तपुत्रतां भेजे तदा भगवता विश्वामित्रेण तस्य ज्येष्ठपुत्रत्वमाज्ञप्तम्। विश्वामित्रस्य चैकशतं पुत्रा बभूवुः। तत्र मधुच्छन्दा मध्यम आसीत्। ततो ज्येष्ठैः पञ्चाशद्भिराजीगर्तस्य ज्येष्ठत्वं न स्वीकृतम्। ते विश्वामित्रेण बहिष्कृता जात्यन्तरेषु प्रविष्टाः। मधुच्छन्दः प्रभृतयः एकपञ्चाशत्तु पितुराज्ञां शिरसि दधाना ज्येष्ठत्वमजीगर्तस्याभ्युपगतवन्त इति। ते विश्वामित्रसन्तानप्रवर्तका आसन्। तेष्वेव मधुच्छन्दः प्रभृतयः ऋषित्वेन-प्याप्ताः।

तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसु, पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः, पञ्चाशत्कनीयांसः ?। "ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे,ताननुव्याजहारान्, तान्वः प्रजाभक्षीष्टेति त एवान्ध्राःपुण्ड्राःशबराः-पुलिन्दाः भूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति। वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठा। इत्यादि।"

एते विश्वामित्रपुत्राः वर्णाश्रमव्यवस्थायाःप्रभ्रंशिताःशबरपुलिन्दादिजातिषु गताः क्रमेण यवनैरपि, संगताः यवनत्वं भेजिरे। क्षत्रियेषु च ययातेःपुत्रेषु तुर्वसुनाम एकः पुत्रस्तस्यवंशधरा यवनाऽभुवन्निति महाभारत एवोक्तम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ययातेराज्ञामस्वीकुर्वन् तुर्वसुस्तेनोक्तः—

"यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयो न प्रयच्छसि ।
तस्मात् प्रजासमुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ।"

संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमधरेषु च ।
पिशिताशिषु चान्त्येषु मूढ राजा भविष्यसि ॥

गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु च ।
पशुधर्मेषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यसि ॥

(महा० आ० प० ८४ अ० १३-१५ श्लो०)

तत एवाग्रे उक्तम्—

"यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवना स्मृताः ।
द्रुह्योः सुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः ॥

(महा० आ० प० ८५ अ० ३४)

एतेषां विषये च ब्रह्मपुराणे उक्तं यत् अयोध्याधिपतेर्वाहुकस्योपरि हैहयैराक्रमणं कृतं तदा पञ्चगणा हैहयानां सहायका आसन्—

हैहयै- स्तालजङ्घैश्च शकैःसार्धंद्विजोत्तम ।

यवना पारदाश्चैव कम्बोजाःपल्हवास्तथा ।
एतेह्यपि गणाःपञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥ (ब्रह्मपु०)

अनन्तरं च बाहुकस्य पुत्रेण सगरेण यदैषां पितृशत्रूणां संहार-प्रारब्धः, तदैते वसिष्ठं शरणं गताः । वसिष्ठनिदेशेन च सगरेण ते वर्णाश्रमधर्मात्प्रच्याव्य विकृतवेशान् विधाय च भारतान्निष्कासिता भारतस्य सीमान्तप्रदेशान् भेजिरे ।

"अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ॥
यवनानां शिरः सर्वं कम्बोजानां तथैव च ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पारदामुक्तकेशाश्च पल्हवाः श्मश्रुधारिणः ।
सर्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः ॥
(ब्रह्म० पु०)

एतदेव च भगवता मनुनापि मनुस्मृतौ—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणाऽदर्शनेन च ॥

पौण्ड्रकाश्चौड्रा द्रविडा काम्बोजा यवा शकाः ।
पारदाः पल्हवाश्चीनाः किरणा दरदाः खशा ॥ इति
(मनु० अ०, १० श्लो० ४३–४५)

सर्वेषु च पुराणेषु भारतस्य वर्षस्य सीमविवरणे पूर्वे किराताः, पश्चिमे यवना इत्युक्तम् । श्रीगुचरणैर्विद्यावाचस्पतिभिश्च यथा भारते सीम्नो विवरणं कृतम्, तथा ग्रीकदेशोऽपि तत्सिन्निधान एवायाति । तदेतस्य सर्वस्य विचारेण यवनानां भारतीयैः संपर्कस्य का वार्ता, भारतीयेभ्य एव ते समये समये पृथक् भूत्वा देशभेदाद् भाषाभेदाच्च पृथक् जातितां भेजिरे, पृथग् जातेऽपि तेषां मित्ररूपेण शत्रुरूपेण च भारतीयैः संवन्धः सदैव स्थितः । तत एव भगवत्कृष्णपालिता मथुरा जरासन्धमित्रेण कालयवनेनाक्रान्ता, स च तत्रैव व्याजेन भगवता कृष्णेन घातित इति श्रीभागवतोक्तमुपपद्यते । महाभारतयुद्धेऽपि च यवनानामागमनं वर्ण्यमानमुपपद्यते । ये तु महाभारतग्रन्थकर्त्रा स्वसमये यवन-संपर्कं दृष्ट्वा महाभारतयुद्धे, तेषामागमनं कल्पितमिति कल्पयन्ति, ते स्वस्य कल्पनारसिकत्वं महाभारतादिष्वप्यारोपयन्तोऽस्मदितिहासानुपन्यासरूपान् मिथ्याकल्पना प्रसूतान् स्पष्टं वदन्तीति न ते तथ्यविवेचकैः श्रद्धेयाः । तस्माद्यवनसंपर्कमवलम्ब्य राशिनामग्रहणाद्यवनानां तत्र तत्रास्याताच्च महाभारतपुराणादीनामर्वाचीनत्वकल्पना केवलं कल्पनैव, न तु तथ्यत्वेशगर्भितेति सुधीभिर्विचार्यम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अश्विन्यादिनक्षत्रगणनापि न पुराणेष्ववर्चीनतां स्थापयितुमलम्। यतो हि भारतीया ज्योतिर्विदः संपातस्य न सर्वगोलपरिभ्रमणंसूर्यः मन्वते, अपितु सप्तविंशतिमंशान् पश्चिमायां पूर्वभाद्रपदां स्पृष्ट्वैवसूर्योऽपुनः पूर्वगामी भवति पूर्वस्यां च रोहिणीं स्पृष्ट्वैव पुनः प्रतिनिवृत्तः पश्चिमगामी भवतीति तेषां मतम्। पाश्चात्यास्तु अभितो भ्रमणं संपातस्य मन्यन्ते। अत्र सत्यासत्यनिर्णयन्तु कालो विधास्यति। अत्र त्वेतावदेव वक्तव्यम्, यदेवं भारतीयानां विचारे संपातस्य पूर्वपश्चिमचलने अश्विनी केन्द्रगामिनी भवति। तस्मान्नक्षत्रगणना द्वेधा प्रवर्तते, केन्द्रं मुखं मत्वा अश्विन्यादिगणना, संपातस्य नक्षत्रं मुख्यं मत्वा तदादिगणना चेति केन्द्रप्रधाना गणना सायनपदेन संपातस्थानप्रधाना तु दशगणनापदेन निरयणपदेन वा व्यवह्रियते। इमौ सायननिरयणपक्षावप्यतिप्राचीनकालादेव प्रवृत्तावनुमीयेते। अत एव परमज्योतिर्विदा मोडकमहाशयेन महाभारते युद्धकाले वर्णितायामुत्पातसूचिकायाम् ग्रहस्थितौ प्रतीयमानस्य विरोधस्य सायननिरयणभेदमाश्रित्यैव समाधातुं प्रयत्नः कृतः।

"महाभारतमीमांसालोचनम्"

श्रीचिन्तामणिविनायकमहोदयेन स्वीयायां महाभारतमीमांसायाम् यद्यपि तन्मतं खण्डितं तत्खण्डनं बहुष्वंशेषु युक्तियुक्तमपि, तथापि अश्विन्यादिगणना पूर्वं नैव प्रचलितासीत्, सम्पात् विन्दोश्चलनस्य ज्ञानमेव पूर्वं भारतीयानां नासीत्। किमन्यत् सूर्यचन्द्रग्रहणगणितमपि पूर्वं भारतीया न विदन्ति स्म इत्याद्या महाविदुषोऽपि महाभारतमीमांसकस्य कल्पना सम्यगनालोच्यैव प्रवृत्ता इत्यगत्या मन्तव्यं भवति। बहुष्वंशेषु भारतीयपरम्परापक्षं परिगृण्हन्नपि स महाभागो बहुत्र यूरोपीयविद्वदुत्पादितसंस्काराणामेव वशवर्ती बभूव। अहो? वेदसंहितायामपि ये सिद्धान्ताः स्फुटमुपलभ्यन्ते तानपि स यवनेभ्यो गृहीतान् मन्यते। खगोलस्य द्वादशविभागविषये वेदप्रमाणानि पूर्वमेव प्रत्यपीपदाम। ग्रहणविषयोऽपि ऋक्संहितायां स्फुटं श्रूयते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।

अत्रयस्तमन्वविन्दन् न ह्यन्ये अशक्नुवन् ॥ ऋ० ५।४०।९

अत्र ग्रहणविषयक आविष्कारः अत्रिमहर्षिवंशजै कृत इत्यपि स्फुटमुक्तम् । यश्च वराहमिहिराचार्यः पूर्वं वेदाङ्गज्योतिषादौ "इदानीन्तु उत्तराषाढायामस्ति" इति स्पष्टं वदति तत्पर्यन्तमपि सम्पातविन्दोश्चलनमज्ञातमभूदिति कथने कथं विश्वसनीयता स्यात् । भवतु नाम, अश्विन्यादिः कृत्तिकादिश्चेत्युभयविधाऽपि गणनाऽतिचिरादेव प्रवृत्तेत्येवास्माकं वक्तव्यम् ।

अनयोर्द्वयोरेकतरपक्षस्य तत्तद्ग्रन्थकृद्भिर्यथेच्छं व्यवहारः कृतः । ततश्च वेदेषु महाभारते च सम्पातस्थं नक्षत्रं मुख्यं मत्वा कृत्तिकादिगणना दृश्यते, पुराणेषु तु केन्द्रं मुख्यं मत्वाऽश्विन्यादिगणनैव प्रधानतां नीता । मेषादिराशिगणना च यत्र नक्षत्रगणनया सहैव प्रवर्त्तते तत्र तु अश्विन्यादिगणनैवाद्रियते । राशीनां मेषादिगणनाया एव सुस्थिरत्वात् । मेषस्य चाश्विनीत एवारम्भात् । एवं गणनैयमनियतेव दृश्यते दृश्यते । वेदाङ्गज्योतिषे अतिप्राक्तनत्वेन मन्यमानेऽपि नक्षत्राणां नामसंकेतस्थले—

"ज्यां द्रा गः ख श्वे हि रो षा
चि म्भू ष ण्यः सू मा धा णः ।
रे मृ धा स्वा पो ज :
कृ ष्य ह ज्ये ष्ठा इ त्यृ क्षा लिङ्गैः । (१८)

इति अश्विन्येवादावुक्ता ।

वयं तु पश्यामः—देवतानुरोधेनेदं गणनाद्वैविध्यं प्रवृत्तम् । नक्षत्रदेवता वेदाङ्गज्योतिषेऽप्युक्ताः । तैत्तिरीयब्राह्मणे तृतीयकाण्डेऽपि प्रतिनक्षत्रं देवता विवृताः श्रूयन्ते । तेन नक्षत्रदेवता अनादिकालादेव मन्यन्त इति निर्विवादम् । गुरुचरणैः श्रीविद्यावाचस्पतिमहाभागैर्या देवता यस्य नक्षत्रस्य मन्यते, तस्यास्तेन नक्षत्रेण कैश्च नियता रीत्या संबन्धोऽपि स्वग्रन्थेषूपपादितः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तत्र कृत्तिकाया अग्निर्देवता, अग्निश्चायं भूस्थानः। अश्विन्यास्त्व-श्विनौ देवते। अश्विनौ च द्युस्थानौ–यथोक्तं निरुक्ते दैवतकाण्डे द्वादशा-ध्यायारम्भे –

अथातो च द्युस्थाना देवताः,
तासामश्विनो प्रथमागामिनो भवतः, इति।"

निघण्टुष्वपि च द्युस्थानदेवताकथनारम्भे अश्विनावेव प्रथममुपात्तौ। देवा हि त्रयस्त्रिंशच्छ्रूयन्ते—

अष्टौ वसवः (अग्निप्रभेदाः), एकादशरुद्राः (वायुप्रभेदाः) द्वादशा-दित्या इत्येके त्रिशत्। त्रयस्त्रिंशत्संख्या पूरणाय तु केचन दिवं च पृथिवीं च देवेषु गणयन्ति। केचित्तु अग्नि वाय्वोः, वाय्वादित्ययोश्च सन्धिस्थाने अश्विनौ नाम द्वौ देवौ चामनन्ति। केचिच्च देवभिषजावुत्तमस्थानीया-वश्विनौ गणयित्वा संख्यां पूरयन्ति। सर्वेपीमे पक्षाः श्रुतिष्वेवोपलभ्यन्ते। तत एव केचिदन्वेपका विद्वांसः सर्वेषां पक्षाणामेकवाक्यत्वाय सर्वत्राप्यश्वि शब्दे वाच्यतां मन्यन्ते। आस्तामियमप्रकृता कथा। इहत्वेतावदेव वक्तव्यम् यत् पृथिवीमारभ्य देवगणनायां प्रस्तुतायामग्निः प्रथमं गण्यते। दिवमा-रभ्य गणनायान्तु द्युस्थाने प्रथमागामिनावश्विनावेवारभ्य गणना प्रवर्तते। ततश्च अग्निमारभ्य गणनायामग्निनक्षत्रं कृत्तिकैवादौ गण्यते। अश्विना-वारभ्य गणनायां तु तन्नक्षत्रमश्विन्येव प्रथमं गणनीया भवति। अतो देवतागणनायां क्रमभेदादेव नक्षत्रगणनायामपि भेदोऽयं चिरात्प्रवृत्तः। कर्म-काण्डे अग्नेरेव प्राधान्यमिति कर्मकाण्डे कृत्तिकामारभ्यैव गणना समादृता। तदुक्तं श्रीगर्गाचार्येण "कर्मसु कृत्तिकाः प्रथमम्" इति शतपथब्राह्मणे च (२।१।२।१) स्पष्टमुक्तम्– "कृत्तिकास्वग्नी आदधीत, एता वा अग्नि-नक्षत्रं यत् कृत्तिकाः। तद्वै स लोम, यो अग्नि नक्षत्रे अग्नीआदधाते तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत" इति। ततश्चाग्न्याधानें प्रशस्ततया कृत्ति-कामारभ्यैव गणना ब्राह्मणेषु प्रवृत्ता। महाभारतेऽपि दानश्राद्धादिकर्मकाण्ड प्रसंग एव कृत्तिकादिगणना दृश्यत उक्तेषु पद्येषु। कृत्तिकासु सदारेव संपातं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकल्प्य ब्राह्मणानामर्वाचीनत्वकल्पना तु वैदिकानां दृष्ट्या समुपेक्ष्यैव । यः पृथिव्यां जन्म लभते-तस्याग्निनैव प्रथमं सम्बन्ध इति ग्रहक्रमेऽपि कृत्तिका-मारभ्यैव गणना युक्तिमती। पुराणेषु तु द्युलोकवर्णनप्रस्ताव एव नक्षत्र गणनेति तत्र द्युलोके प्रथमागामिनोरश्विनोरेव नक्षत्रमहाश्विन्यादौ गण्यते। ततश्च नक्षत्रगणनायाः प्रकारान्तरेणाप्यनेकधोत्पत्तिसंभवान्नक्ष-त्रगणनाक्रमेण कस्यचिद् ग्रन्थस्य कालनिर्णये नातीवाभिनिवेष्टव्यं सुधीभिः ।

" रविचन्द्रादिवारविषयः "

एवं वारगणनाऽपि भारतीयानां न पुरातनी, वेदेषु महाभारते चानुपलम्भात् । किन्तु कैल्डियानिवासिभ्यः इयं भारतीयैः शिक्षिता । भारतीयानान्तु पूर्वं षडहकल्पनासीत् न तु सप्ताहकल्पना । ततश्च रविचन्द्रादिवारनामानि यत्रोपलभ्यन्ते ते ग्रन्थाऽत्यर्वाचीना इत्यपि बहुभिः ख्यापितम्, पुराणेषु च न केवलं नाम अपितु तत्तद्वारेषु तत्तत्कार्यप्राशस्त्यं तत्तद्वारव्रतफलं चापि विवृतं दृश्यते । तेन कैल्डियनसम्पर्कादनन्तरमेव पुरा-णानां कालः सम्भवतीत्यपि केचिदाचक्षते । तदेतदपि न विमर्शसहम् । यतो हि—

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तरश्मिः ।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः ।।

(ऋ० २।३।१४।)

इति ऋग्वेदसंहितामन्त्र एव सूर्यरथकालचक्ररूपं सप्तयुञ्जन्ति । तत्र सम्बद्धास्तं परिचालयन्ति, सप्तनामा एको अश्वो वहति इति सप्ताह-क्रमः संकेतितः । सप्तास्मै रश्मयो रसान् संगमयन्ति, सप्तऋषय एनं स्तुवन्ति इति निरुक्तकृद् व्याख्यापेक्षया सप्तदिनानि-सप्तवारात्म-कानि-सप्ताहकल्पकानि, कालचक्रपरिच्छेदकानि-कालनामानि-इति व्या-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ख्यायाः कालचक्रप्रकरणे स्वारसिकत्वात् । कालचक्रप्रवर्तकः सूर्य एवेति

सौरमन्त्रे कालचक्रनिरूपणं नाप्रकृतम्। सप्ताह संकेते च सिद्धे सप्तवार-संकेतोऽपि सिद्धयत्येव, वाराधारेणैव सप्ताहकल्पनाया उद्भवात्। काल-चक्र निरूपकतयैव चोत्तरार्द्धं निरुक्तकृता व्याख्यातम्। "सप्तयुञ्जन्ति" इति मन्त्रांशश्च निरुक्तेन व्याख्यातः। सप्तापि ग्रहाः कालचक्रं परिचाल-यन्तीत्येव तद् व्याख्या स्वारसिकी प्रतीयते। तेनात्र सप्तवारसंकेतः सिद्ध्यति।

येतु केचिदाक्षिपन्ति भारतीये ज्योतिषे ग्रहा नव इति भारतीयैर्यदि वासराः कल्प्येरन् तर्हि नव कल्प्येरन्, सप्त कल्पना तु अन्यत एव गृहीता प्रतीयत इति, तदेतन्निःसारम्। राहुकेतू हि तमो ग्रहौ छायारूपौ, न तयोः किमपि स्थानं नियतमिति कालभोक्तृतापि तयोर्न मन्यते। फलप्रदत्वं त्वस्ति, प्रकाशस्य तमोऽनुवेधे विचित्रफलप्रदत्वस्य प्रत्यक्षं दर्शनात्। तस्मात् फलिते तद्दशादिकं गण्यते। स्थाननियमाभावेन कालपरिच्छेदकत्वाभावात् तदीयवारौ तु न गण्येते इति वैज्ञानिकीं प्रक्रियामजानानामेवेदृशा आक्षेपाः प्रचलन्ति। किञ्च भारतीयैर्यथा ग्रहस्थितिर्मन्यते तदनुरोधेनैव वारगणनेति भारतीयानामत्र मुद्राङ्कनं प्रतीयते। तथाहि पृथिव्या उपरि-चन्द्रः, बुधः, शुक्रः, सूर्यः, लाभः. गुरुः शनिरिति अथ ऊर्ध्वक्रमेण ग्रह-स्थितिं तत्रभवान् भास्कराचार्य आह—

भूमेः पिण्डः शशाङ्कः कवि रवि कुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा—
वृत्तैर्वृत्तोवृतः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्।
न्यान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्यपृष्ठे,
निष्ठंविश्वं च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्।

इति। तत्र क्रमेणैकैकस्य ग्रहस्य एकैकहोराभोगः पृथिव्यां भवति। अयं च होराभोगः ऊर्ध्वस्थितं ग्रहमारभ्य अधोऽधः क्रमेण प्रवर्तते। सर्वाधः स्थितश्चन्द्र..गानन्तरं च पुनः सर्वोर्ध्वस्थितं शनिमारभ्य होराभोगः। होरा-पदं सार्धंघटीद्वयबोधकम्-यद्घत्वे घंटापदेन लोके व्यवह्रियते। तथा च प्रत्य-होरात्र चतुर्विंशतिर्होरा भवन्ति। तत्र विचारं सर्वेषां ग्रहाणां होरा आवर्त्यं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अनन्तरं ग्रहस्थितिक्रमेण त्रयाणां तिस्रो होरा गणयित्वा चतुर्थी होरा यस्या-याति तस्यैववारो द्वितीय दिने मन्यते। यथा रविवारे प्रथमा अष्टमी, पञ्च-दशी, द्वाविंशी च होरा सूर्यस्य। ततस्त्रयोविंशी तदधःस्थितस्य शुक्रस्य चतु-बुधस्येति परिसमाप्ते रविवारः। द्वितीय, दिनारम्भे बुधस्याधस्थात् स्थितस्य चन्द्रस्य होरेति, स चन्द्रवार नाम्नैव व्यवह्रियते। अथ तस्मि-न्दिने प्रथमा, अष्टमी, पञ्चदशी च चन्द्रस्य होराः। अत्र मण्डलक्रमे समाप्ते पुनः सर्वोपरि स्थिताक्षारम्भ इति त्रयोविंशी च गुरोरिति सोमवारे समाप्ते तदुत्तरदिने गुरोरधस्तद्राजमानभौमस्य तृतीयदिनारम्भो होरा भौम इति स भौमवार नाम्ना गण्यते। अस्मिन्दिने प्रथमा, अष्टमी, पञ्च-दशी, द्वाविंशी च भौमहोरा। त्रयोविंशी च शुक्रस्येति भौमवारे समाप्ते तदुत्तरदिने शुक्रस्याधस्तात् स्थितस्य बुधस्य होरेति भौमवारोत्तरो बुध-वारः। एवं क्रमेण वारगणना विचार्या। अन्ये तु होराभोगः प्रत्यक्षेण न गृह्यते, यथा तिथिनक्षत्रादिकं सूर्यचन्द्रवेधेन प्रत्यक्षीकर्तुं शक्यते, तथा कस्याद्य प्रातर्होराभोग इति प्रत्यक्षमर्वाग्दृशां न भवतीति विज्ञानप्रधानेषु वेदेषु नेयं गणना निरूपिता। सूक्ष्मदृशस्तु पश्यन्ति, तत्ताद्वारकृतकार्याणां शुभाशुभकलान्यनुभवन्ति चेति पुराणेषु तु समादृता। अन्येभ्य इयं प्रक्रिया-शिक्षितेति तु कल्पनामात्रम्। यत्तूक्तं भारते षडहगणनैवासीत्, सप्ताह-गणना तु परेभ्यो वारग्रहणानन्तरं प्रवृत्तेति, तदतीवोपहासास्पदम्, षडह पदं यद् वेदेषु स्तूयते तत्राहःपदं नाहोरात्रबोधकम्। त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदशः, एकविंशः, त्रिणवः, त्रयस्त्रिंश इति षट् स्तोमा वेदेषु गण्यन्ते। स्तोमरहस्यमिदमतिगम्भीरं वेदतत्वभूतं न यूरोपीयैर्नवानुपासितगुरुचरणै-र्भारतीयैर्विज्ञातुं शक्यम्। तद्धि विद्यावाचस्पतिमहाभागानां ग्रन्थेषु निरूप-तम्- अस्माभिरपि द्वितीयस्कन्धे यज्ञप्रकरणे मनाग् व्याख्यास्यते। तानि-स्तोमरूपाणि षडहान्येव तत्र तत्र विवक्षितानि, न तु सप्ताहस्थाने षडह-कल्पना कदापि प्रचलतीति।

अथैवं चैत्र वैशाखेत्यादीनि मासानां नामान्यपि वेदे न श्रूयन्ते इति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तत्कल्पनामपि अर्वाक्तनीं मन्यमानाः केचन पुराणेषु चैत्रवैशाखादिमास-

कर्तव्यानि कर्माणि विस्तरेणालोक्य तेनापि पुराणानामर्वाचीनत्वं कल्पयन्ति, तदपि पूर्ववदेव निःसारम्। यस्मिन् मासे अन्तरिक्षाद्दिवश्च यत्तत्त्वं पृथिव्यां प्राप्यते, तन्नाम्ना मधुमाधवादिनामानि विज्ञानप्रधाने वेदे समाम्नातानि, एकस्मिन् मासे तत् तत्त्वमागन्तुमारभते, द्वितीये च तत्परिपोषात् सर्वत्र व्याप्तं भवतीति द्वे द्वे मासनामनी समानख्याने। यथा चैत्रे मधु अन्तरिक्षादोषधिवनस्पतिष्वागन्तुमारभते, वैशाखे तु तद् व्याप्तिरिति मधुमाधवनामभ्यां तयोर्व्यवहारः। एवमेव सर्वेषु मासेषु द्रष्टव्यम्; नात्र इतिहासप्रसङ्गे तद्विस्तरापेक्षा। एतद् वैज्ञानिकं गम्भीरं तत्वं न जनसाधारणबुद्धिगम्यं भवतीति साधारणजनताव्यवहाराय यस्य मासस्य पूर्णिमायां यस्मिन् नक्षत्रे चन्द्रमा भवति, तन्नाम्ना तस्य चन्द्रमासस्य प्रसिद्धिःकृता। यथा यस्य मासस्य पूर्णिमायां चन्द्रश्चित्रानक्षत्रेण संयुक्तो भवति, सा पौर्णमासी चैत्री, स मासश्चैत्रः, एवं विशाखया वैशाखः, ज्येष्ठया ज्येष्ठः इत्याद्यवगन्तव्यम्। एतेषां मासनाम्नां सिद्धये नक्षत्रेण युक्तःकालः "सास्मिन् पौर्णमासी" इति सूत्रद्वयं भगवता पाणिनिना निबद्धम्। वेदाङ्गज्यौतिषे महाभारते चाप्येभिर्मासनामभिर्व्यवहारो दृश्यते। वैशाख नाम तु शतपथब्राह्मणेऽपि श्रूयते (शत० ११। १। १ ७।) ततश्च नाम्नानेनाऽर्वाचीनत्वकल्पना सर्वथैवोपहासास्पदम्।

इत्थं च राशिनामादिवारगणनादि वा दृष्ट्वा एतदाधारेण पुराणानामर्वाचीनत्वकल्पनं न विचारसहम्। महाभारते नक्षत्रपुराणनाम्, पुराणसंख्यादिकं चास्माभिः प्रदर्शितपूर्वम्, अन्यत्र वनपर्वणि मार्कण्डेयसमस्यायामपि वायुपुराणनाम दृश्यते।

एतत्ते सर्वमाख्यातमतीतानागतं तथा।
वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य पुराणमपि संस्तुतम्॥
(वनपर्व० १९१ अ० १६ श्लोक०)

इति। नैतावदेव, किन्तु पुराणानां पाठोऽपि महाभारते उद्धृतो दृश्यते। यथा ब्रह्मपुराणस्य त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमाध्यायमारभ्य त्रयोऽ-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ध्यायाः (अ० २२३-२२५) महाभारतस्यानुशासनपर्वणि त्रिचत्वारिंश-दधिकशततमाध्यायमारभ्याध्यायत्रयरूपेण (१४०-१४५) आनुपूर्व्येणोद्धृता दृश्यन्ते। एककर्तृकेषु ग्रन्थेष्विदं न दोषाय कल्पते। न च महाभारतादेव ब्रह्मपुराणे उद्धृता इमे अध्याया इत्येव विपरीतं मन्यतामिति वाच्यम्। यतो महाभारते "किमप्याश्चर्यं तथ्यं ब्रूहीति" युधिष्ठिरप्रश्ने "यथा मया श्रुतं तद् ब्रवीमीत्युक्त्वा (अनु० १३१ अ०) प्रसङ्गेऽपि च "ब्रह्मणा समुदाहृतम्" (१४३। १६) "पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः" (१४३। १६) इति उच्यते। तस्माद् ब्रह्मपुराणादेव महाभारते उद्धृतमिति प्रतीयते। ततश्चैवं दृढेषु प्रमाणेषु सत्स्वपि महाभारतादपि पुराणान्यर्वाक्तनानीति निर्धारणं केवलं साहसमात्रमेव वैदेशिकानां तदनुयायिनां भारतीयानां च। अथ महाभारत उद्योगपर्वणि भीष्मपर्वणि चोत्पातरूपेणारिष्टकारकतारूपेण च या ग्रहाणां स्थितिराख्याता, तया कालनिर्धारणं न कर्तुं शक्यम् इति महाभारतमीमांसायां सम्यग् विवृतम्। पूर्वापरविरोधेन तत्रासंगतिश्च विवृता। तच्च द्वयं द्वितीयस्कन्धे ग्रहसंस्थानिरूपणे सति संभवे विवेचयिष्यामः।

वैदेशिकप्रमाणानि

अथ कैश्चिद् वैदेशिकविद्वदुल्लिखितप्रमणैरपि महाभारतादीनां प्राचीनता साध्यते। महाभारतस्य प्राचीनत्वे सिद्धे तत्रोल्लिखितनाम्नां तत्समानकर्तृकाणां समानकालिकानां पुराणानामपि प्राचीनत्वं सिद्ध्यत्येवेति स्मरणीयम्। ईशुख्रिष्टस्य प्रथमशताब्द्यामेव ग्रीकदेशेस्य " इलियड " वर्तते। ग्रीक देशीयानां यो महान् इतिहासः पुरातनः स इलियड नाम्नैव तद्देशे प्रसिद्धः। तत्सादृश्यादेव तेन भारतेतिहासस्यापि इलियड इति नामैव एकमत्या निर्दिष्टम्। परं भारतवर्षे महाभारतग्रन्थादतिरिक्तः कोऽपि लक्षश्लोकात्मको ग्रन्थो न दृश्यते इति महाभारतस्यैव तेन इलियडनाम्ना संकेतः कृत इति स्फुटमनुमातुं शक्यम्। ईदृशस्य महतो ग्रन्थस्योत्तरभारते प्रादुर्भूतस्य दक्षिणदेशप्रचारस्तस्मिन् मुद्रणालयाभाववति काले प्रायेणवर्षाणां शतद्वयं विना न-- संभवतीति तल्लेखेन ईशुख्रिष्टतः प्राक्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

वर्षाणां शतद्वयात् पूर्वमेव महाभारस्य सत्ता द्रढीभवतीति श्रीचिन्तामणि-विनायकलोकमान्यतिलकाया: स्वग्रन्थयो: स्वमतमुपन्यास्थन् ।

द्वितीयमिदम्, मौर्यचन्द्रगुप्तराजसभायां सैल्यूकसनामकस्य ग्रीक-राजस्य राजदूतो मैगस्थनीजनामको बहुकालं स्थित इत्यैतिहासिका मन्यन्ते । तेन भारतेतिहासविषये बहु लिखितम् । यद्यपि तल्लिखितो ग्रन्थो नाद्यावधि कैश्चिदपि प्राप्त: । परं तदाधारेण प्राक्तनैरैतिहासिकैस्तन्नाम्नो-द्धृता: कतिचन विषयास्तेषु तेषु प्रमाणतयेदानीन्तनैषु ग्रन्थेषु लभ्यन्ते । तस्यायमपि लेख: प्रामाणिकतया परिगृह्यत ऐतिहासिकै: यद् "डायानि सौसत: सैण्डा कोट्स" पर्यन्तं त्रिपञ्चाशदधिकशतपुरुषा अतीता: । "डायोनिससत: पञ्चदशपुरुषानन्तरं च 'हिराक्लीज' नामको महापुरुषो जात: । डायोनिससतोऽद्यावधि (चन्द्रगुप्तावधि) द्विचत्वारिंशदधिकानि षड्वर्षसहस्राणि व्यतीतानीति । अत्र "सेण्ड्राकोट्स्" पदेन चन्द्रगुप्तं गृह्णन्ति, हिराक्लीज पदेन च भगवन्तं वासुदेवं हरिम् । डायोनिसस नाम्ना तु कस्य ग्रहणं तेन कृतमित्यद्यापि निश्चयो नास्ति । हिराक्लीज-पदसंकेतिताद् भगवत: कृष्णात्परं तु ये अष्टात्रिंशदधिका: शतं पुरुषास्ते-नाख्याता;, तेष:माधुनिकैतिहासिकरीत्या प्रत्येकं विंशतिं वत्सरान् राज्य-काल इति गणनया २७६० वत्सरा भवन्ति । चन्द्रगुप्तराज्यं च यीशु ख्रिष्टतो द्वादशाधिकवर्षैत्रिशत्या: (३१२) पूर्वमित्यैतिहासिकैरद्यतनै:-सिद्धान्तितम् । तस्याद्य यावत् १९५८ – ३१२ । २२७० वत्सरा व्यतीता: । तथा चेतो २७६०–२२३० । ५०३० वर्षेभ्य: पूर्वं भगवान् कृष्ण: प्रादुर्बभू-वेति मेगस्थनीजकथनेनापि सिद्ध्यति । अस्य मतं महाभारतमीमांसा-कार: श्रीचिन्तामणिविनायकमहोदय: सर्वोत्कृष्टं प्रमाणं मन्यते । एतदाधा-रेणैवान्यानि सर्वाणि मतानि तेन खण्डितानि । यस्य मूलग्रन्थोऽपि न प्राप्य-ते, यदुल्लिखितानि वैदेशिकभाषायामनूदितानि नामान्यपि संदेहास्पदतां नातिवर्तन्ते, तस्य तादृशं मतं दृढं प्रमाणम्, स्पष्टं प्रत्यक्षपरम्परयोपल-भ्यमानेषु पुराणेषु विस्पष्टं गणितानि नामानि तु न प्रमाणमिति विनायक

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

महाशयस्य विचारा अस्माकमाश्चर्यंजनका हठवादा एव प्रतीयन्ते ।

किं च अष्टत्रिंशदधिकशतपुरुषाणां प्रत्येकं विंशतिगणनया षष्ट्यधिकशतसप्तोत्तरा द्विसाहस्री वर्षाणां गणिता, तद्रीत्या डायोनिससतो हीराक्लीज पर्यन्तमवशिष्टाः पञ्चदशपुरुषाः तेषामपि राज्यकालस्त्रिशती वर्षाणां भवेत्, ततश्च २७६०–३०० । ३०६० वर्षाण्येव डायोनिससतः सैण्डाकोट्स पर्यन्तं व्यतीतानि स्युरिति । द्विचत्वारिंशदधिकानि षड्वर्षसहस्राणि यानि मेगस्थनीजमहोदयेनोल्लिखितानि, तेषां संगतिः कथं स्यादित्यपि नावदधाति विनायकमहाभागः । स तु केवलं स्वमतं मेगस्थनीजरीत्या साधयितुं व्यग्रो मधुरं मधुरं गलाधस्तात्, कटु कटु तु थुक्कया निरसनीयमित्याभाणकमनुसृत्य स्वमतानुकूलं यत्तेन लिखितम्, तदेव प्रमाणीकुरुते, विपरीतं तु त्यजत्येव । अथापि वैदेशिकरीत्या सिद्धामितिहासप्रक्रिया मेव दृढां मन्यन्त ऐतिहासिका इतीदमपि मतमस्माभिरनूदितम् । भगवतः श्रीकृष्णस्य प्रादुर्भावसमयेऽस्मदभिमते सिद्धे भगवतो व्यासस्यापि स एव समय इति पुराणानामतिप्राचीनत्वमनयापि रीत्या सिद्ध्यतीति चन्द्रगुप्तात्पूर्वं श्रीकृष्णपर्यन्तं समयगणने तेन पुराणादिसाहाय्यं गृहीतं स्यादेव । अन्यथा कथं तादृशं ज्ञानं तस्योदियात् । तेन च चन्द्रगुप्तराज्यकाले पुराणपरिचयो जनानां सिद्ध्यतीति । वयन्त्वत्र हीराकुलीजेति नामकल्पनायां न विश्वसिमः । श्रीकृष्णचन्द्रगुप्तपर्यन्तमष्टत्रिंशदधिकं शतं पुरुषाणां व्यतीतमिति कल्पनापि विनायकमहाशयस्योपपत्तिविरुद्धा निःसारैव प्रतीयते सर्वपुराणविरुद्धत्वात् । वस्तुतस्तु ब्रह्मण आरभ्य, सूर्यचन्द्रवंश गणना या पुराणेषु प्रतिपादिता तदाधारेणैव मेगस्थनीजमहाशयेन त्रिपञ्चाशदधिकशतपुरुषगणना लिखिता स्यात्, षट्सहस्रवर्षगणना च तेन स्वयंविहिता स्यादिति संभाव्यते । विशिष्य वयमिदं तृतीयस्कन्धे वंशप्रकरणे विवेचयिष्यामः । भवतु नाम, पुराणपरिचयस्त्वनेन मेगस्थनीजमहाशयस्य सुस्पष्टं सिद्ध्यति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

अथ तृतीयमिदम् यद् भारताद् वर्षान्महाभारतग्रन्थो जावाबालीद्वीपे शकाब्दस्य चतुर्थ्यां पञ्चम्यां वा शताब्द्यां गत इत्यैतिहासिका मन्यन्ते। तस्य भारतवर्षप्रचलितेन महाभारतेन सह संवादोऽपि बहुभिः कृतः। ब्रह्माण्डपुराणमपि तेन सहैव तत्र गतमित्यपि बहवो मन्यन्ते। ब्रह्माण्डपुराणस्यापि जावाबालीद्वीपप्रसिद्धासु भाषास्वनेकासु जातोऽनुवादः। डाक्टरफिडरिकमहाशयेन ओलन्दाज भाषायां ब्रह्माण्डपुराणानुवादो दृष्टः, तस्य कतिच्छ्लोकानामनुवादस्तेन प्रकाशितोऽपि। ते श्लोका उपलभ्यमानेन ब्रह्माण्डपुराणेन संवदन्ति। ब्रह्माण्डपुराणं च सर्वेषु पुराणेष्वन्तिमं गण्यते। यदा तस्य सत्तापि– अब्दानां द्विसाहस्रीतः पूर्वं सिद्धा, तथा सर्वेषां पुराणानां तत्प्राक्तनानां सत्ता सुसिद्धैव। महाभारतानुवादस्यापि– कतिचिदेवांशास्तत्राधुनिकैर्लभ्यन्ते, ते च प्रायेण संवदन्त्येव। ईदृशस्य महतो ग्रन्थष्य यदा भारते पूर्णः प्रचारः संपन्नः स्यात्, तदैव देशान्तरे गमनं संभवति। तस्मिंश्च मुद्रणालयाऽभाववति काले महतो ग्रन्थस्य लिखित्वान्यत्र नयनमप्यति दुष्करं विभाव्य तत्र गमनाद् द्वित्रशताब्दीभ्यःपूर्वमेव महाभारतसत्तां निर्धारयन्ति बहव ऐतिहासिकाः। तेनाऽपीतो वर्षाणां सहस्रद्वितयात्पूर्वं महाभारतसत्ता प्रमाणिता भवतीति। इदमपि च वैदेशिकं प्रमाणमुपस्थापयितुं शक्यते यद् "लिथुनिया" नामके प्रदेशे नदीनां नामानि भारतस्य नदीनामभिः संवदन्ति। यथा "नेमुना" इति यमुना शब्दस्यापभ्रंशःस्यात् "तासी" इति ताप्त्याः, दक्षिणप्रसिद्धायाःपयोष्ण्या वा नाम विकृतीकृत्यानूदितिमिति संभाव्यते। एवं कुरुपुरुयादवशैलूष, इत्यादीनि तत्र तत्र जातीनामपि नामानि पुरातनजातिनामभिः संवदन्ति।तेन तत्र बहोः कालात् पूर्वं पुराणप्रचारः संभाव्यते। तदीयानि नामान्यनुकृत्यैव तैर्नामकल्पना कृता स्यात्। एतानि वैदेशिकानि प्रमाणानि इत उत्तरं महाभारतपुराणादि समयो नापकृष्टुं शक्यते– इत्येव बोधयन्ति। ततोऽपि प्राचीनता तु कियत्यपि भवतु, तत्र नैषां प्रमाणानां विरोधः, तत एवैतान्यस्माभिरुद्धृतानि।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"यूरोपीयविदुषां विचारालोचनम्"

अथ महाभारतपुराणादिकालविषये बहुभिर्यूरोपीयैर्विद्वद्भिर्बह्वालोच्य स्वीयविचाराः प्रकटिताः। त एव च बहुधाङ्गलभाषाशिक्षितैर्महद्भिर्भारतीयैर्मन्यन्ते। तस्मात्तेषामपि संक्षेपेण समालोचनमिहावश्यकम्। यूरोपीयैर्विद्वन्महानुभावैर्भारतीयशास्त्रेषु परिश्रान्तम्, तांस्तथाकुर्वतो दृष्ट्वा गतानुगतिकानां भारतीयानामपि बहूनां महतामस्मच्छास्त्रेषु श्रद्धा समुत्पन्ना, तेषामपि च विचारधारास्मच्छास्त्रेषु प्रवृत्ता। जगति च भारतीयशास्त्राणां चर्चा बाहुल्येन जातेत्येतदर्थं तु यूरोपीयविद्वन्महानुभावानां महतीं कृतज्ञतामावहामः। परं यथास्माभिर्ग्रन्थस्यारम्भ एव पुराणमहत्ववल्ल्यामुक्तम्- यद् यस्य देशस्य चिराय वशीकरणमभिमतं मन्यते, तस्येतिहासो विप्लाव्यः, अन्यथा पूर्वेतिहासेनाधुनिकानामप्युत्थानेच्छा जागृयाद् इति राजनीतिपरायणानामस्ति प्रसिद्धः सिद्धान्तः। इममेवावलम्ब्य चिरायास्मत्पारतन्त्र्यमभिलष्यन्तो बहवो यूरोपीयविद्वान्सः कुशकाशावलम्बनेनापि कथंचिदस्मच्छास्त्राण्यस्मदितिहासांश्च कदर्थयितुं तेषां कल्पनामात्रसारतामाधुनिकतां चोद्घोष्य तत एव बहवस्तन्निर्णयाः शिथिलाः पूर्वापरस्वोक्तिविरुद्धाश्चापि लक्ष्यन्ते। किं च तेषां धर्मग्रन्थेषु सृष्टिरेव पञ्चसहस्राब्दीतः प्रवृत्तोल्लिखिता। सर्वस्मिन्नपि वाङ्मये अर्वाचीनत्वकल्पनं तेषां प्रकृतिसिद्धमपि। ये सर्वमपि जगदर्वाचीनं मन्यन्ते, ते कथं नाम कस्यचिदपि वाङ्मयस्य प्राचीनतां सहेरन्। तस्माद्वेदपुराणादिष्वस्मद्देशप्रसिद्धेषु ग्रन्थेष्वपि तेषां स्वाभाविक्यर्वाचीनत्वकल्पना। इदमपि चापरं कारणम्–यत्ते ताम्रपट्टशिलालेखादिष्वधिकं विश्वसन्ति वाङ्मये तु न तथा विश्वसन्ति। किमन्यद्– अस्मदितिहासग्रन्थाद्यपेक्षया यूनानादिदेशप्रसिद्धानितिहासान् विशेषेण संमानयन्ति। अत्रापि चेतिहासविषये वेदपुराणाद्यपेक्षया जैनबौद्धादिग्रन्थान् बलिष्ठान् मन्यन्ते। इदं सर्वं पक्षपातविचेष्टितमेव विचारशीलैर्मन्यते। कुतो नामास्मद्ग्रन्थोपलब्धेष्वितिहासेष्वनास्था, कुतश्च विदेशेतिहासेषु भिन्नधर्मावलम्बिग्रन्थेषु च समादर इत्यत्र न कापि युक्तिः, केवलमेकत्र द्वेषोऽपरत्र निष्कारणो

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

राग एव वा हेतुर्भवेत् । शिलालेखताम्रपट्टा अपि ननु शब्दप्रमाणान्येव, ते चापि तत्र संभाविता दोषाः। येन महाराजेन शिलालेखो लेखितः, तस्मात्प्राप्ताधिकद्रव्यास्तच्चाटुकारितायां स्वकीयं लाभं पश्यन्तश्च विद्वांसः कां तदीयां प्रशंसां न लिखेयुः। भारते प्राचीनताया एव गौरवं मन्यत इति तस्य तस्य महाराजादेः प्राचीनताप्रदर्शनेऽपि ते कुतो न यत्नमादध्युः । तदीयानि कार्याण्यपि च सुपरिष्कृत्यात्य ब्रूयुरिति सर्वं संभाव्यत एव। शिलासु निखातान्यक्षराणि परिवर्तयितुं न शक्यन्त इति सत्यम्, परं निखननकाले येन निर्मिता लेखा, तस्य तु तत्र पूर्णमेवस्वातन्त्र्यमासीत्, स एव पूर्णः सत्यवक्ता ऋषिरिति केन निर्णीतम्, तत्र निखातः समयश्चापि नैकविध इति तस्याप्यनुमाने संभाव्यते बह्व्यस्त्रुटयः। प्रत्युतास्मत्पुराणेतिहासास्तु रागद्वेषरहितैर्मुनिभिर्निबद्धा इति तत्र त्रुटीनां संभवोऽन्यपुरुषसम्बन्धकृतः स्वल्प एव संभाव्यते। इदं चास्मदितिहासपुराणानां महत्प्रामाण्यस्थापकम्– यत्तत्र सर्वेषामपि प्रशंसनीयानि निन्द्यानि च कार्याणि स्पष्टं विव्रियन्ते। येषां परमं महत्त्वं ख्यापयितुमेव तत्तदितिहासप्रवृत्तिरनुमीयते, तस्यापि त्रुटिविवरणे न कोऽपि संकोचः। यथा पाण्डवानां महत्वं ख्यापयितुमेव महाभारतरचना, यथादिपर्वण्येवोक्तम्।

वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम् ।
दुर्वृत्तं धार्तराष्ट्राणामुक्तवान् भगवान् ऋषिः ॥
(आदिपर्व १।१६)

परं सत्यव्रतेनापि युधिष्ठिरेण द्रोणवधायासत्यभाषणं कृतमितीतिहासनिबन्धकेन न क्षान्तम्, तस्यापि स्पष्टं विवरणं कृतमेव। भीष्मनिपातने यत्पाण्डवैः शिखण्डिनमग्रे कृत्वा पार्थशरप्रहाररूपं छलमाश्रितम्–तदपि तत्र स्पष्टं विवृतम्। वासुदेवस्य साक्षाद्भगवदवतारत्वं तत्र स्थापितम्, किन्तु तेनापि द्रोणवधे युधिष्ठिरोऽनृतभाषणाय प्रेरितः, व्यसनस्थस्यापि कर्णस्य क्षत्रधर्मविरुद्धं वधं कर्तुमर्जुन आग्रहेणानुरुद्ध इति सर्वं स्पष्टमेव निरूपितम्। कर्णो दुर्योधनस्य सर्वस्मिन्नपि दुर्वृत्ते परामर्शदाता स्थाने

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

स्थाने महाभारते तस्य जात्या कर्मभिश्च नीचत्वं ख्यापितम् परं दानशीलतादिविषये पराक्रमातिशयश्चेति तन्महत्वमपि महाभारते स्पष्टं विवृतम्। न मनागप्युपेक्षितम्। दौत्यमास्थाय दुर्योधनसभायां गतेन भगवता कृष्णेन भेदनीतिमास्थाय स्वरथे समादरेण संस्थाप्य कर्णस्तज्जन्मवृत्तमाख्याय युधिष्ठिरपक्षे समागन्तुमनुरुद्धः, तदा कर्णेन यन्मानवमर्यादारक्षकमतिमहत्वास्पदमुत्तरं दत्तम्, तदपि महाभारते निःसंकोचं वर्णितम्। दुर्योधनस्यापि च युधिष्ठिरराजसूययज्ञे दानशीलता, शासनकौशलम् यत्किरातार्जुनीये महाकविनाभारविणा विवृतम्, गन्धर्वेभ्योऽर्जुनेन रक्षितस्य निर्वेषद्याप्तिश्चेत्यादि मानवोचित्तं सर्वमपि महत्वं महाभारते स्पष्टं विवृतमवलोक्यते। स्वयं भगवत्वेन श्रीकृष्णं प्रख्यापयदपि जरासन्धयुद्धात्पलायनम् कालयवनस्य व्याजेन हननं च तस्य तदेव श्रीभागवतं स्पष्टं विव्रिणोति। कदापि नीत्या तत्कृतमस्तु, त्रुटिपूर्णं तु यद् वक्तुं शक्यत एव, तस्य विवरणमपि पुराणेतिहासेषु स्पष्टं लभामहे। इत्थमेव भगवन्तं रामं विष्णोरवतारत्वेन ख्यापयन्नपि भगवान् वाल्मीकिस्तस्य चरित्रे त्रुटीःस्पष्टं वर्णयति, या एकीकृत्योत्तररामचरिते नाटके भवभूतिना महाकविना लवमुखेनानुवादिता—

वृद्धास्ते न विचारणीय चरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तताम्।
सुन्दस्त्रीदमनेप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीण्यकुतो भयान्यपि पदान्यासन् खरायोधने,
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः।

अत्र स्त्रियास्ताडकाया वधः, खरेण सह युद्धे पदत्रयं पश्चाद्गमनम्, प्रच्छन्नतयैव स्थितेन बालिहननं चेति तिस्रो रामचरिते त्रुटय उक्ताः, ता वाल्मीकिरामायणादेव संगृहीताः, युद्धयन्तो वीरा अग्रे पश्चाद्वा दक्षिणवामपार्श्वयोर्वा स्थितिं परिवर्तयन्ति, परं तावन्मात्रमपि वाल्मीकिना न क्षान्तम्। पश्चात्पददानमपि रामस्य विवृतमेव। "कुतोऽहं निर्वैरोऽपि भगवता हतः" इति बालिन आक्षेपोऽपि रामेण व्याजेन समाहितः, तदपि रामायणे स्पष्टमुक्तम्। यतैव च वाल्मीकिना रावणे प्रथमयुद्धसमागमे –

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

"पराक्रमस्य कालोऽयं प्राप्तो मे चिरवाञ्छितः।"

इति रामस्योत्साहातिशय प्रदर्शनेन महावीरत्वमभिव्यञ्जितम्, तेनवान्तिमे युद्धे—

"ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तयान्वितम्।"

इत्यपि शततमे युद्धकाण्डस्य सर्गे स्पष्टमुक्तम्। यद् रामस्य कार्यं भ्रातृभिरपि न सोढम्, तस्य सीता परित्यागस्यापि वर्णना रामायणोत्तरकाण्डे दृश्यत एव। एवं मर्यादास्थापनार्थं भगवदवतारान् वर्णयित्वा तत्कृताः त्रुटयोऽपि यैर्न गोपायन्ते तेषामरागद्वेषाक्रान्ततरैस्तैस्तैः सामान्यपुरुषैस्तु लिखिता वैदेशिका इतिहासा विश्वस्यन्त इत्यत्र कश्चिन्नगूढ एव हेतुरुत्प्रेक्षितव्यः स्यात्। अन्यदेशीया ऐतिहासिका आलोचनारूपेणैवेतिहासान् निबध्नन्ति-स्वमतेनैव तद्विश्लेषणमपि समुल्लिखितम्, अस्माकं पुराणेतिहासयोस्तु यथादृष्टवृत्तवर्णनमेव प्राधान्येन स्वकर्तव्यं मन्यन्ते। आलोचनां तु क्वचिदेव परतः स्थापयन्ति। तस्मादितरसर्वसामग्र्यपेक्षया पुराणेतिहासनिबद्धस्येतिवृत्तस्यैव प्रमाणीकरणं न्याय्यम्, नत्वेवं यूरोपीयैर्विद्वद्भिराचरितम्।

न च शिलालेखान् बह्वन्विष्यापि तदाधारेण कथमितिहासशृंखला निर्वहतु। "मोहन्जोदड़ो" नामके स्थाने इतिहाससामग्री लब्धा, तस्या अपि लेखा अद्यावधि न पठितुं पारिताः। तदनन्तरं मौर्ययुगपर्यन्तं च शिलालेखाः प्रायेण न लब्धाः। क्वचन कश्चन यदिलब्धः, न तत्रापि पूर्णो विश्वासः। आर्यसंस्कृतेः प्राक्तनत्वपोषकाः शिलालेखा अपि केचन कांश्चनदोषानुद्भाव्य न प्रमाणीक्रियन्ते। ततश्चैवं सहस्राधिकवर्षाणामितिहासस्य का गतिरस्तु। पुराणाधारेण तु अद्यपयन्तमितिहासः सुश्रृंखलया निबद्धुं शक्यते। सर्वेषामेवेयमेव दशा भवति। प्राचीनवाङ्मयाधारेणैव सर्वमैतिह्यं निबद्धुं शक्यते तेषामेव यूरोपीयानां देशे-हैरेड विलियमप्रभृतीनामितिहासस्य प्राचीनवाङ्मयातिरिक्ता का सामग्री समुपलभ्यते? तथापि तेषामितिहासा वाङ्मयाधारेणैव मन्यन्ते, तर्हि भारतस्यैवेतिवृत्तं वाङ्मयाधारेण न मन्तव्यमिति क एव आग्रहः? एवंविधेन दृष्टिकोणेनैव पुराणालोचनाद् यूरोपीयविद्वन्मतेषु अस्मत्परम्परा सिद्धेतिवृत्ते बहुतरमुपप्लवाः प्रवृत्ताः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

एकस्तावदयं विरुद्धो विचारः प्रायेण सर्वैरेव यूरोपीयैर्विद्वद्भिरुद्भावितो यत् व्यासरचितमेव सर्वं पुराणमहाभारतादिकं मन्यते, न चैकस्य पुरुषस्य एतावती विस्तृता कृतिर्भवितुमर्हतीत्यसम्भाव्यमिति। तदेतदृषिमुनीनां प्रतिभां सामर्थ्यमायुश्चाविचार्यैवाधुनिकपुरुषसाम्यं तत्रारोप्याक्षिप्यते। न ते व्यासाद्या मुनय आधुनिकपुरुषा इवानवरतं सांसारिकबन्धननिगडिता अनवरतं व्यवहारव्यापृताः, न वा आधुनिका इवात्यल्पशक्तयो निर्वीयाः, न चाल्पायुष आसन्। सप्तसु चिरजीविषु भगवान् व्यासो गण्यते। अनवरतं वेदादिचिन्तनम्, ग्रन्थनिर्माणं च तस्य प्रधानं समयमासीत्। ऋषिभिर्देवैश्चापि तस्य प्रत्यक्षं समागम आसीत्। तस्य महातपस्थितस्याधुनिकैः पुरुषैस्तोलनं कथं स्याद्युक्तियुक्तम्। एतद्युगीया अपि श्रीशंकराचार्यप्रभृतयः कियतो ग्रन्थानग्रन्थन्। संसारव्यवहारव्यापृतो बुक्कनरपतेः प्रधानमन्त्री सर्ववेदभाष्यकृन्माधवाचार्यस्तद्भ्राता सायणश्चापि दृष्टिविषयी क्रियताम्। सर्वेषु शास्त्रेषु यन्निबन्धा उपलभ्यन्ते। चतुर्युगचिन्तामणिकृतो हेमाद्रेः संग्रहकार्ये निपात्यतां दृष्टिः। सर्वदर्शनेषु प्रामाणिकग्रन्थलेखकः श्रीवाचस्पतिमिश्रःश्रीनागेशभट्टश्चापि मनाग् विमृश्यताग्। इदानीमेव सर्वमप्यायुरभिव्याप्य राजकार्यव्यापृतैरप्यस्मद्गुरुचरणैः श्रीमधुसूदनविद्यावाचस्पतिभिरभिनवरहस्यप्रधाना अन्वेषणसरणिसमुद्भावका शताधिकग्रन्था विरचिताः। यदैतद्युगीयानामपि एवंविधान्यलौकिकानि कार्याणि प्रत्यक्षीक्रियन्ते तदा धर्मप्रधाने युगे प्रादुर्भूतानां व्यासादीनामृतम्भरप्रज्ञोपेतानां तपः प्रधानानां विषये सर्वनिर्मूलेयमाशङ्का।

किञ्च यथास्माभिः पुराणाविर्भावप्रकरणे उक्तम्। व्यासेन भगवता पूर्वं पुराणसंहितोपनिबद्धा, तदाधारेण तच्छिष्येण लोमहर्षणेन तच्छिष्यैश्च चतुर्भिः संहिताः कृताः, सर्वाः संगृह्य लोमहर्षणपुत्रेणोग्रश्रवसा पुराणानि षट्संवादरूपेण वर्तमानं स्वरूपं प्रापितानि, पर्षत्सु च दत्तानि, पर्षद्भिरपि सर्वपुराणसम्मेलनादिकं कृतमिति। एवमेव महाभारतेऽपि षट् संवादरूपता पश्चादेव जाता। प्रथमो निबन्धा व्यासः, व्यासादेशेनैव च

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तच्छिष्यैः, सर्वमिदं कृतम् । व्यासोक्ता एव चार्थाः संवादरूपेण विवृताः, तस्माद् व्यासोपज्ञमेत्र सर्वमिति व्यास एव तत्कर्ता प्रसिद्ध्यति । पुरातनानामृषिमुनिप्रभृतीनां संवादा ये भगवताव्यासेन निबद्धा एत्र प्राप्ताः स्युः ते तथैव ग्रन्थे संगृहीताः स्युरित्यपि संभाव्यते । पुराणे तु स्पष्टमुक्तम् यदतिविस्तराणि अनादेः कालात्प्रचलितानि पुराणानि व्यासेन तु संक्षिप्तानि, नत्वभिनवानि निर्मितानि । केवलं वर्तमानानां राजादीनामाख्यानोपाख्यानादिकं तेन तत्र संयोजितमित्यादि सर्वं पूर्वमेवास्माभिर्विवृतम् । ततश्चैकेन कथमेतावद् वाङ्मयं निर्मितमिति शङ्कैवास्थान उद्भाव्यते । पुराणैरेव पूर्वोक्तप्रकारेण व्यासकृतेरुपबृहंणं सिद्ध्यतीति वेदेषु पदानामानुपूर्व्याश्च रक्षणमावश्यकमिति तदर्थं प्रयत्नो महानार्यजातीयैर्महद्भिः कृतः । स्मृतिपुराणादिषु तु अर्थसंरक्षणमेवावश्यकं मन्यते स्म । पदानामानुपूर्व्या परिवर्तनं परिवर्धनमन्यथा करणं वा सोढमेवेत्यपि प्रतिपादितपूर्वंमत्रैवग्रन्थे ।

अनेनैव भाषाभेदः शैलीभेदाश्चापि विभिन्नेषु पुराणेषु विभिन्नकर्तृकतासमर्थकमिति यूरोपीयैर्विद्वद्भिरुद्भावितोऽपि दोषो निराकृतः । एकस्यापि समये समये शैली भेदो भवतीति अस्माभिर्भागवतस्य पुराणत्वसमर्थने समर्थितपूर्वम् । बहुतराः पूर्वे संवादा एव स्वरूपेण संगृहीताः, व्यासोक्तिमुपजीव्य च तच्छिष्यैः स्वभाषापि संवादेषु निवेशितेत्येकलेखनीप्रसूतत्वमपि पुराणानामिति नास्माकमाग्रहः । तस्माद् भाषाभेदः शैलीभेदश्च न दोषाय । केवलमर्थः परम्पराप्राप्त एव सर्वैः संरक्षितः । कालदोषेण त्वतिपुरातनेषु ग्रन्थेषु लिपिकारादिदोषाः प्रक्षेपाश्चापि संभाविता इत्यपि क्वचिदभ्युपगन्तव्यमापतति । किन्तु कस्यचिदंशस्य दोषात् सर्वैव पुराणविद्या न दूषिता भवतीति सुधीरं विचार्यं धीमद्भिः ।

यद्यपि च कैश्चिदुक्तम् – बहुपुराणेषु पुराणानां पञ्चलक्षणानि न प्राप्यन्ते इति । तद्विषये पूर्वप्रकरण एवास्माभिरालोचितम्-यद् या पुराणानां श्लोकसंख्या सर्वेषु पुराणेषु समुल्लिखिता, तदनुसारेण कानि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

चिदेव पुराणानि पूर्णानि लभ्यन्ते । बहुषु तु संख्या त्रुटितैव । येषु च श्लोक-संख्या पूर्णा नोपलभ्यन्ते, तेष्वेव सर्वाणि पुराणलक्षणान्यपि न प्राप्यन्ते । तेन तेषां तेंऽशा विलुप्ता इत्येवानुमेयम् । सोऽयं कालदोषो न पुराणदोषः । चिरात्परतन्त्रे भारते विद्याविरोधिभिरत्याचारिभिः पुस्तकालयाः प्रज्वालिताः, कैश्चिच्च विद्याप्रेमिभिरितः पुस्तकानि स्वदेशे नीतानि, कैश्चिच्च भारतीयैरेव स्वार्थान्धैर्धूर्तैर्मुख्यान् पुराणांशान्निःसार्य स्वार्थसाधका अंशास्तत्र निवेशिताः । इत्थं भूते व्यतिकरे यल्लभ्यते तदेव बहुमन्तव्यम्-लुप्तानान्तु नाश्चर्यं किमपि । ततश्चायमाक्षेपो न पुराणेष्ववतरति, अपितु तद् भ्रंशकेषु तदरक्षकेषु जनेषु वा । तेन यल्लभ्यते, न तत्र शङ्का कार्या, विलुप्तस्य चान्वेषणाय यावच्छक्यं प्रवर्तितव्यमित्येव शोभनः पन्थाः ।

मत्स्यपुराणे नारदीये च या सर्वपुराणविषयाणां तालिका दत्ता, तयापि कतिचित् पुराणानि न संवदन्ति इत्ययमाक्षेपोऽपि पूर्वाक्षेपगतिमेवानुहरति । बहूनां पुराणानामंशविलोपकृतः पाठभ्रंशकृतश्चायमप्युपल्लव इति न सोऽपि पुराणानां दोषः । कस्मिन् कस्मिन् पुराणे लक्षणानि न समन्वयन्ति, कस्मिंश्च मत्स्यपुराणादिभिः संवादः कियदंशे नास्तीति तु तत्पुराणभूमिकास्वेव विवेच्यो विषयः, नास्मिन् पुराणसामान्योपोद्घाते प्रातिस्विकपुराणविचारः समुचितः, अत्यन्तं ग्रन्थगौरवप्रसंगादिति ।

यच्च यूरोपीया विद्वांसस्तदनुयायिनो भारतीया एतावदपि वक्तुं प्रगल्भन्ते यत्पुराणेषु महाभारते च यत्साम्राज्यवर्णनं दृश्यते, तदशोकसाम्राज्यमन्ततश्चन्द्रगुप्तादशोकादपि वाऽर्वाक्तनत्वं सिद्धयतीति । तदेतत्सर्वं दुर्दैववशादुपनतेन पारतन्त्र्येणैव भारतीयाः श्राविताः । संस्कृतविरोधिनीं शिक्षामधिगम्य चैतैस्ता उक्तय एव शिरसि धृताः । यस्मिन भारते हैहयमरुत्तययातिसदृशाः सकलभूमण्डलाखण्डलाः सम्राजो जन्म लेभिरे, तैः साम्राज्यनामापि चन्द्रगुप्तात्प्राङ् न श्रुतं हन्त ! वयं तु पृच्छामः, मौर्यस्य चन्द्रगुप्तस्याशोकस्यापि वा राज्यं भारतीयेषु केषुचिदेव प्रान्तेषु तु प्रसृतम्, द्वीपान्तरे तु नैषामपि राज्यमासीत्, तर्हि द्वीपान्तरेऽपि साम्राज्यकल्पना त्वेषां मनसि ब्रिटिशराज्यं दृष्ट्वैवोदितेति संभाव्यते ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

ततश्च वर्षशतकादनन्तरं कश्चिद् भवादृशो बुद्धिपारदृश्वेदमपि निर्णेष्यति-यत्—

संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः ।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः ॥

[रघुवंशे ६ सर्गे ३८ श्लोकः]

इत्यष्टादशद्वीपेषु कार्तवीर्यस्य हैहयस्य साम्राज्यं वदन् कालिदासो यीशुख्रिष्ठस्योनविंश्यां शताब्द्यां ब्रिटिशराज्यस्य भारते स्थापनानन्तरमेव जातः। तत एव तस्य मनसि द्वीपान्तरसाम्राज्यकल्पनोदयं लेभे इति। धन्येयं मतिः, धन्याश्चैनां बिभ्रत इतिहासान्वेषणे लब्धप्रतिष्ठा शिरोमणयो विद्वांसः। किमन्यत्र ब्रूमः। अस्माकमाराध्येषु तु वेदेषु किं नाम साम्राज्यम्, तदुपर्यपि चतुःकक्षापर्यन्तं राज्यमुक्तम्-यद् वयमद्यापि आशंसामहे-स्वस्तिवाचने पठामश्च—

"स्वस्ति साम्राज्यं भोज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सर्वायुष आन्तादापरार्द्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति ॥ [एतरेय ब्रा. ३९।अ. १ख. ॥]

इह विचारका इत्थं वदन्ति-यत् सामान्या राजानो भोजपदेन व्यपदिश्यन्ते स्म, तेषामुपरि सम्राट्, तस्याप्युपरि विराट्, तदुपरि परमेष्ठी, तदुपर्यपि च महाराजः। सर्वोपरि तु सर्वभूम्यधिपतिः सार्वभौम इति। एतावती भारतीयानां दृष्टिरासीत्।

"सारस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा।
साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ (शुक्ल यजु० ९।३०।)
इति मन्त्रेष्वपि बहुत्र साम्राज्यचर्चा श्रूयते।

इदन्तु सत्यम्-यद् भारतीयानां साम्राज्यमितरान् सर्वान् राजप्रभृतीन् समाप्य सर्वस्या भूमेः स्वोदर एव निधानपर्यवसायि नासीत्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वेऽपि अन्ये राजानो यस्य शासनं शिरसि कुर्वन्ति स्म, यस्य करदत्वं वाङ्गी चक्रुः, स एव सम्राडित्युच्यते स्म। सम्राजोऽप्यनेके यस्य शासनं शिरसा बिभ्रति स्म स एव राट् इत्यादि। सार्वभौमस्य शासनं तु सर्वस्मिन्नपि भूखण्डे अप्रतिहतमभूत्। ईदृशमेव साम्राज्यं स्वाराज्यादि च पुराणेष्वपि वर्णितम्। नत्वन्यान् बुभुक्षया संपीड्य सर्वस्यापि द्रविणजातस्य स्वोदर-सात्करणं कदापि भारतीयाः शिक्षिता इति।

तदित्थं भूता उपहासास्पदकल्पना विचारयितुमप्ययोग्या एवेत्यलं ग्रन्थविस्तरेण।

"प्रातिस्विकानि यूरोपीयमतानि"

अथ यूरोपीयानां प्रातिस्विकानि मतानि विचार्यन्ते। तत्र सर्वतः प्रथमं प्रोफेसरविलसन्महाभागेन पुराणानि पर्यालोच्य तदुपरि व्यापारिता स्वीया लेखनी। तस्यैव पुराणविषयकं मतं प्रथमं भारते प्रचलितमुप-लभ्यते। तस्य तु महाभागस्य दृष्टिः पूर्वोक्तराजनीतिसिद्धान्तकलुषिते-त्येवानुमीयते। तस्य हि विचारे तेनैकमपि प्राक्तनं पुराणं प्रायेण न स्वीकृतम्। अहो, ये कालिदासप्रभृतयःकवयो यूरोपीयैरपि विद्वद्भिः षष्ठशताब्दीभवा मन्यन्ते, तैर्यानि पुराणान्याधारीकृत्य महा-काव्यानि नाटकानि वा रचितानि, तानि पुराणानि दशमशताब्दीतोऽ र्वाग्भवानीति कस्यैवं वाक् प्रसरेन्महासाहसिकं विना। यीशुख्रिष्टतश्च-तुःपञ्चशताब्दीभ्यः प्राङ् निबद्धतया तद्देशीयैरेवाभिमतेष्वपि ग्रन्थेषु पुराण-प्रसङ्गं प्रादर्शयाम प्राक्। ततश्च विलसन्महोदयस्य मतमविचारितमेव रम्यम्। नचार्वाचीनत्वसाधने तस्य युक्तयोऽपि प्रौढा अभिलक्ष्यन्ते। तथा हि येषु ब्रह्मपुराणादिष कतिषुचिज्जगन्नाथ माहात्म्यं लभ्यते, तानि स त्रयोदश्याश्चतुर्दश्या वा यीशुख्रिष्टवत्सरस्यार्वाक्तनानि मन्यते। यतो हि जगन्नाथमन्दिरनिर्माणं त्रयोदशशताब्द्या अर्वाग् जातमित्यैतिहासिकैः सिद्धान्तितमिति। तदेतन्न विचारसहम्। उपलभ्यमानं श्रीजगन्नाथ-मन्दिरं भवत्वर्वाक्तनम्- परं जगन्नाथतीर्थं तु नार्वाक्तनं सिद्ध-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यति। मन्दिराणि जीर्णान्युत्पाट्य नवनवानि सदैव निर्मियन्ते, पुराणेऽप्वपि जगन्नाथमन्दिरं पुरातनमुक्तं स्यात्। पुनरपि च तस्मिन् जीर्णेऽभिनवं मन्दिरं निर्मितं स्याद्- यस्य समय ऐतिहासिकैः सिद्धान्तितः स्यात्। वाराणस्यामिदानीं दृश्यमानं मन्दिरम् "अहिल्या बाई" इत्याख्यया राज्ञ्या निर्मितमिति ततः प्राग् वाराणस्येव नासीत्, विश्वनाथमन्दिरमेव वा नासीदितिक एतदनुन्मत्तः कल्पयेत् ?

जगन्नाथतीर्थस्य तु ऋक् परिशिष्टेऽपि माहात्म्यं श्रूयते—

"यत्र देवो जगन्नाथः परे पारे महोदधेः।
बलभद्रः सुभद्रा च मानमृतं कृति इति ॥

न च ऋक् परिशिष्टमेतावदर्वाचीनं भवितुमर्हति।

ऋग्वेदेऽपि च "अदो यद्दारुप्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्॥"

(ऋ० सं० ८।८।१३।३)

एतस्मिन्मन्त्रे जगन्नाथमूर्तिरेव संकेतितेति वहवो मन्यन्ते। सप्तमशताब्द्यामागतेन चीनपरिव्राजकेन "ह्वेनसांग" नामकेन उत्कल प्रान्ते पञ्चप्रासादरूपं मन्दिरं दृष्टमिति तेन लिखितम्। तदिदमपि जगन्नाथमन्दिरमेव प्राक्तनं संभाव्यते। तस्माज्जगन्नाथवर्णनेन ब्रह्मपुराणादेरर्वाचीनत्वकल्पना निःसारेव। जगन्नाथमाहात्म्यवर्णनादेव ब्रह्मपुराणं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां निर्मितमिति विलसन् महाशयस्तदनुयायिनो भारतीयाश्च मन्यन्ते। परं त्रयोदशशताब्दीभवेन हेमाद्रिणास्वीये चतुर्वर्गचिन्तामणिनामके ग्रन्थे प्रमाणत्वेन ब्रह्मपुराणश्लोका उद्धृताः, ततोऽपि पूर्वंभवे दानसागरे हलायुधकृते ब्राह्मणसर्वस्वे चापि ब्रह्मपुराणश्लोका दृश्यन्ते, ततः कथं विलसन् मतं श्रद्धेयं भवेदिति विचार्यं सुधीभिः।

यत्र यत्र च पाद्मवैष्णवादिपुराणेषु बौद्धजैनादिमतोल्लेखो बौद्धमतचर्चा बुद्धस्यावतारत्वं वा दृश्यते तानि सर्वाणि बौद्धमतप्रचारात् तत्प्रभवाच्चार्वाकृतानीति तस्य द्वितीया युक्तिः। इयमपि न विचारसहा।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

असद्वादोपन्यासस्तत् खण्डयित्वा सद्वादप्रतिष्ठापनं च वेदेष्वेवोपलभ्यते। "नासदासीन्नोसदासीत्तदानीम्।" इति ऋग्वेदीयनासदीयसूक्त एव निषेध्यत्वेन सर्वतः प्रथममसद्वादोपन्यासः। "असदेवेमग्र आसीत्, किं तदसदासीत्, ऋषयो वाव तेऽग्रे असदासीत्" [शत० ब्रा० ६।का० १।१।१] इत्यसद्वादमुपन्यस्य तस्यार्थान्तिरकरणं ब्राह्मणे स्पष्टम्। उपनिषत्स्वपि "तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसादेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत। कुतस्तु खलु सौम्य स्यादिति हो वाच कथमसतः सज्जायेतेति सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।" इति असद्वादोपन्यासस्तन्निराकरणं च स्पष्टं श्रूयते। (छान्दो० ६ प्रपा० ख० २) अयमेवासद्वादो बौद्धसिद्धान्तस्य मूलम्। तस्मात्सद्वादोऽसद्वादश्चेत्युभयमप्यनादे: कालात् प्रचलतिस्म। ब्रह्माद्वैतवादः कर्माद्वैतवादश्च तयोर्नामान्तरे। क्रियाऽपरपर्यायं कर्म हि क्षणिकं दृष्टनष्टं सदा पराश्रितत्वान्न स्वतन्त्रसत्तावदित्यसत्पदेन व्यवहृतम। ब्रह्म तु त्रिकालाबाध्यं सर्वत्र सत्ताप्रदं चेति सदुच्यते। तत्र क्रियापरपर्यायिकर्माद्वैतवादिनः श्रमणाः, ज्ञानापरपर्यायब्रह्माद्वैतवादिनस्तु ब्राह्मणाः। श्रमशब्दस्य क्रियावाचकत्वात्, ब्रह्मशब्दस्य च ज्ञानवाचकत्वात्। सोऽयं श्रमणशब्दो बृहदारण्यकोपनिषदि षष्ठेऽध्याये तृतीये ब्राह्मणे सुषुप्ति प्रकरणे (२२ कण्डिकायाम्) श्रूयते "अत्र पिता अपिता भवति माता अमाता—चाण्डालो अचाण्डालः पौल्कसो अपौल्कसः श्रमणो अश्रमणः, तापसो अतापसः" इत्यादि। ब्रह्मैकाद्वैतवादिन्य उपनिषदः क्रियैकाद्वयवादिनं हेयदृष्ट्यैव पश्यन्तीति चाण्डालपुल्कसादिभिः सहाऽयमत्रोक्तः, भवतु नाम, श्रमणशब्दो बौद्धभिक्षूणां वाचको वेदेऽप्युपलभ्यते इत्येवास्माकमत्र प्रयोजनम्। तथैव श्रमणशब्दोऽपि शाङ्खायनारण्यके श्रूयते। तस्माद् विभिन्नाः सिद्धान्ता इमे अनादिकालादेव प्रचलिताः, तदनुयायिनश्चापि सदैव केचिदासन्। बुद्धेन भगवता स एव क्रियैकाद्वयवादः परिष्कृत्य स्वमतत्वेन प्रचालितः, नत्वपूर्वं किञ्चिदाविष्कृतमिति स्पष्टं स्यादुभयवाङ्मयपरिशीलिनाम्। तदेतत् पूर्वमपि प्रतिपादितं पुनः स्मारणायावर्त्तितम्। तस्माद् बुद्धसिद्धान्तनिरूपणेन, तन्मतानुयापि श्रमणक्षपणकादि वर्णनेन च न

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणादि ग्रन्थानामर्वाचीनता शक्या साधयितुम् । बुद्धस्यावतारत्वन्तु भविष्यत्वेन पुराणेषु निरूपितम् । भविष्यनिरूपणस्य गतिद्वयमिति "एडूक" शब्दविचारे जैनवौद्धादिग्रन्थप्रकरणे प्रत्यपीपदाम । विस्तरेण च भविष्य-वंशादिकं ग्रन्थस्य तृतीये भागे विचारयिष्यामः । भविष्यवंश कथनेन तत्रोक्ततत्तद्राज्यानन्तरं पुराणनिर्माणमित्यपि तत्रैव स्पष्टं विचार्येत । बुद्ध-देवस्य जैनप्रथमाचार्यस्य ऋषभदेवस्य चावतारत्वं भागवतादिषु बौद्ध-जैनादीनां भारते प्रभावमवलोक्यैव स्वीकृतमिति केषांचिदुक्तिरपि असत्कल्पनामूला । वस्तुतस्तु यत्र यत्र कश्चन सामान्यमनुष्यसीमानमतिक्रान्तो बुद्धिबलयोरतिशयो विज्ञातः, स एव सूक्ष्मदर्शिभिस्तात्कालिकसमाजनेतृ-भिर्विभूतिरूपेणावताररूपेण वा स्वीकृतः ।

तदुक्तं भगवद्गीतायाम्– विभूत्यध्यायान्ते—

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम् ।। इति,

अत्र प्राशस्त्ये मतुप्प्रत्ययः, विभूतिमत्– प्रशस्तविभूतिर्विशिष्टम्, श्रीमत् प्रशस्तश्रीविशिष्टम्– ऊर्जितम्– प्रशस्तबलविशिष्टं च भगवदंशरूपेण गणनीयमिति गीताश्लोकाशयः । प्राशस्त्यं च लोकातिशायित्वमेव विज्ञेयम्, बुद्धेश्च सात्विकानि चत्वारि रूपाणि– धर्मो, ज्ञानम्, वैराग्यम्, ऐश्वर्यम्, इति सांख्यदर्शने निरूपितानि । तत्र वैराग्यं लोकातिशायि भगवति बुद्धे दृष्टमिति तस्यावतारत्वं मन्यते । ऋषभदेवेपि च धर्मस्य वैराग्यस्य चातिशय आसीदिति तत्र भागवत एवोक्तम् । तस्मात् सात्विकगुणातिशयदर्शनादेवावतारत्वस्वीकारो न तु कंचिज्जातिविशेषं प्रसादयितुम् । तामसगुणातिशयदर्शनाच्चासुरावतारत्वाभ्युपगमः । अतएव परमप्रभावशालिनोऽपि रावणकंसजरासन्धादयोऽसुरावतारा एव गण्यन्ते, न तु तदनुगायिनः प्रसादयितुं भगवदवतारा इति ।

विस्तरेण चावताररहस्यमिदं विद्यास्कन्धे विचारणीयमिति अत्रैतावतैवालम् । यत्तु कैश्चिदाधुनिकैः सामाजिकैरुच्यते– पुराणेषु ईश्वरत्वेन

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

मन्यमानानां विष्णुशिवादीनामिन्द्रचन्द्रादीनां देवानां च निन्दा दृश्यते, न तु बुद्धदेवस्य कुत्रापि निन्दा कृतेति बौद्धैरेव कैश्चन पुराणानि निर्मितानीति। तदेतत्पुराणानामनालोचनस्यैव विजृम्भितम्। पुराणेषु प्रतिपदं तदेवादीनामृषीणां च प्रशंसा स्तुतिश्चावलोक्यते, न तु निन्दा। स्पष्टवादीनि च पुराणानि यत्र यस्याचरणे दोषः, तमपि न गूहन्ते अपि तु स्फुटमेव प्रकाशयन्ति। देवराजेनापीन्द्रेण वृत्रवधादौ यत्रहलमाचरितम्, तदपि पुराणेषु स्पष्टमुक्तम्। इयं स्पष्टवादिता तेषां प्रशंसास्थानम् न तु निन्दास्थानम्। देवा धर्मज्ञानादिषु मनुष्येभ्य उत्कृष्टा अपि त्रैगुण्यं नातिवर्तन्ते। सत्वप्रधानेष्वपि तेषु रजस्तमोऽनुवेधः कियतांशेनासैवेति तच्चरितेऽपि क्वचिन्मालिन्यमुद्भवत्येव। तदेतत् सत्यवादिभिः पुराणैर्वक्तव्यमेव न गूहितव्यम्। मनुष्यविषयेऽपि तेषां स्पष्टवादिता पूर्वं विवृताऽस्माभिः। किमन्यत् भगवान् व्यासः पुराणानामादिवक्ता मन्यते, तेन स्वोत्पत्तिचरितमपि न गूहितम्, विस्पष्टमेव तत् स्थापितम्। किमतः परं सत्यवादित्वं श्रद्धेयत्वं भवेत्। ईश्वरचरिते देवचरितेषु च बहूनि वैज्ञानिकानि तत्त्वानि आक्षेपरूपेण जनैः ख्याप्यन्ते, तदेतत्सर्वं चतुर्थस्कन्धे आक्षेपनिरसनात्मके स्फुटीकरिष्यामः।

विलसन् महोदयो बुद्धानुयायिनां निन्दादर्शनात् पुराणानामर्वाचीनतामाह। अन्ये तु बुद्धस्य बौद्धानां च निन्दामदृष्ट्वा बौद्धकृतत्वमारोपयन्तीति विचित्रेयं पद्धतिः हठवादमेव स्पष्टीकरोति न तु वस्तुविचारम्। वस्तुतस्तु बुद्धदेवात् प्राक्तनानि पुराणानि कथं तच्चरितालोचनां कुर्युः। न च कस्यचन निन्दैव पुराणनामुद्देश्यम् बुद्धानुयायिभिर्यो धर्मविप्लवः कृतः स तु भविष्यरूपेणोक्त एवेति नैताः कल्पना विचारसहाः।

यत्तु शिवविष्ण्वादीनामुपासनाविधानादेव पुराणानामर्वाचीनत्वं क्वचित्तेनोट्टङ्कितम्— तदिदं वेदानामपर्यालोचनमूलकमेव शक्यं वक्तुम्। "त्रियम्बकं यजामहे" "विष्णवे चार्चत" इत्यादिना तदुपासनाया वेदेष्वेव विस्तरेणोक्तत्वात्, "त्रियम्बकम्" इति त्रिनेत्रत्वम्। "इदं विष्णु-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

विचक्रमे" इति पवस्वम्पादवत्त्वम् इत्येवं बहुनाभरा अपि शिवविष्णवादीनां वेदेषु विवृताः। तेषां वैज्ञानिकं रहस्यं तु पुराणेष्वपि तथैव व्याख्यातुं शक्यम्। व्याख्यातं च व्याख्यास्यते चास्माभिस्तत् सपरिकरमिति तेनापि न शक्यतेऽर्वाचीनत्वं कल्पयितुं पुराणानाम्। वैष्णवधारणीयचिह्नानां शङ्खचक्राङ्कनादीनां च वर्णनदर्शनेन यत्तेन पद्मपुराणादीनामर्वाचीनत्वं स्थापितम्, तदपि साहसमात्रमेव, यतो हि भागवतधर्मस्यैते तिलकधारणाद्या अंशा, भागवतधर्मस्य चातिप्राचीनता शिलालेखप्रकरणेऽस्माभिः प्रसाधयिष्यते। महाभारते तु शान्तिपर्वणि नारायणीये भागवतधर्मस्य स्पष्टमेव निरूपणम्। वास्तविके तु विचारे उपनिषत्सु ब्रह्मदर्शनार्थं य उपायाः श्रवणमनननिदिध्यासनरूपा उक्ताः— "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" (बृहदा० ४।४।५)। तत्र निदिध्यासनमुपासनारूपमेव, मनस एकतानतारूपमेकाग्रत्वमेव निदिध्यासनम्— सैव चोपासनेति। उपासीतेत्यादि शब्दैरप्युपासना उपनिषत्सु पदे पदे विहिताः। "यथाभिमतध्यानाद्वा" इति योगसूत्रेऽपि चित्तवृत्तिनिरोधोपायेषु प्रथम एव ध्यानशब्देनोपासनैव मुख्योपायतया निर्दिष्टा। तत्र यस्मिन्निष्टे ईश्वरदेवादिरूपे मनस एकाग्रता संपादनीया तत्स्वरूपानुकरणमप्यावश्यकं भवति। तस्यैव निरन्तरस्मृतिसाधनायेति "देवोभूत्वा देवान् यजेत्" इत्युपदेशा अनादय एवास्मच्छास्त्रेषु प्राप्यन्ते। "त्र्यम्बकं यजामहे" इत्यादिषु मन्त्रेष्वपि यदीश्वररूपयजनमुक्तम्— तत्र यज धातोरर्थेषु देवपूजासंगातिकरणदानेषु— संगतिकरणं कायिकं वाचिकं मानसं संगतिकरणं ध्यानम्, वाचिकं नामग्रहणस्तोत्रपाठादिकम्, तथैव कायिकं तच्चिन्हतिलकधारणादिकमपि विधीयत इति शिष्टा व्याचक्षते। साकारोपासनापि च मैत्र्युपनिषदादिषु तथा विहिता— यथा पुराणोक्तोपासना तन्मूलैव शक्यते वक्तुम्। नृसिंहतापनी— गायत्रतापनी, रामतापन्याद्युपनिषत्सु उपासनाङ्गान्यपि सविस्तरं विवेचितान्येव। श्रीरामानुजादि— साम्प्रदायिकास्तिलकचक्राङ्कनादिषु श्रुतीरपि प्रमाणयन्त्येवेति तिलकचक्रचिनहादिधारणमपि नार्वाचीनं शक्यते प्रमा-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

णयितुम्। भारतीयशास्त्राणां परम्पराशृङ्खलता, परस्परसंबन्धांश्च-सम्यगजानद्भिरेव यूरोपीयैर्विद्वद्भिर्यथामति भारतीयेतिहासविषये कल्पना उट्टङ्किताः। एकदेशज्ञानमेव च तत्तदैतिहासिकानामासीत्, न परम्पराज्ञानम्, शृङ्खलाबद्धं च ज्ञानं न तेषां सुशकमभूदिति तन्मूला एवैतादृश्यः कल्पना अश्रद्धेया एव विचारचक्षुषां भारतीयानाम्, बहुत्र तत्तत्पुराणेषु तत्तत् संप्रदायचिह्नानां स्तुतिनिन्दादिकं यदुपलभ्यते, तदिदं सांम्प्रदायिक-बहुले काले परस्परविद्वेषात् प्रक्षिप्तं भवेदित्यनुमीयते बहुभिर्विद्वद्भिः। कस्यापि संप्रदायस्य निन्दायाः पुराणेषु संभवाभावात्। स्वेष्टदेवे अनन्यता पुराणप्रतिपद्या, न त्वितरनिन्दा। तस्मान्निन्दांशस्य प्रक्षिप्तत्वानुमानेऽपि न तावता सर्वस्यैव तस्य पुराणस्यार्वाक्तनत्वं ख्यापयितुं शक्यम्। पुराणानां प्राचीनतायाः सुदृढैःप्रमाणैःप्रसाधितत्वादिति।

श्रीमद्भागवतस्बोपदेवकृतत्वं तु भारते विरोधिनां मुखात् कर्णाकर्णि श्रुत्वैव विलसन् महाशयेन लिखितम् न तु तत्र किञ्चिदपि प्रमाणं दर्शितम्। बोपदेवो हि भगवतः श्रीशङ्कराचार्यादप्यर्वाक्तनः। श्रीशङ्कराचार्यैश्च स्वीये शारीरकभाष्ये श्रीभागवतस्य "व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन" इत्यादिपद्यमुद्धृतं तृतीयाध्यायारम्भाधिकरणे। भागवतशङ्कासमाधिर्नाम ग्रन्थोऽपि च तद्विरचितः प्रसिद्धिं गत इति कथं बोपदेवकृतत्वं श्रद्धीयतां नाम। किञ्चानुपदमेव जैनग्रन्थप्रकरणे पञ्चमशताब्द्यां भागवतमिति प्राकृते भागवतनामापि दर्शितं जैनग्रन्थेषु। सप्ताष्टशताब्दीभ्यः प्राग् विलिखितं तु श्रीभागवतस्य पुस्तकमपीह काश्यां सरस्वतीभवने संरक्षितमस्तीति बोपदेवकृतत्वकल्पनेयमतितरामप्रामाणिकी। विशेषतश्च भागवतविषये पूर्वमेव बहूक्तमितिनेदानीं पिष्टपेषणं युक्तम्।

नारदीये पुराणे गोघातकदेवनिन्दकादीनां पुराणश्रवणानधिकार उक्त इति तद् मुसलमानपदवाच्यानां भारते राज्यस्थापनानन्तरं निर्मितमिति तदीया युक्तिरत्यंतमुपहासास्पदम्। स्मृतिषु सर्वत्र गोघातप्रायश्चित्तं विस्तरेण प्रतिपाद्यत इति किन्ताः सर्वा यवनराज्यादर्वाक्तन्यः स्युः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

यूरोपीयैरेव विद्वद्भिर्यीशुख्रिष्टतः प्राक् तासां बह्वीनां कालो निर्धारितः। किमन्यत् वेदमन्त्रेऽपि "मागा मनागां वधिष्ट" इति गोवधप्रतिषेधः श्रूयते। तत्किं वेदा अपि द्वित्रिशताब्दीभ्य एव प्रवृत्ताः ?।

वस्तुतस्तु धर्मनिरताः पापाचारांश्च मनुजाः सदैव भवन्ति। तेषामल्पत्वं बाहुल्यं च युगभेदेन भवति। सर्वदैव शास्त्रे पापाचाराणां निन्दा धर्मपरायणानां च प्रशंसा भवति। न तावता कस्यचिज्जातिविशेषस्य सबन्धानुमानं समुचितं भवतीति। पुराणलक्षणानि सर्वाणि- नारदादिपुराणेषु न समन्वयन्तीति तु प्रागेव समाहितम्। अनेकेषां पुराणानां बहुलस्य भागस्य लुप्तत्वादिति न तेनाप्यर्वाचीनता कस्यापि सुसाधा।

अग्निपुराणादिषु छन्दोव्याकरणालंकारादिविषयोपलम्भोऽपि नार्वाचीनत्वसाधकः, पुराणेषु सर्वविद्यासंग्रहस्य पुराणलक्षणप्रकरण एव प्रतिपादितत्वात्। सर्वासां च विद्यानां मूलस्य वेद एवोपलम्भेन सर्वासामेवानादित्वात्। आगमशास्त्रमपि तन्त्रापरपर्यायं मूलतोऽनादिभूतमेवेति तान्त्रिकपूजापद्धत्यादिदर्शनेनापि नाग्निपुराणादीनामर्वाचीनत्वसाधनं युक्तिमत्। भविष्यपुराणं तु कीदृशं विलसन् महाशयेन दृष्टमिति नानुमातुं शक्नुमः। तत्र भविष्यं नोपलभ्यते इति तत्कथनं तदवलोकनविरहमेव प्रकटीकरोति। पार्जिटरमहोदयस्तु वदति-भविष्यपुराणादेव भविष्यवंशादिकमन्येषु पुराणेषु संगृहीतमिति। वस्तुतो भविष्यपुराणे लेखकैर्मुद्रकैश्च बहु खल्वत्याचरितम्, प्रक्षेपैः पाठभेदैश्चानेकरूपतां तत् प्रापितम्। तत्र कस्यचन लिपिदोषाद् विभ्रष्टतमस्य ग्रन्थस्यावलोकनं तेन कृतं भवेदिति न तद्विषया उद्गारा विचारकोटिमानीयन्ते। वराहपुराणादिषु यच्छ्रीमद्रामानुजस्वामिप्रभृतीनां नाम संकेतादि क्वचित् पुस्तकउपलभ्यते, तत्तु प्रक्षिप्तमेव स्पष्टमिति न तेन पुराणस्य तस्यार्वाचीनताऽनुमेया। मात्स्यादिषु उपपुराणानामपि नाम गणनादिसंकेतात् तदप्यर्वाचीनमित्युक्तिरपि न श्रद्धार्हा। उपपुराणान्यपि नातीवार्वाक्तनानीति सर्वेषां पुराणोपपुराणादिनाम्नां प्रसङ्गस्याग्रे निरूपयिष्यमाणत्वात्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तत्सङ्ख्यायाश्च पर्णदा समाशितत्वं प्रागेव पुराणाविर्भावकालप्रकरणे प्रतिपादितमस्माभिः। एकोऽपि च ग्रन्थकृदग्रे निर्मीयमाणानामपि बुद्धि-स्थानां ग्रन्थानां नामानि पूर्वमेव निर्देष्टुं शक्नोतीति तेनाप्यग्रे रचयिष्य-माणानां ग्रन्थानां नामोल्लेखः पूर्वं संभवत्येव। गारुडे पुराणे गरुडविषयो न दृश्यते, तेन तस्य पुराणत्वमेव नास्तीति विलसन् महाशयस्योक्तिरपि न समीचीना। प्रागेव पुराणविभागप्रकरणे प्रतिपादितमस्माभिः यत् पुराणनामसु द्विविधापि प्रक्रिया दृश्यते, कानिचिन्नामानि प्रतिपाद्य-विषयानुसारीणि, यथा पद्मविष्णुलिङ्गपुराणप्रभृतीनि। कानि-चित्तु वक्तृश्रोतृनामभिरपि ख्यातानि, यथा मार्कण्डेयकूर्मपुराणादीनि। तत्र गरुडपुराणे पृच्छकः श्रोता च गरुड इति तन्नाम्ना तत् प्रसिद्धि गतम्। श्रीगुरुचरणैस्तु सर्वेषामेव प्रतिपाद्यविषयानुसारीण्येव नामानि पुराणाविर्भावग्रन्थे व्याख्यातानि। तैः गरुडपुराणेति नाम्नोऽपि तथा विधा सङ्गतिः प्रदर्शिता, लोकान्तरसञ्चारित्वात् पक्षिभूतत्वेन निरूप्य-माणो जीव एव गरुडः, तद्गतिस्तत्र विस्तरेण व्याख्यातेति गरुडपुराण-नामसंगतिरिति। गरुडपुराणपुस्तकेष्वपि च महान् विप्लवो जातः। गृहे गृहे मरणाशौचे पाठ्यमाना प्रेतमञ्जरी बहुत्र भूतेन गरुडपुराणेन न संवदति। सोऽयमर्वाचीनानां विदुषामत्याचारो न मूलपुराणस्यार्वाक्तनत्वं साधयितुं प्रभवति इति भूयो भूयो विचार्यं विद्वद्भिः।

वायुब्रह्माण्डपुराणयोः साम्योपलब्धिविषये तु प्रागेव बहुतरं विवेचितमिति न तत्पुनरावर्त्यते।

इदमपि केचिद्युरोपीया विद्वांसस्तदनुयायिनो भारतीयाश्च वदन्ति यत् पुराणेषु क्वचित् तमालभक्षणधूम्रपानादेः प्रतिषेधो दृश्यते—
यथा ब्रह्माण्डपुराणे श्लोकार्द्धमेवं प्रोक्तं वदन्ति—

तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे॥ इति

पद्मपुराणे वेदं लब्धं ब्रुवन्ति—

धूमपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः॥
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः॥ इति

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

तमालपत्रं यद् भक्ष्यते, यश्च तद्धूमः पीयते-तदिदं भारते "जहांगीर" नाम्नो यवनसम्राजः काले केनचिदमेरिकास्थेन धर्मोपदेशकेन (पादरी) आनीतमिति यवनसम्राजस्तस्येतिहासात् सिद्ध्यति, ततश्च ततोऽप्यर्वाक्तनत्वं पुराणयोरनयोः, प्रतीयत इति। तत्रेदं विचार्यम्...

पद्यं पद्यार्द्धं च न तयोः पुराणयोर्बहुषु पुस्तकेषूपलभ्यते। क्वचिदुपलब्धं यदि स्यात्, तर्हि बहुषु पुस्तकेष्वनुपलम्भात् प्रक्षिप्तमेव तत् संभाव्यते। अथ यथास्माभिर्भूवृत्तप्रकरणे व्याख्यास्यते, तथा भारतं पुरातिविस्तृतमासीत्। तत्र केषुचिद् भागेषु तमालस्य वहोः कालात्पूर्वं-प्रचारः संभाव्यते, तस्यैव निष्कर्षः पुराणे कृतः स्यादित्यपि संभवति। देशान्तरीया अप्यनाचाराः देशान्तरपरिभ्रमणाद् दिव्यदृष्ट्या वा विज्ञाय भारते मा भूवन्नेते प्रचलिता इत्यनुध्यायात्र दूरदर्शिभिर्मुनिभिः प्रतिषिद्धाः स्युरित्यपि बहुतरं संभाव्यते। किं च धूमपानशब्देन तमालपत्रस्य धूमपानमेवाभिमतमित्यत्र नास्ति प्रमाणम्। औषधानां धूमपानं तु अति पुरातनेनायुर्वेदप्रवर्तकेन चरकमहाभागेनैव स्वास्थ्याय विहितम्, तदेतदपि तमोगुणवर्द्धकत्वाद् ब्राह्मणैर्नाभ्यसितव्यमिति तन्निषेधः कृतः स्यात्। स्वास्थ्याय मधुमांसादिसेवनमप्यायुर्वेद उक्तम्, परं तामसत्वाद् ब्राह्मणेषु तद्धर्मशास्त्रकृद्भिः प्रतिषिद्धमिति स्पष्टं तेषु ग्रन्थेषु दृश्यते। तद्वदेव धूमपानं स्वास्थ्यायोपयुक्तमपि तामसत्वात् ब्राह्मणेषु प्रतिषिद्धमिति सम्यगुपपद्यते। तमालशब्दोऽप्ययं "तमाखू"शब्दवाच्ये द्रव्ये प्रयुज्यमानो वक्ति नः प्राचीनैं काले ताल तमालहिन्तालाद्या महावृक्षास्तत्र तत्र वर्ण्यमानाः पुराणेषु काव्यादिषु च दृश्यन्ते। तादृशस्य तमालस्य पत्रादिकभक्षणम्—विधाय प्रतिषिद्धं भवेत्। तस्माद् दृढतरप्रमाणैः प्रसिद्धा पुराणप्राचीनता नैवंविधैः क्षुद्रैः संदिग्धैश्च वचनैः कुशकाशावलम्बनकल्पैः प्रतिषेद्धुं शक्या।

तदित्थं पुराणविद्या वर्णितांशमात्रेण। भगवत्कृपयाऽशिष्टा अपि विषया कालक्रमेण प्रस्तोतव्या इति विरम्यते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

पुराणविद्या

— शुद्धिपत्रम् —

पृष्ठांकः	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
१–	३–	चैत्यत्र	चेत्यत्र
१–	७–	चैति	चेति
१–	१७–	मोत्स्यत	भोत्स्यत
२–	१६–	न	च
३–	२–	गर्वोन्मत्तं	गर्वोन्नतं
३–	११–	त्रिधेति	विद्येति
३–	२३–	सशन्कुवन्ति	शन्कुवन्ति
४–	१०–	पीवानां	पीव्नां
५–	१४–	लभन्ते	लम्बन्ते
६–	१५–	प्रतिपादस्य	प्रतिपाद्यस्य
७–	११–	यथावाऽस्तु	तथावाऽस्तु
६–	१२–	वेवस्वतो	वैवस्वतो
६–	१४–	अथर्वेदस्य	अथर्ववेदस्य
६–	१५–	काद्रवेद्रः	काद्रवेयः
६–	१६–	धान्यः	धान्यः
६–	२०–	कुसिदिनः	कुसीदिन
१०–	७–	श्रीतृ	श्रोतृ
१०–	६–	पद	वद
१०–	६–	णीयं	णीये
१०–	११–	चह्वण	चहृवण
१०–	१७–	वैज्ञानिकं	वैज्ञानिके
१०–	२४–	मुक्तः	भुक्तः
१०–	२७–	वेद	वेव
१२–	१७–	निरोधैर्हि	निरोधे हि
१२–	२२–	ते यमर्थं	तेऽयमर्थः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

१२–	२४–	क्रान्तिः	क्रान्तः
१३–	११–	वेघ	वेद्य
१३–	२०–	सामवेव	सामवेद
१३–	२२–	न्यैव	न्येव
१३–	२५–	मग्वेद	मृग्वेद
१४–	१७–	प्रवतंते	प्रवर्तंते
१४–	२४–	श्राद्दधीत	श्रद्दधीत
१५–	७–	गायत्री	गायत्रं
१५–	१५–	स्वामी	स्वामि
१५–	२४–	इस्यैव	इत्येव
१६–	१–	देवा	वेदा
१६–	६–	श्रवणं	श्रयणं
१६–	९–	पद्यत्वे	पद्याद्यत्वे
१७–	१–	दयुक्त	द् युक्त
१७–	११–	व्यवस्था	व्यवास्था
१७–	१३–	वृत्ता धान्य	वृत्तप्राधान्य
१८–	२४–	देवष्ट	देवेष्व
१९–	५–	विघानां	विद्यानां
२०–	२–	छन्दौदे	छन्दोदै
२०–	४–	सम्बन्धौ	सम्वन्धो
२०–	७–	च्छन्दौ	च्छन्दो
२०–	९–	च्छन्दौ	च्छन्दो
२०–	१४–	विस्तारशः	विस्तरशः
२१–	४–	केषां च देव	केषाञ्चिदेव
२१–	७–	नामाज्ञानेन	नामज्ञानेन
२१–	१३–	प्रतिपाद्येत	प्रतिपाद्यते
२१–	१७–	चणाम्	चणानाम्
२१–	२१–	सभूदे	समूढ़े
२२–	२–	सिद्धं	सिद्धे
२४–	७–	शङ्का न	शङ्का
२४–	२४–	भूमना	भूम्ना
२५–	२–	कुत्सा	कुत्सो
२५–	५–	निघते	निघत्ते

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

२५-	१६-	कोष	कोप
२५-	१८-	शब्दैः	शब्दः
२५-	२६-	सिद्धान्त	इति सिद्धान्त
२६-	१-	मानां	मानानां
२६-	३-	चेते	चैते
२६-	२५-	दृषि	दृषि
२७-	३-	देशपि	देवापि
२८-	१-	ष्यं च	ष्यच्च
२८-	३-	इप्येति	इत्यैति
२८-	२२-	जैमिनी	जैमिनि
३१-	३-	वेदं	वेदानां
३१-	१४-	दृढी	द्रढी
३९-	३-	वेदेष्वेति	वेदेष्विति
३९-	११-	निराकरणं	निराकरणे
४२-	२४-	नमोनिभं	नभो निभम्
४७-	२१-	मन्यतकुत	मन्यतः कुत
४८-	५-	चवतसृषु	चचतसृषु
४८-	१४-	व्याख्य स्याम	व्याख्यास्यामः
४८-	१६-	कथज्चि	कथञ्चि
४८-	१७-	नन्तरे	नन्तर
४८-	२०-	संस्कृते	संस्कृतौ
४८-	२२-	मबोधयम्	मबोधयन्
५०	१४	विन्हं	चिन्हं
५६	१८	निर्मतुं	निर्मातुं
५६	५६	मवीगदृशां	मर्वाग्दृशां
५७	२३	त्मनुष्य	न्मनुष्य
६१	२२	इति	ऊति
६७	९	भह्वः	बह्वचः
६८	२६	साधन्ति	साधयन्ति
६९	२२	सुवर्णादानि	सुवर्णादीनि
७३	५	त्मृत्या	स्मृत्या
७३	६	माथो	मथो
७५	७	माक	प्राक्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

७६	२४	तदेवघरी	तदेवाधारी
७७	२	दुःख	दुःखं
७७	५	मान्य	नान्य
७९	७	अप्शुद्धिः	अघशुद्धिः
८२	११	त्यत्यागा	त्यागा
८५	२१	तब्ध्वा	लब्ध्वा
८६	१६	गर्भेः	गर्भे
८९	७	काला यत्र	कालाद्यत्र
८९	९	भत्रति	भवति
८९	१२	बाहुल्यम	बाहुल्यम्
८९	१५	मेच	मेघ
८९	१५	मिर्नाम	भिर्नाम
८९	१९	सर्वामिदं	सर्वमिदं
८९	२४	मंबन्धे	सबन्धे
८९	२७	मिव्यक्तं	भिव्यक्तं
९१	२	श्चीपचायत	श्चापचीयत
९०	५	केचिन्	केचित्
९०	९	जोयत	जायत
९०	१०	कोन्नतः	कोन्नतेः
९०	१२	नाणापकादयो	?
९०	१३	देवतावतारयौन	देवतावतारा यान्
९०	१३	·प्रदेर्शान्	प्रदेशान्
९१	३	कस्याचि	कस्यचि
९१	५	र्भाय	?
९१	५	पाप्रक	प्रापक
९१	५	अग्नासि	?
९१	९	वृद्धमापः	इदमापः
९१	९	यद्धाह	यद्वाह
९१	१०	यद्राशेप	यद्वाशेप
९१	११	शंरयोस्रवन्तु	शंयोरभिस्रवन्तु
९१	१२	भगभान्	भगवान्
९१	२३	षुराणो	पुराणो
९२	२	त्कर्षकं	त्कर्षकं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

९२	३	वंश्वानरेण	वैश्वानरेण
९२	५	निष्काम्यति	निष्क्राम्यति
९२	१०	परिणति	परिणमति
९२	१४	मनसोमयत्व	मनसोऽन्नमयत्व
९२	१६	स्मृतिबर्नंभूव	स्मृतिर्न बभूव
९२	१६	पितुणाज्ञयतन्न	पितुराज्ञयाऽन्न
९३	७	चौपासनाङ्गत्वे नप्रा	चोपासङ्गत्वेन प्रा
९३	१०	व्रतोपवसाः	व्रतोपवासाः
९३	१६	तद्भिना	तद्भिन्ना
९३	१७	मामद्यन्ते	मापद्यन्ते
९३	२१	यदान्न	यदान्नं
९४	३	कथनुचितं	कथमनुचितं
९४	६	पदार्दस्य	पदार्थस्य
९४	११	नि मितंमश्रुत्य	निमितं श्रुत्वा
९४	१५	प्रवृतेत्यपि	प्रवृत्तेत्यपि
९४	१५	शक्यत्ते	शक्यते
९४	१६	थामिक	धार्मिकः
९४	२३	पूजाधङ्ग	पूजाद्यङ्गं
९५	३	ह्वायकाश्च	धायकाश्च
९५	१०	संग्राह्या	संग्राह्या
९५	१३	पश्चयिधत्व	पञ्चविधत्व
१०४	७	मिरंत	मिति
१०४	१४	गायते	गीयते
१०८	१३	ज्ञानपयो	ज्ञानोपयो
१०८	२१	तऽज्ञानं	तज्ज्ञानं
१०९	१	तञ्ज्ञान	तज्ज्ञान
१०९	११	अनैकत्वा	अनेकत्व
१११	१३	प्रक्रियाय	प्रक्रियाया
११८	२०	सम्पाघते	सम्पाद्यते
११८	२२	अहङ्कृति	अहंकृति
१२०	५	चद्दरी	चद्दरीर
१२०	८	मर्त्यय	मर्त्यं
१२१	२२	ब्रह्मणो	ब्राह्मणो

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

१२३	५	पुराणकाशः	पुराणाकाशः
१२४	२०	स्तिष्ठान्	स्तिष्ठन्
१२६	१०	क्रमोः	क्रमो
१२६	१९	पद्मत्वरूमा	पद्मरूपत्वमा
१२६	२४	बायो	वायो
१२६	२५	रादित्थत्वम्	रादित्यत्वम्
१२८	७	मुत्पादकं	मुत्पादकं
१२८	९	नाराश्चं	नाराश्च
१२८	२५	रोहकमःप्वृत्तः	रोहक्रमः प्रवृत्तः
१२९	२३	मूर्यं	सूर्यं
१३०	१५	द्वैमं	द्वैमं
१३१	२६	रख्यय	रव्यय
१३१	१८	निबद्धानी	निबद्धानीति
१३३	१८	निबद्धानी	निबद्धानीति
१३६	२२	तज्जानन्तु	तज्ज्ञानन्तु
१३८	१४	द्युष्टन्	घुष्टम्
१३९	२१	स सोऽस्ति	न सोऽस्ति
१४४	५	रराधि	राराधि
१४४	२३	वागवेदं	वागेवेदं
१५३	१७	न्येवेति-यावत	इति न पठनीयम्
१६०	१४	ण्वन्तु	शृण्वन्तु
१६०	२१	विप्रन्ज्ञात्वा	विप्रान्ज्ञात्वा
१६१	१	मिधे	भिधे
१६१	२०	मेघातिथि	मेघातिथिः
१६२	२	प्रतीयये	प्रतीयते
१६३	१	क्वचितु	क्वचित्तु
१६३	२	भरद्वाजस्येव	भरद्वाजस्यैव
१६४	१	चतुर्विशे	चतुर्विंशे
१६४	१५	अवतारणान्च	अवताराणान्च
१६५	१३	व्यवहृते	व्यवहृयते
१६५	१५	वाऽमोध	वाऽमोघ
१६६	१	चस्या	चरस्या
१६८	५	प्रतजयः	भूतजयः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

१६८	१४	अद्य	अत्र
१६८	१४	किमेषो	किमेषां
१६९	१	धाष्ठातृत्वं	धिष्ठातृत्वं
१६९	४	कालेऽपि	त्रिकालेऽपि
१६९	८	जायमानामो	जायमानस्थ
१६९	१९	इदानीन्तनः	इदानीन्तनाः
१६९	१९	श्रद्दधाना	श्रद्दधाना
१७०	६	सविधे	सविधे
१७१	१३	रभम्भा	रम्भा
१७२	२३	रित्यापि	रित्यपि
१७३	१	क्रार्याणि	कार्याणि
१७४	२१	सूर्यमुपत्तस्य	सूर्यमुपस्थाय
१७६	३	केत्तुश्च	केतुश्च
१७७	१	संर्पादिनां	सर्पादीनां
१७७	२६	द्यपदेशो	द्युपदेशो
१७९	८	दृश्येन्ते	
१७९	११	माहृदिति	माहृरदिति
१८१	१	सोपर्णं	सौपर्णं
१८१	३	विसर्जन्नं	विसर्जनं
१८२	१३	श्चेभये	श्चोभये
१८३	२	हमा	इमा
१८४	६	इयञ्ज	इयञ्च
१८४	२२	ब्राह्मणाकन्यायां	ब्राह्मणकन्यायां
१८८	२२	नाम्नो	नाम्ना
१८९	२७	उक्तम	उक्तम्
१९१	१८	विभिन्नः	विभिन्नाः
१९१	२५	अपिः	अपि
१९३	३	प्रभ्तयः	प्रभृतयः
१९३	१४	अपरञ्च	अपरश्च
१९८	१	शबर्थः	शब्दार्थः
१९८	२	ताप्तर्यं	तात्पर्यं
१९८	६	स्यास्यास्य	स्यास्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

२००	२६	पुना	पूना
२०१	१०	कथं	कथं
२०३	१३	कर्तके	कर्तृके
२०३	२५	श्रवयति	श्रावयति
२०५	२	वलम्व्य	वलम्ब्य
२०७	८	संगृह्य	संगृह्य
२०८	२१	द्विज	द्विज
२०९	१७	कथनत्च	कथनाच्च
२१०	९	पठ्येते	पठ्यते
२११	१८	लंब्यम्	लंब्धम्
२१३	१२	अद्य अद्यत्वे	अद्यत्वे
२१३	२३	द् पृथ	दपृथ
२१४	४	नुमणिका	नुक्रमणिका
२१५	२	पुराणम वागन	पुराणवामन
२१७	३	सोऽर्वित:	सोऽर्चित:
२१८	२०	गन्थर्व	गन्धर्व
२२५	७	गांधव	गांधर्व
२२५	२१	पुराणेपू	पुराणेषु
२२७	१५	मुपलभ्यन्ते	मुपलभ्यते
२२८	१	भियुक्ति	भियुंक्ति
२३१	१८	बोघायन	वोधायन
२३५	३	भीमांसा	मीमांसा
२३५	१५	यौराणिक	पौराणिक
२३५	१७	शताब्धां	शताब्द्यां
२३५	२३	कानिचित्त	कानिचित्तु
२३६	४	इती	इति
२३६	२७	पराणन्येव	पुराणान्येव
२३७	६	कुत्तो	कुतो
२३८	८	पूराणाश्रय	पुराणाश्रय
२४०	११	विषयो	विषयौ
२४२	१२	मानुषीदेन	मानुषीपदेन
२४८	२३	चिह्ना	चिह्ना

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

२५०	२४	इत्यद्युक्तम्	इत्याद्युक्तम्
२५१	१६	मिरस्य	भिरस्य
२५१	१७	मिधे	भिधे
२५१	१८	विक्रियते	विव्रियते
२५१	१९	प्राक्ततनत्व	प्राक्तनत्व
२५१	२१	रसस्ये	रहस्ये
२५३	२१	तान्यवा	तान्येवा
२५४	२	युक्तमती	युक्तिमती
२५४	१२	इवं	इत्थं
२५४	१५	सर्वथव	सर्वथैव
२५४	१६	दपन्ति	कथयन्ति
२५४	२४	नानुमन्तं	नानुमतं
२६०	१२	विन्दो	विन्दौ
२६१	११	सम्पादत	सम्पात
२६४	१६	भक्ष	भक्ष्य
२६६	७	रऽय	रस्य
२६९	११	यथा गृह्ये त	यद्यागृह्ये त
२७०	१८	प्याप्ताः	ख्याताः
२७२	२४	त तु	न तु
२७२	२५	त्वेश	लेश
२७३	२	सूर्यः	सूर्यस्य
२८१	२	तिलकायाः	तिलकाद्याः
२८१	२६	लम्यमान	लभ्यमान
२८३	१२	ग्रन्थष्य	ग्रन्थस्य
२८७	२२	पयन्त	पर्यन्त
२९०	१४	पल्लव	पप्लव
२९०	१६	तु त	तत्त
२९०	२०	वऽर्वा	वाऽर्वा
२९४	२७	यापि	यायि
२९५	१३	ग्रच्छ	गच्छ
२९६	४	तदेव	तत्तद्देव
२९६	६	यत्रहल	यदनुचित

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by S3 Foundation USA